इकाई – 1

उत्तररामचरितम् – सामान्य परिचय

1. 0 उद्देश्य

प्रकृत नाटक के अध्ययन के आधार पर भारतीय संस्कृति की सर्वाङ्गीण उदात्तता एवं उसके वैशिष्ट्य को हृदयङ्गम करके जीवन में आन वाली कठिनाइयों का सहर्ष सामना करते हुए मनुष्य मात्र को अपने कर्तव्य पथ से च्युत ने होने की शिक्षा देना ही एकमात्र उद्देश्य है।

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत नाटकों के महनीय स्थान के रेखाङ्कनपूर्वक नाटकों का सक्षिप्त इतिवृत्त प्रस्तुत करते हुए मुख्यरूप से महाकवि भवभूति प्रणीत 'उत्तररामचरितम्' नाटक का नाटकीय वैशिष्ट्य उजागर किया गया है।

1.2 उत्तररामचरितम् का नाटकीय वैशिष्ट्य

संस्कृत साहित्य के गौरवपूर्ण अङ्गों में नाटकों का अपना विशिष्ट स्थान है। इसीलिए किसी भी कवि के कवित्व की चरम सीमा नाटक माना गया है – **नाटकान्तं कवित्वम्।** सार्ववर्णिक वेद के रूप में प्रसिद्ध नाटक का प्रभाव अभिरुचि विशेष वाले व्यक्ति पर ही न पड़ कर सम्पूर्ण समाज के लिए ग्राह्य तथा उपादेय होता है। इसका कारण यह है कि इसमें तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन रहता है – **त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।**

नाटककारों में भवभूति का स्थान

संस्कृत नाटककारों में कालिदास के सदृश सम्माननीय केवल भवभूति ही हैं तिलकमंजरीकार धनपाल ने भवभूति की सरस्वती की नट स्त्री से समता करते हुए कहा है–

स्पष्टभावरसा चित्रैः पदन्यासैः प्रवर्तिता।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना।।

विदर्भदेश के काश्यपगोत्रीय कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी भवभूति के पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जतुकर्णी था। टीकाकारों के अनुसार, भवभूति का वास्तविक नाम

श्रीकृष्ण था किन्तु कवि ने स्वयं अपने को 'भट्ट श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम' लिखा है – **साम्बा पुनातु भवभूति पवित्रमूर्तिः।**

यद्यपि भवभूति के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं प्राप्त होती है तथापि यह स्पष्ट है कि इनके जीवनकाल के अन्तिम समय में कान्यकुब्ज के विद्याप्रेमी राजा यशोवर्मा का आश्रय इन्हें प्राप्त हुआ था। यशोवर्मा ने 733 ई. के लगभग कश्मीर नरेश की अधीनता स्वीकार की थी अतः महाकवि भवभूति का समय भी आठवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है।

ग्रन्थ रचना : भवभूति रचित तीन नाटक ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

1. **मालतीमाधव** – यह एक बृहत् प्रकरण है जिसमें मालती तथा माधव की कल्पना प्रसूत वैवाहिक कथा का सविस्तर वर्णन किया गया है।

2. **महावीरचरित** – यहाँ राम के पूर्वार्द्ध जीवन से सम्बद्ध चरित प्रस्तुत किया गया है यहाँ रामकथा को नाटकीय रूप देने में भवभूति ने अपूर्व कुशलता को प्रदर्शित किया है।

3. **उत्तररामचरितम्** – उत्तरराम चरित के कथानक का आधार वाल्मीकि रामायण है।

उत्तररामचरित के कथानक का आधार तथा मूलकथा में परिवर्तन –

उत्तररामचरित के कथानक का आधार वाल्मीकि रामायण है। उत्तरराम चरित में प्रयुक्त उत्तरपद न केवल राम के पूर्ववर्ती जीवन वृत्त का बोधक है बल्कि उसका सम्बन्ध वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड से भी लगता है। साथ हो इससे यह भी ध्वनि निकलती है कि कवि ने पूर्व रामचरित का निबन्धन अपनी कृति महावीरचरित में कर दिया है। कतिपय विद्वान् वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त मानते हुये उसे महर्षि वाल्मीकि की कृति मानने से परहेज करते हैं रामायण के उत्तरकाण्ड की रचना वाल्मीकि ने की है या नहीं इस असम्बद्ध प्रसङ्ग को छोड़कर यह विवेचन करना है कि महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित के कथानक को लेकर उसमें क्या-क्या परिवर्तन-परिवर्द्धन किया है? नाट्यशिल्प की दृष्टि से उत्तररामचरित में महाकवि भवभूति को असाधारण सफलता मिली है। विद्वज्जन इसका मूल कारण मूलकथा में परिवर्तन को ही मानते हैं।

महाकवि भवभूति की उर्वरा कल्पना शक्ति ने अनेक नाट्य बीजों को अङ्कुरित किया है जिससे उनकी मौलिक सूझ-बूझ से सिञ्चित अपूर्व भावना आम्रवृक्ष सौरभ से सुरभित काव्यकलाकलित ललितनाट्यवाटिका प्रफुल्लित हो उठी है जो कि सहृदयों के सरस मनोमयूरों को हठात् प्रभावित कर सकती है। नाटक का प्रथम अङ्क भवभूति की कल्पनाओं से परिपूर्ण है। चित्र दर्शन का दृश्य तो उनकी अपनी कल्पना है। नाटक के प्रारम्भ में ''सर्वथा व्यवहर्तव्यम्'' इत्यादि कहकर कवि ने सीता के लोकापवाद एवं तज्जन्य परिणामों का मौन सङ्केत कर दिया है। गुरुजनों तथा माताओं को ऋष्यशृंग के आश्रम में भेजकर कवि ने सीतानिर्वासन के मार्ग को सुस्पष्ट कर दिया है, साथ ही अष्टावक्र के द्वारा प्रेषित वसिष्ठ का सन्देश राम को अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक करता है। कवि के ये सभी व्यापार समवेत रूप में सीता निर्वासन के लिये सहायक बनते हैं। कवि ने चित्रावली योजना के द्वारा राम और सीता के दाम्पत्य जीवन में स्नेह के गाम्भीर्य का अङ्कन कर भावी वियोग की असहनीयता को अत्यन्त तीव्र बना दिया है। चित्र दर्शन में कवि ने नाट्य विषयक उन समस्त बीजों का वपन कर दिया है जो कि शनैः शनैः अङ्कुरित होकर क्रमशः पल्लवित एवं पुष्पित हो नाटकीय व्यापार के विकास में सहायक होते हैं। नाटक के प्रारम्भ में की गई राम की प्रतिज्ञा (यदि वा जानकीमपि) उन्हें प्रजानुरञ्जन के लिये सीता निर्वासन को विवश कर देती है। परिपूर्ण गर्भ वाली सीता के दोहद की तत्काल पूर्ति करने के लिए

अरुन्धती और माताओं का आदेश और सीता का वन–भ्रमण तथा भागीरथी के शीतल, शान्त, स्वच्छ जल में अवगाहन करने का विचार कवि की कल्पना से प्रसूत है। सीता परित्याग के मध्य में लवणासुर के उपद्रवों का वर्णन तथा राम का उसकी व्यवस्था में लगना कवि के नाट्य कौशल का परिचायक है।

द्वितीय अङ्क में प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण कर कवि अपनी प्रतिभा का परिचय देता है। ऐतिहासिक घटनाओं का सहारा लेकर भी कवि ने नाटकीय इतिवृत्त को प्रभावी बना दिया है। शम्बूक वध की प्रख्यात घटना के आधार पर कवि ने राम का पञ्चवटी के उन पूर्व परिचित स्थानों में लाकर खड़ा कर दिया है, जिन्हें विस्मृत करना राम के लिय अत्यन्त कठिन है। उस प्रस्रवण पर्वत को राम भला कैसे भुला सकते हैं जहाँ सीता विषयक रति की प्रकृष्टता प्रकट हो रही है। अतएव वहाँ के सीता के सहवास की स्मृतियों से विह्वल होकर अपनी मनोव्यथा की अभिव्यक्ति निर्बाध रूप से कर सकते हैं। ऐतिहासिक पात्रों के साथ ही कवि ने अनेक काल्पनिक पात्रों का भी संयोजन किया है जिनमें वासन्ती, आत्रेयी, तमसा, मुरला आदि प्रमुख हैं। तृतीय अङ्क में छाया सीता की संयोजना के द्वारा कवि ने अद्‌भुत करुण रस की योजना निर्मित की है। छाया सीता की योजना से राम और सीता के पवित्र प्रेम के परिपाक की पुष्टि होती है। पञ्चवटी में सीता के स्मरण से राम की चेतनाशून्यता तथा सीता के स्पर्श से पुनः चेतना की उपलब्धि सीता के हृदय को आश्वस्त कर देता है कि राम का उनके प्रति कितना स्वाभाविक निश्छल प्रेम है। राम के प्रति खिन्नचित्त एवं उदासीन सीता के प्रेम को पुनः जागृत करने के लिए कवि उनके मानित प्रिय पुत्र करिशावक पर गजराज के आक्रमण की भूमिका को लाता है जिससे अन्यमनस्क सीता पुत्र प्रेम के कारण सहसा उसके परित्राण के लिए आर्यपुत्र (राम) को पुकारती है। युवक करिशावक को देखकर उन्हें अपने प्रिय पुत्र कुश–लव की याद आ जाती है जिससे उनका कुण्ठित एवं स्नेह रहित हृदय पुनः प्रेम पारावार में प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार ये कथानक भवभूति के सर्वस्वभूत करुण रस के सहायक बनते हैं। कथानक की प्रगति के लिये कवि अनेक प्रकार के काल्पनिक उपादानों को लेता है। दाण्डायन और सौधातकि नामक वाल्मीकि के कल्पित शिष्यों की सृष्टि कवि ने विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया है। महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में राम के आने से पहले महर्षि वसिष्ठ, अरुन्धती, राजा जनक तथा राजमाताओं को एकत्रित करना लव एवं चन्द्र–केतु के युद्ध को प्रस्तुत कर राम को युद्ध प्रसङ्ग से अलग रखना और महर्षि वाल्मीकि के आदेश से लक्ष्मण के द्वारा गर्भ नाटक की संयोजना ये सभी महाकवि भवभूति की स्वयं की कल्पनायें हैं।

महाकवि भवभूति ने नाटक के अन्त में राम और सीता का सुखद मिलन करा कर मूल कथा में पूर्णरूप से परिवर्तन कर दिया है। कवि ने नायक नायिका के मिलन से प्रस्तुत नाटक का सुखद पर्यवसान किया है। इस सुखान्त नाटक में भवभूति ने मुनि के आदेश के परिपालन के साथ यह भी सिद्ध कर दिया है कि दाम्पत्य प्रेम का शुद्ध रूप किस प्रकार मङ्गलमय परिणति को प्राप्त होता है। यदि विशुद्ध दाम्पत्य या पवित्र हार्दिक प्रणय है, तो उसका दु:खद विवर्त किस प्रकार सुखद परिणति को प्राप्त होता है, यह स्पष्ट कर दिया है। भवभूति की सहज प्रीतिसृष्टि ने विधिसृष्टि को उपेक्षित कर आचार्य मम्मट के ''नियतिकृतनियमरहिताम्....'' इत्यादि प्रतिज्ञा वचन को सहज रूप में चरितार्थ कर दिया है। यह कवि की अनुपम एवं असाधारण कल्पना कला का ही उत्कृष्ट परिणाम है।

1.3 अंगों के नामकरण की सार्थकता

प्रथम अङ्क 'चित्रदर्शन' नामकरण की सार्थकता

उत्तररामचरित के प्रत्येक अङ्क अपनी स्वयं की विशेषता से मण्डित हैं। उनकी विशेषताओं को महाकवि भवभूति ने सभी अङ्कों के नामकरण से ही स्पष्ट कर दिया है उदाहरणत: यदि महाकवि भवभूति चाहते तो व चित्रदर्शन के प्रसङ्ग को न उपस्थित करते। महर्षि वसिष्ठ की आज्ञा तथा प्रजानुरञ्जन विषयक

अपनी प्रतिज्ञा का परिपालन करते हुए वे दुर्मुख के सन्देश को सुनने के अनन्तर ही सती सीता का परित्याग कर सकते थे। किन्तु यदि महाकवि भवभूति ऐसा ही कर बैठते तो उत्तररामचरित नाटक का माधुर्य ही समाप्त हो जाता। प्रजानुरञ्जन के लिये की गई प्रतिज्ञा के पश्चात् जनतन्त्र की रक्षा के लिये राम के लिये प्रिया सीता का परित्याग स्वाभाविक ही था। कवि यदि सीता का परित्याग यों ही करा देता तो नाटकीय वैशिष्ट्य एवं करुण रस का उत्कर्ष समाप्तप्राय हो जाता। इस प्रकार आनन्दनिष्यन्दी नाटक से आनन्द निष्यन्द क्षरित (टपक) जाता। रसरूप आनन्द की रक्षा के लिये कवि ने चित्रदर्शन की अवतारणा की है। चित्रदर्शन की अवतारणा से कवि राम की सीता विषयक रति को और पुष्ट कर देता है। अनेक प्रेम परिपक्व अवस्थाओं के चित्रण से वह प्रेक्षकों को यह दिखा देता है कि दाम्पत्य के आदर्श राम का सीता के प्रति कितना प्रगाढ़ प्रेम है और वे सीता के बिना इस संसार में नहीं रह सकते। उन्हें सीता का वियाग परम असह्य है।

लक्ष्मण खिन्न हुई सीता के मनोविनोद के लिये चित्रवीथिका प्रसङ्ग प्रस्तुत करते हैं। सर्वप्रथम राम के द्वारा यह पूछे जाने पर कि यह चित्र कहाँ तक लिखा गया है? लक्ष्मण सीता की अग्नि शुद्ध तक बतलाते हैं। जिस पर राम उन्हें ऐसा करने से वर्जित करते हुए कहते हैं कि जन्म से ही पवित्र सीता की पवित्रता के लिये अग्नि आदि पदार्थों की आवश्यकता नहीं, क्योंकि तीर्थ का जल और अग्नि किसी दूसरे पदार्थ से पवित्र नहीं होते हैं। इस पुनीत प्रसङ्ग के द्वारा कवि ने अपने दो उद्देश्य रखे हैं। एक तो उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह उत्तररामचरित आर्या सीता की शुद्धि पर्यन्त ही है अर्थात् प्रजाजनों के द्वारा अपवित्र घोषित सीता के चरित्र की पवित्रता वर्णन तक यह नाटक भी अवसित हो जायेगा। दूसरे यह कि राम को सीता के चरित्र के विषय में किञ्चिदपि सन्देह नहीं है। वे उन्हें तीर्थजल और अग्नि के सदृश पवित्र मानते हैं। तभी तो वे दृष्टान्त में कहते हैं –

''नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।।''

सीता के जृम्भकास्त्रों के विषय में पूछे जाने पर लक्ष्मण उन्हें बतलाते हैं कि ये मन्त्रप्रयोगसहित जृम्भकास्त्र हैं। इसी समय राम उन अस्त्रों की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं और सीता उन्हें नमस्कार करती है। परिणामतः राम जृम्भकास्त्रों की ओर से सीता को आशीर्वाद देते हैं कि अब वे सर्वतोभावेन तुम्हारी सन्तति को प्राप्त होंवे। इस प्रसङ्ग के द्वारा कवि ने नाटकीय संविधानक में एक अद्भुत चमत्कार प्रदर्शित किया है। सीता परित्याग के पश्चात् द्वितीय अङ्क में ही आत्रेयी वनदेवता से कुदश और लव का परिचय देती है, जिसका उल्लेख करती हुई वह कहती है कि उन्हें प्रयोगविधिसहित जृम्भकास्त्र जन्मसिद्ध है। यद्यपि उस समय वासन्ती को यह ज्ञात नहीं हो पाता है कि कुश–लव उनकी सखी सीता के सुपुत्र हैं। परन्तु प्रेक्षकों को यह सुनते ही ज्ञात हो जाता है कि कुश और लव को जृम्भकास्त्र क्यों जन्म से ही सिद्ध है? उन्हें चित्रदर्शन का वह प्रसङ्ग तत्काल स्मृत हो उठेगा कि राम के द्वारा दिए गए आशीर्वाद से उनके पुत्रों को जन्म से ही उनकी प्राप्ति होनी थी इस प्रकार जहाँ एक ओर पाठकों की जिज्ञासा का समाधान होता है वहीं दूसरी ओर उन्हें यह कौतूहल एवं आश्चर्य भी होता है कि सीता की अन्तरङ्ग सखी वासन्ती सीता की सन्तति के विषय में नहीं जान पा रही है। युद्ध के प्रसङ्ग में जब लव जृम्भकास्त्रों का प्रयोग करते हैं तो सुमन्त्र को यह स्मरण होता है कि ये सर्वप्रथम कृशाश्व को प्राप्त हुए थे, उनसे विश्वामित्र को और विश्वामित्र से राम को। ठीक यही बात लक्ष्मण ने चित्रदर्शन के प्रसङ्ग में कही थी। इस प्रकार चित्रदर्शन में लक्ष्मण तथा युद्ध प्रसङ्ग में सुमन्त्र के द्वारा जृम्भकास्त्र विषयक वार्ता एक जैसो रहती है। इसी प्रकार षष्ठ अङ्क में राम भी चित्र दर्शन में जृम्भकास्त्रों के विषय में कहे गये श्लोक को ज्यों का त्यों पुनः कहते हैं –

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा परः सहस्र शरदस्तपांसि।

एतान्यदर्शन्गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि।।

इस प्रकार उन्हें जृम्भकास्त्रों को लेकर लव पर सन्देह होता है कि हो न हो ये हमारे ही पुत्ररत्न न हों? इससे प्रेक्षकों के मन में अद्‌भुत वैचित्र्य की जागृति होती है और उन्हें लगता है कि यदि हम वहाँ होते तो राम को बता देते तथा यह युद्धचर्चा भी न छिड़ती।

जृम्भकास्त्र प्रसङ्ग के पश्चात् कवि चित्र द्वारा मिथिला के वृत्तान्त को प्रस्तुत करता है जहाँ राम सीता के कमनीयकङ्कणयुक्त कर को ग्रहण कर रहे हैं। इससे कवि राम को वैवाहिक स्थिति को स्पष्ट कर देता है कि चूँकि उन्होंने सीता को पाणिपीडन कर पाणिगृहीती बनाया है, अतः उन्हें आजीवन उसका निर्वाह करना चाहिये। इसके पश्चात् ये लोग अयोध्या में आ जाते हैं। यहाँ राम सीता के बाल्यकालीन सौन्दर्य का चित्रण करते हैं जिसमें सीता के प्रति उनकी अनुरक्ति पुष्ट होती है। माता कैकेयी के वृत्तान्त को राम टाल देते हैं और वनवास की कहानी आ जाती है। भगवती भागीरथी को देखकर राम उनसे प्रार्थना करते हैं कि हे माता आप सीता में अरुन्धती की तरह कल्याण की चिन्ता करने वाली हो। इस प्रसङ्ग के द्वारा कवि ने यह स्पष्ट कर दिया है कि राम के द्वारा निर्वासित सीता का कल्याण करने वाली भगवती भारीरथी होगी। सीता के परित्याग के अनन्तर वे स्वयं को गङ्गा के प्रवाह में गिरा देती है और वहीं दो पुत्रों को जन्म देती है। भगवती वसुन्धरा और गङ्गा उन्हें पाताल में ले जाती है और दूध छूटने के बाद सीता के दोनों पुत्रों को गङ्गा उन्हें पाताल में ले जाती है और उचित समय पर सीता के दोनों पुत्रों को गङ्गा स्वयमेव महर्षि वाल्मीकि को सौंपती हैं। चित्र दर्शन में गङ्गा स कहे गये इस वाक्य की पुष्टि सप्तम अङ्क के उस प्रसङ्ग पर होती है जबकि गङ्गा राम को स्मरण दिलाती है कि चित्र दर्शन के प्रसङ्ग में आपने मुझसे कहा था कि हे माता! आप बहू सीता में अरुन्धती की तरह कल्याण की चिन्ता करने वाली होंवे।

द्वितीय अङ्क 'पंचवटी प्रवेश' नामकरण की सार्थकता

1. भवभूति ने द्वितीय अङ्क में शुद्ध-विष्कम्भक का प्रयोग कर बीती हुई एवं आने वाली घटनाओं को जोड़ा है। सीता देवी का अपवाद-सहित त्याग एवं शम्बूक-वध के लिए रामचन्द्र जी के पुनः दण्डकारण्य में आने की सूचना के साथ-साथ विष्कम्भक में आत्रेयी तथा वासन्ती के वार्त्तालाप में रामचन्द्र जी की स्वर्णमयी मूर्ति की चर्चा से उनका सीता विषयक प्रेम तथा आदर सूचित होता है।

2. रामचन्द्र जी के सीता विषयक प्रेम की पुष्टि के लिए यह आवश्यक है कि वे जिन स्थानों पर उनके साथ रहे थे उनका एक बार दर्शन अवश्य करें, इसी से नाटकीय प्रवाह की सृष्टि हो सकीती है। इसके लिए कवि ने शम्बूक की सृष्टि की है। स्वार्थ के वशीभूत होकर रामचन्द्रजी पञ्चवटी में प्रवेश नहीं करते। अपितु अपनी प्रजा के हित के लिए, ब्राह्मण-पुत्र के उद्धार के लिए, उनका इस स्थान में प्रवेश होता है। किन्तु पूर्व परिचित स्थान में आकर वे सीता देवी को भुला नहीं पाते। वे पति तथा राजा दोनों ही रूपों में लोकोत्तर हैं। उनका चरित्र वज्र से भी कठोर है और कुसुम से भी मृदु! राज्यकार्य में व्याप्त रामचन्द्र जी के सीता-विषयक प्रेम की जागृति के लिए नाटककार ने इस घटना की सृष्टि की और इसलिए इस अङ्ग का नाम भी 'पञ्चवटी-प्रवेश' रखा है।

3. पहले अङ्क तथा द्वितीय अङ्क की घटना में लगभग 12 वर्ष का अन्तर है। कुश एवं लव ग्यारह वर्ष के होकर वेद का अध्ययन करने लगे हैं, लक्ष्मण के भी पुत्र उत्पन्न हो गया है तथा इतने समय में प्रकृति में भी परिवर्तन हो चुका है। बारह वर्ष तक अन्दर ही अन्दर सिसकता हुआ राम का सीताविषयक प्रेम जंगल में आकर प्रदीप्त हो उठता है। वे प्रजा के सामने रो भी नहीं सकते।

उनका प्रजानुरञ्जन का आदर्श उनके पत्नी-प्रेम को अरण्यरोदन बना देता है। पहले अङ्क का राजा राम तथा पति राम का अन्तर्द्वन्द्व दूसरे अङ्क में मूर्त हो जाता है।

4. संक्षेप में इस अङ्क में रामचन्द्र जी के चरित्र का विकास हुआ है। यहाँ नाटककार ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से चरित्र का विकास दिखाया है जो कवित्व अनुभूति तथा सत्यता से ओत-प्रोत है।

तृतीय अङ्क छाया सीता (छायाङ्क) नामकरण की सार्थकता

तृतीय अङ्क में महाकवि भवभूति ने अपनी अद्भुत कल्पना के द्वारा राम की दयिता सीता को छाया के रूप में प्रस्तुत किया है। सीता को छाया के रूप में प्रस्तुत करने में कवि के कई एक प्रयोजन हैं। जिन्हें इस रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है -

1. कवि भगवती भागीरथी के जल में डूबी हुई सीता को छाया के रूप में प्रस्तुत कर प्रेक्षकों को धैर्य बँधा देता है कि गङ्गा में निमग्न सीता वस्तुतः जीवित है। इससे प्रेक्षकों के हृदय में इस आशा का सञ्चार होता है कि कभी न कभी सीता और राम का पुनर्मिलन होगा और इस प्रकार प्रकार नाटक के प्रति उनकी अभिरुचि बढ़ती है।

2. संयोग शृङ्गार विप्रलम्भ के द्वारा और अधिक पुष्टता को प्राप्त हो जाता है जैसा कि कविराज विश्वनाथ ने लिखा भी है -

न विना विप्रलम्भेन संयोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते।।

इस सिद्धान्त के अनुसार कवि ने इस अङ्क में करुण रस मिश्रित विप्रलम्भ शृंगार को प्रस्तुत किया है। विप्रलम्भ शृंगार के द्वारा दोनों की व्याकुलता एवं अन्योन्यानुरक्ति को प्रस्तुत किया गया है। यदि कवि छाया के रूप में सीता को न प्रस्तुत करता तो राम का विलाप और वियोग एकपक्षीय हो जाता इसलिये कवि ने राम के साथ ही साथ सीता के सहज अनुराग एवं तीव्रतर आत्मानुभूतियों को भी चित्रित किया है। यदि कवि यहाँ छाया सीता के रूप में सीता के वियोग व्यथित हृदय को न प्रस्तुत करता तो अन्त में होने वाले संयोग का मिठास फीका हो जाता ।

3. छाया सीता के द्वारा कवि ने सीता को राम के सम्मुख प्रस्तुत कर प्रेक्षकों के हृदय में अपूर्व करुण रस की धारा प्रवाहित कर दी है। पवित्र चरित्र युक्त निरपराध भोली भाली सीता की मूर्ति ही करुणा की मूर्ति बन जाती है-

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी।

4. छाया सीता के द्वारा कवि ने राम और सीता के हृदयों की कोमलता, परस्पर संरम्भ एवं दर्शनातुरता को प्रस्तुत किया है। नेपथ्य के द्वारा जब सीता अपने पुत्र करिकलभ की विपत्ति को सुनती है तो सहसा सामयिक समय को विस्मृत कर उसकी रक्षा के लिए राम को पुकारने लगती है परन्तु जब उन्हें यह स्मरण होता है कि सम्प्रति हमारी स्थिति क्या है? तो धिक्कारती हुई कहती हैं कि वे चिरपरिचित अक्षर पञ्चवटी को देखने से मुझ अभागिन का अनुसरण कर रहे हैं और 'हाय आर्य पुत्र' कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं। इन दोनों ही प्रसङ्गों से दोनों की अन्योन्यानुरक्ति अनुमित हो जाती है। राम की सीताविषयक रति और परवशता प्रेक्षकों के समक्ष उस समय मूर्त

रूप में प्रस्तुत हो जाती है जब वे सीता के हाथ के प्रिय स्पर्श से उच्छ्वसित और आह्लादित होकर कहने लगते हैं –

आश्च्योतनं न हरिचन्दनपल्लवानां
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः।
आतप्तजीवितमनः परितर्पणोऽयं
सञ्जीवनौषधिरसौ हृदि नु प्रसक्तः।।

सीता के विरहानल में दग्ध राम को उनके शीतल पाणिपङ्कज ही परम विश्रान्ति प्रदान करते हैं। कवि की यह कल्पना कितनी स्वाभाविक है, हृन्मर्मावगाहिनी एवं संवेदना युक्त है। सीता राम के सहज भाव को समझ कर अपने ही को कौशती हैं। वे कहने लगती हैं कि मुझ अभागिन को लक्ष्य करके स्नेह के द्वारा इस प्रकार कहने वाले आर्य पुत्र के लिए मैं क्यां वज्रमयी और निर्दय हो जाऊँगी? मैं ही इनका हृदय जानती हूँ और ये मेरा हृदय जानते हैं। आर्यपुत्र राम के उल्लापों में बहने वाली जलधारा से सीता का हृदय पूर्ण स्वच्छ और प्रसन्न हो जाता है।

इस अङ्क में जहाँ एक ओर ललितलवलीकन्दलतुल्य सीता के करस्पर्श से राम आह्लाद की अनुभूति कर पृथक् होने से दु:ख का अनुभव करते हैं वहीं दूसरी ओर सीता भी राम की वियोगवेदना से अपने को स्थिर नहीं कर पाती हैं। उभयपक्षीय यह प्रेम उस समय पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है जब सीता यज्ञ में हिरण्मयी सीता प्रतिकृति को सहधर्मचारिणी सुन लेती है। वे कहने लगती है कि हे आर्यपुत्र! अब वस्तुतः आप आर्यपुत्र है। इससे उन्हें परम आनन्द की अनुभूति होती है और वे अपने दु:ख-दर्द को भूलकर कहने लगती है कि मेरे परित्यागरूपी शल्य को इस कार्य के द्वारा आर्यपुत्र ने उखाड़ डाला है। इस प्रसङ्ग के द्वारा प्रेक्षकों की दृष्टि दोनों के संयोग के अवलोकन के लिए व्यग्र हो उठती है। अन्त में छाया सीता की उत्कण्ठा, मेघ की रुकावट के कारण पूर्णचन्द्र का दर्शन कब तक होगा? इस कथन से प्रेक्षकों को आकृष्ट कर लेती है और छाया सीता मूर्तिमती सीता बन जाती है।

इस छायाङ्क की कल्पना से ही कवि ने सीता वियोग से प्राणोत्सर्ग समुद्यत राम के प्राणों की रक्षा करने का एक अद्भुत उपाय खोज निकाला है।

यह छायाङ्क नाम भी नाटकीय घटनाओं के अनुरूप है। यहाँ तमसा सीता के साथ सीता राम के साथ और राम वासन्ती के साथ छाया की तरह दिखाई पड़ते हैं। ये लोग यहाँ की छाया की तरह ही अनुकरण कर रहे हैं। 'छाया' शब्द अमरकोश के अनुसार कान्ति वाचक है। कान्ति शब्द शोभा और इच्छा का वाचक है। इच्छा तथा भावना पर्यायवाची ही है। इस प्रकार राम की सीता के प्रति तथा सीता की राम के प्रति भावना प्रस्तुत करने से छायाङ्क की पूर्ण सार्थकता है। राम के विचारों में सीता की छाया है और सीता के भावों में राम छाया के रूप में स्थित है। वियोग व्यथा से व्यथित होने के कारण राम और सीता केवल छाया (कान्ति) के रूप में दिखाई पड़ते हैं। जिस प्रकार धूप से संतप्त लोगों को छाया परम आह्लाद प्रदान करती है उसी पकार सीता भी अपने छाया से शोक संतप्त राम को परम आनन्द देती है। रामचन्द्र के द्वारा स्वर्णमयी सीता प्रतिकृति के विषय में कहे जाने पर सीता को अत्यन्त संतोष मिलता है क्योंकि वह भी तो सीता की छाया है। पाठकों के करुण रस ओत-प्रोत विपलम्भ श्रृंगार से परम आह्लाद की अनुभूति होती है क्योंकि अह्लाद की प्राप्ति छाया से ही सम्भव है। इस प्रकार अनेक छायाओं पर चक्कर काटता हुआ यह छायाङ्क विविध वैशिष्ट्यों से अनुस्यूत है।

कवि का यह छायाङ्क अभिज्ञानशाकुन्तल के उस दृश्य को सामने ला देता है, जिसमें सानुमति नामक अप्सरा छाया के रूप में दुष्यन्त के उद्यान में स्थित होकर शकुन्तला के प्रति उनके विचारों को जानने के लिए उपस्थित होती है।

चतुर्थ अङ्क 'कौशल्याजनकयोग' नामकरण की सार्थकता

उत्तररामचरित में प्रथम अङ्क में, चित्र-दर्शन के समय, जब सीताजी लक्ष्मण जी से ''वच्छ, इयं वि अवर का? (वत्स, इयमप्यपरा का?)'' पूछती हैं और लक्ष्मण लज्जा और मन्दहास्य के साथ स्वगत कहते हैं 'अये, उर्मिलां पृच्छत्यार्या...।' उसी समय एक शिष्ट हास्य की झलक मात्र दिखाई देती है। इसके उपरान्त तृतीय अङ्क के अन्त तक करुणा ही करुणा विद्यमान है। कारुण्यमय वातावरण में विश्रान्ति के लिय कुछ हास्य की आवश्यकता स्वाभाविक होती है। अत: भवभूति ने चतुर्थ अङ्क में औत्सुक्य, हास्य तथा प्रसन्नता के क्षणों का अवसर देकर अपनी नाटकीय चतुरता तथा दर्शक (एवं पाठक) के मनोभावों को समझने की कुशलता का परिचय दिया है। इस प्रकार के दृश्य सौधातकि एवं दण्डायन की वार्ता, अश्व के वर्णन तथा वटु एवं लव के कथनोपकथनों में मिलते हैं। कौसल्या एवं लव की वार्ता में औत्सुक्य तथा अङ्क के अन्त में क्रोध के भी दर्शन होते हैं। इस प्रकार दर्शक (या पाठक) कारुण्य की गहराई से निकल कर कुछ विश्रान्ति का अनुभव करता है।

तृतीय अङ्क में सीता, वासन्ती, तमसा आदि राम की व्याकुलता एवं पश्चाताप से कुछ सन्तोष प्राप्त कर लेती हैं। रामचन्द्रजी की माता एवं सीताजी के पिता जनक के मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए स्थान की आवश्यकता है। उस आवश्यकता की पूर्ति इस चतुर्थ अङ्क में कर दी गई है। जनक वैखानस हो गए है उन्हें अपनी पुत्री के अपमान पर क्रोध है, वे लोक तथा राम को नष्ट कर देना चाहते हैं किन्तु अरुन्धती के समझाने पर शान्त हो जाते हैं। उधर वधू के अपमान से कौशल्या उसके पिता से मिलने में सर्वसाधारण के समान ग्लानियुक्त हैं। इन दोनों के मिलन की आवश्यकता को कवि ने गम्भीरता के साथ सोचा है इसलिये उन्होंने इस अङ्क का नाम ही 'कौशल्या-जनक-योग' रख दिया है।

पञ्चम अङ्क 'कुमारविक्रम' नामकरण की सार्थकता

जिस प्रकार तृतीय अङ्क को करुणभावना की गहन-भूमिका में प्रविष्ट सहृदय की भाव-विश्रानित के लिये चतर्थ अङ्क की मनोविनोदमयी सृष्टि की गई है, उसी प्रकार षष्ठ अङ्क में पुन: उद्बुद्ध होने वाली करुणा की यथोचित चर्वण के लिए कवि ने पञ्चम अङ्क के युद्ध-वर्णन द्वारा छठे अङ्क की उस भावना की गम्भीर अनुभूति की रक्षा की है। अत: पञ्चम अङ्क की युद्ध चर्चा छठे अङ्क के कारुण्य को नवीन रूप देने की भूमिका का कार्य करती है। किञ्च आगे होने वाले 'सम्मेलन' की भूमिका भी यहीं तीव्रता के साथ आगे बढ़ती है।

कवि ने पञ्चम अङ्क को 'कुमारविक्रम' नाम दिया है। टीकाकारों ने अधिकतकर 'कुमारयोर्विकमो यत्रेति कुमारविक्रम:' इस बहुव्रीहि समास द्वारा उक्त नामकरण की सार्थकता सिद्ध की है। किन्तु यदि अङ्क की घटनाओं को देखा जाए तो इसमें लव का ही विक्रम वर्णित है, चन्द्रकेतु का नहीं। यहाँ लव ही युद्ध करने वाला, जृम्भकास्त्र का प्रयोग करने वाला एवं रामचन्द्र जी की सेनाओं को त्रस्त कर देने वाला है। दूसरी ओर चन्द्रकेतु या तो सुमन्त्र के साथ उसके पराक्रम की प्रशंसा करता है या केवल संवाद, उसके विक्रय का यहाँ कोई वर्णन नहीं। इसके अतिरिक्त चतुर्थ अङ्क में लव ही युद्ध के लिए सज्जित होता है तथा पञ्चम अङ्क के अन्त में वह ही चन्द्रकेतु को चुनौती देता है। अत: घटना की दृष्टि से यहाँ ''कुमारस्य (लवस्य) विक्रमो यत्र स: कुमारविक्रमो नामाङ्क'' यही समासयुक्त प्रतीत होता है। इस आधार पर ही इसका नामकरण भी उपयुक्त प्रतीत होता है।

षष्ठ अङ्क 'कुमारप्रत्यभिज्ञान' नामकरण की सार्थकता

षष्ठ अङ्क की अवतारणाा 'प्रत्यभिज्ञान-दृश्य' के लिए अत्यन्त आवश्यक थी। इस स्थान तक लव एवं कुश के चरित्र के विभिन्न पक्षों का भी उद्घाटन कर दिया है। लव एवं कुश में रघुवंश की दीप्ति, उनमें सीता के मुख की झाँकी, सीता परित्याग के स्थान और समय की अवधि बालकों की अवस्था आदि से

राम को यह विश्वास हो जाता है कि लव-कुश सीता के ही पुत्र हैं। नाटक के लिए यह भी आवश्यक है कि राम सीता के विषय में एकान्तिक रूप से निराश न हो। लव एवं कुश को देखकर वे सीता के विषय में अवश्य ही उत्कण्ठित होते हैं। इसलिए चरमावधि तक पहुँचने के लिए इस अङ्क की महत्ता स्वत: सिद्ध है।

इसके अतिरिक्त कवि चतुर्थ अङ्क से ही श्रीराम, उनके कुटम्बी तथा कुश-लव-सभी को परस्पर मिलाने के विचार में है। इस अङ्क में आकर उसका यह उद्देश्य बहुत-कुछ पूर्ण होने लगता है। चतुर्थ अङ्क से प्रारब्ध किये गये कथा-सूत्र यहाँ एकत्रित होते दिखाई देते हैं।

छठे अङ्क में यत्र-तत्र नाटकीय सोत्प्रासों, जिनके एक-प्रकार-विशेष को अंग्रेजी साहित्य में 'आयरनी आफ स्पीच' कहा गया है, का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इसका प्रयोग लव तथा कुश की उक्तियों में भी रामचन्द्र जी को 'तात' कहते समय तथा चन्द्रकेतु की उक्तियों में 'प्रियवयस्य' कहते समय हुआ है। लव तथा कुश चन्द्रकेतु की मित्रता के कारण ही रामचन्द्र जी को 'तात' कहते हैं, किन्तु अन्ततोगत्वा वे उनके तात ही सिद्ध होते हैं। उक्ति की यह व्यञ्जना कितनी सार्थक तथा नाटकीय गतिविधि में कैसी रोचकता ला रही है।

कवि ने अङ्क का नाम '**कुमारप्रत्यभिज्ञान**' रखा है। यहाँ 'प्रत्यभिज्ञान' को पारिभाषिक रूप से नहीं ले सकते हैं, क्योंकि ज्ञात वस्तु का पुन: ज्ञान ही 'प्रत्यभिज्ञान' कहलाता है। यहाँ श्रीरामचन्द्रजी सर्वप्रथम ही लव एवं कुश को देख रहे हैं। इसी प्रकार 'शैव-दर्शन' के 'प्रत्यभिज्ञान' से इसका कोई सम्बन्ध नहीं, अत: उक्त प्रसङ्ग में 'प्रत्यभिज्ञान' का सीधा-साधा अर्थ 'परिचय' या 'पहचान' ही लेना उचित है।

सप्तमाङ्क 'गर्भाङ्क' नामकरण की सार्थकता

उत्तररामचरित का सप्तम अङ्क महाकवि भवभूति की काव्यप्रतिभा एवं अलौकिक कल्पना शक्ति का अनुपम उदाहरण है। कवि ने गर्भाङ्क की योजना कर नाटक जगत् में एक नई विधा की सृष्टि कर दी है। इस गर्भाङ्ग में अप्सरायें महर्षि के प्रसिद्ध नागरिक नाटक को देखने के लिये आते हैं। नाटक में करुणा की प्रधानता रहती है। नाटक को देखकर सभी को विश्वास हो जाता है कि सीता निर्दोष हैं। अन्त में राम, सीता, लव और कुश का सुखद मिलन होता है। इस प्रकार इस नाटक का सुखमय पर्यवसान होता है। कवि की यह सारी योजना नाटक को सुखान्त बनाने के लिए हुई है क्योंकि संस्कृत में नाटक प्राय: सुखान्त होते हैं।

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के समीप गंगा तट पर यह नाटक अभिनीत होता है। सर्वप्रथम सूत्रधार प्रवेश कर कहता है कि भूतार्थवादी भगवान् आदिकवि वाल्मीकि स्थावरजंगम जगत् को आज्ञा देते हैं कि हमने आर्षदृष्टि के द्वारा पावन करुण और अद्‌भुत रस युक्त अमृतवचनसिक्त जो नाटक बनाया है उसमें काव्य के गौरव से आप लोगों को ध्यान देना चाहिये।

सूत्रधार के इस कथन के पश्चात् नेपथ्य से दु:खिता सीता का करुण कन्दन सुनाई पड़ता है कि ''हा आर्यपुत्र! कुमार लक्ष्मण एकाकिनी अशरणा उपस्थित प्रसव वेदना वाली और आशा शून्य जंगल में मुझे व्याघ्र आदि हिंस्र जन्तु खाने की इच्छा कर रहे हैं।'' हाय इस समय मन्द भाग्य वाली मैं अपने शरीर को गंगा जी में डाल रही हूँ। इस प्रसंग के द्वारा कवि ने प्रेक्षकों क समक्ष देवी सीता की स्थिति स्पष्ट कर दी है। इससे आवेग में आकर राम कहने लगते हैं कि देवि सीते! लक्ष्मण को देखो। लक्ष्मण राम का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहते हैं कि यह नाटक है। वे धैर्य के साथ आर्ष रचना को देखने का निवेदन करते हैं। राम वज्रहृदय होकर देखने के लिये तत्पर होते हैं।

तत्पश्चात् एक-एक बालक को गोद में लिए हुए भगवती वसुन्धरा और भागीरथी से स्थिर की गई मूर्च्छित दशा में सीता प्रवेश करती हैं। दोनों देवियाँ सीता को आश्वस्त करती हैं। भागीरथी कहती हैं कि संसार को धारण करने वाली भगवती विश्वम्भरा भी दुःखित हो रही है अतएव सन्तान के स्नेह ने जीत लिया अथवा यह सन्तान स्नेह सभी में सामान्य रूप से रहने वाला, मन का मोह बन्धन रूप, प्राणियों का आन्तरिक चाञ्चल्य रूप और संसार का तन्तु स्वरूप है। जब वसुन्धरा को समझाती हुई गंगा इस प्रकार कहती है कि फल देने के लिए तत्पर भाग्य के द्वारों को कौन बन्द कर सकता है? तो भगवती पृथ्वी कहती हैं कि क्या यह सब कुछ करना आपके रामभद्र को उचित है? उन्होंने बाल्यावस्था में किये गये पाणिग्रहण की अपेक्षा नहीं की। इस प्रकार मेरी, जनक की, अग्नि की, सीता के पातिव्रत्य की और पवित्र सन्तान की भी अपेक्षा नहीं की है -

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः।
नाहं, न जनको नाग्निर्न तु वृत्तिर्न संततिः।।

गङ्गा वसुन्धरा का धैर्य बँधाती हुई कहती है -

घोरं लोके विततमयशो या च वह्नौ विशुद्धि
र्लङ्काद्वीपे कथमिव जनस्तामिह श्रद्दधातु?
इक्ष्वाकूणां कुलधनमिदं यत्समाराधनीयः
कृत्स्नो लोकस्तदिह विषमे किं स वत्सः करोतु?

इस प्रकार राम की विवशता को प्रस्तुत कर गङ्गा वसुन्धरा को शान्त करती हैं। इसके पश्चात् दोनों देवियाँ सीता की पवित्रता को प्रमाणित करती हैं। नेपथ्य में कोलाहल होता है। गङ्गा और पृथ्वी समझ जाती है कि कृशाश्व, विश्वामित्र और राम इस प्रकार का जिन शस्त्रों का गुरुक्रम है, वे जृम्भकास्त्र प्रकट हो रहे हैं। लक्ष्मण इन अस्त्रों के औचित्य को बतलाते हुए राम को स्मरण दिलाते हैं कि आपने चित्रदर्शन के प्रसङ्ग में देवी सीता को लक्ष्य कर कहा था कि ये अस्त्र सब तरह से तुम्हारी प्रसूति को प्राप्त होङ्गे। इस दृश्य के द्वारा कवि राम के समक्ष उनके पूर्ववचन की पुष्टि कराके प्रेक्षकों के समक्ष सीता की पवित्रता को प्रस्तुत करता है। जब सीता अपने पुत्रों के लिये चिन्ता करती है तो गङ्गा उन दोनों बालकों को भगवान् वाल्मीकि को अर्पण करने की बात करती हैं। इससे भगवान् वाल्मीकि के आश्रम में देखे गये कुश लव के प्रति राम की वृत्ति स्थिर होती है। इसी बीच पृथ्वी सीता को मर्त्यलोक का परित्याग कर पाताल लोक में चलने के लिये कहती हैं जिससे राम अत्यन्त क्षुब्ध हो उठते हैं। तत्पश्चात् नेपथ्य में गङ्गा और पृथ्वी सीता को अरुन्धती को सौंपती हैं। तत्पश्चात् अरुन्धती और सीता प्रवेश करती है। अरुन्धती मूर्च्छित राम को होश में लाने के लिए सीता से उनके स्पर्श के लिये कहती हैं। अरुन्धती मूर्च्छित राम को होश में लाने के लिये सीता से उनके स्पर्श के लिए कहती है। समाश्वस्त होकर राम हर्ष और आश्चर्यपूर्वक देखकर कहने लगते हैं - ''कथं देवी जानकी? (सलज्जम्) अये! कथमम्बाऽरुन्धती? कथं सर्वे ऋष्यश्रृगादयोऽस्मद्गुरवः?'' यहीं भगवती भागीरथी और वसुन्धरा राम को उनके पूर्व वचनों का स्मरण कराती हुई सीता को सौंप देती हैं।

भगवती अरुन्धती नागरिकों के अभिमत को जानने के लिए कहती हैं कि इस समय पृथ्वी और गङ्गा से प्रशंसित, मुझ अरुन्धती से समर्पित, अग्नि के द्वारा निर्णीत पुण्य चरित्रा, देवताओं के द्वारा संस्तुता सीता राम को ग्रहण कर लें। इस विषय में आप लोगों का क्या अभिमत है? अरुन्धती के इस कथन पर सभी लोग सीता को पवित्र मानकर राम के द्वारा ग्रहण करने योग्य मानते हैं। आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगती है। इस प्रकार अरुन्धती के आदेश से राम सीता को स्वीकार कर लेते हैं। महर्षि वाल्मीकि कुल-कलव

को उनके माता-पिता को समर्पित कर देते हैं। इसी बीच शत्रुघ्न भी लवणासुर का वध करके आ जाते हैं। इस प्रकार सभी ओर से हर्ष और उल्लास का वातावरण छा जाता है।

सप्तम अङ्क की योजना के द्वारा महाकवि भवभूति ने अपने कई एक उद्देश्यों की पूर्ति की है। उन्होंने इस दृश्य के द्वारा प्रेक्षकों को कहीं से कहीं ले जाकर पटक दिया है, लेकिन उनकी इस योजना में अस्वाभाविकता नहीं है। प्रथम अङ्क के चित्रदर्शन में बाँधी गई भूमिका इसी अङ्क में पूर्ण परिणति को प्राप्त होती है। नाटक के प्रथम एवं तृतीय अङ्क में बोये गये अनेक बीज क्रमशः अङ्कुरित, पल्लवित एवं पुष्पित होते हुये यहाँ फलित होते हैं। चित्रदर्शन के समय कही गई जृम्भकास्त्रों की बात यहाँ मार्मिक रहस्य का उद्घाटन करती है। इसी प्रकार प्रथम अङ्क में राम के द्वारा भगवती वसुन्धरा और गङ्गा को समर्पित की गई सीता यहाँ उन दोनों के द्वारा राम को लौटाई जाती है। सबसे बड़ा वैचित्र्य यह है कि प्रेक्षक राम तथा सीता के वियोग सागर में आकण्ठ निमग्न रहते हैं परन्तु इस नाटक के द्वारा वे सहसा ही कहीं से कहीं पहुँचा दिये जाते हैं। यह एक नाटकीय चमत्कार है कि प्रेक्षक देखते रहते हैं। राम और सीता का वियोग परन्तु बिना किसी आशा और उम्मीद के देखने से लगते हैं संयोग। इस प्रकार महाकवि भवभूति ने सप्तम अङ्क में एक अद्वितीय शिल्प का संयोजन किया है जो कि अत्यन्त विचित्र, सजीव एवं चित्ताकर्षक है। इससे कवि के नाट्यकौशल गम्भीरता का सहज में ही अनुमान किया जा सकता है। इस अन्तिम अङ्क के द्वारा कवि ने अत्यन्त कुशलता के साथ अपने उत्तररामचरित नाटक को सुखान्त बनाया है। यद्यपि इसका कथानक वाल्मीकि रामायण से लिया गया है। परन्तु इसमें सीता का मिलन विलक्षण वैचित्र्य महाकवि भवभूति की प्रतिभा की देन है।

1.4 महाकवि भवभूति की भाषाशैली

महाकवि भवभूति संस्कृत साहित्य जगत् की विलक्षण विभूति हैं। उनकी सहज अनुभूति नाट्यदर्शन के द्वारा विश्वसनीय हुई है। उन्होंने अपने हृदयनिष्ठ सहज व्यापारों का सुन्दर सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है। उनकी कवितावनिता, कला छन्द एवं सुमधुर शब्द विन्यास से शोभायमान है। वहीं दूसरी ओर रस, भाव है। महाकवि भवभूति की शैली की यह एक असाधारण विशेषता है कि वे भाव के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हैं। विचार या भाव सम्पत्ति कविता या नाटक की आत्मा है और भाषा उसका शरीर है। जो हृदयस्थ भाव को मूर्तिमान करती है। चूंकि भाषा और भाव का नित्य सम्बन्ध है अतः जिस प्रकार शरीर और आत्मा, पदार्थ और शक्ति, प्रकृति और पुरुष हैं उसी प्रकार भाषा और भाव दोनों ही अविच्छेद्य हैं। यदि हृदय पक्ष भाव को सृष्ट करता है तो कलापक्ष अपनी कलात्मक शक्ति से उसे स्वरूप प्रदान कर परिपुष्ट करता है। इससे यह फलित होता है कि भाषा और भाव की अन्विति सहज एवं सजीव होनी चाहिये। सजीव कविता में भाषा स्वयमेव भाव का अनुगमन करती है। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य महाकवि पोप का विचार माननीय है -

"It is not enough no harshness gives offence. The sound must seen an echo to the sense."

अर्थात् एक आदर्श भाषा शैली के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है कि शब्दों में कर्ण-कटुता न हो अपितु शब्द ऐसे हों कि उनके उच्चारण मात्र से अर्थ ध्वनित हो जाय।

महाकवि भवभूति की काव्यशैली की यह विशेषता है कि उसमें भावपक्ष की कलात्मक ढंग से संरचना के साथ उसके सौन्दर्यसन्दोह के संवर्धन के लिए कलापक्ष की संसृष्टि है। उनके नाटकों की लोकप्रियता का प्रमुख कारण यह है कि उन्होंने उनमें भाव के अनुरूप सुललित एवं परिष्कृत भाषा का प्रयोग किया है। वस्तुतः सुन्दर भाव के अभिव्यञ्जन के लिए तदनुरूप भाषा भी अपेक्षित है कहा भी गया है -

'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितानानम्'

अर्थात् आभूषणविहीन होने पर किसी तरुणी का सुन्दर मुख भी शोभित नहीं होता है। महाकवि भवभूति ने अपने उत्तररामचरित नाटक में इसका विशेष ध्यान रखा है। उत्तररामचरित की भाषा अत्यन्त संयमित–परिमार्जित एवं विषयानुकूल है। उन्होंने अनावश्यक शब्द प्रपञ्च को प्रश्रय न देकर भाषा को शब्दाडम्बर से बोझिल नहीं किया है और न ही वैदर्भी रीति के अनुचित पक्षपात से गहन, सघन अरण्य को जघन्य अनरण्य के रूप में चित्रित किया है। अवसर और औचित्य की दृष्टि से आवश्यकतानुसार उन्होंने सगे और सौतेले के भेदभाव को छोड़कर वैदर्भी और गौड़ी दोनों रीतियों का प्रयोग किया है। उन्होंने झूठी वाहवाही पाने के लिए वैदर्भी को यों ही खींचा नहीं है और न ही पण्डितमण्डली को ध्वस्त करने की नियत से कृत्रिम गौड़ी को ही बरबस सर्वस्व न्यौछावर किया है। किसी शाब्दिक लोभ लालच में न फँसना ही महाकवि का सहज गुण है।

महाकवि भवभूति ने भाव परिपूर्ण हृदय की गम्भीर एवं सच्ची अनुभूति की अभिव्यक्ति सरलतम शब्दों में की है। सीता के शीतलस्पर्श से उत्पन्न आह्लादमयी अनुभूति का वर्णन करते हुए राम कहते हैं –

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च।।

कवि ललनाललाम नयनाभिराम ललित लावण्योपेत विविध विलास संवलित सहज भाव से जहाँ सीता केअङ्गों के द्वारा माताओं के मानस में कौतूहल प्रकट करवा रहा है, वहीं वह ललित एवं सहज, सुन्दर शब्दावली से सङ्गुम्फित भाषा भामिनी के सुन्दर विलास के सहृदयों में कौतूहल उत्पन्न कर रहा है।

प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै–
र्दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै –
रकृत मधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकैः।

इस श्लोक के द्वारा जहाँ एक ओर भगवती सीता का सौंदर्य विलसित होता है वहीं दूसरी ओर भाषा का विलास भी मुखरित होने लगता है। कवि की भाषा भी किसी ललना से कम सुन्दर नहीं है। सीता के सौंदर्य से उसकी सहज में ही तुलना की जा सकती है। यदि सीता छोटे–छोटे और विरल कपालों तक फैले हुए सुन्दर केशों से और फूलों की तरह दशनदीधिति से सुन्दर मुख को धारण करती हुई अल्प वय वाले ललित से ललित चान्दनी के समान उज्ज्वल स्वाभाविक विलासों से सम्पन्न मधुर अङ्गों के द्वारा माताओं के हृदय में कौतूहल उत्पन्न कर देती है तो कवि की भाषासुन्दरी की भी छोटे–छोटे और विरल मुख द्वार से कपोल प्रान्त तक फैलने वाले सुन्दर शब्दों से फूलों की तरह विकसित शब्ददीधिति से चमत्कृत सुन्दर स्वरूप को धारण करती हुई चुस्त चटकीले, छटे छरहर चन्द्रिका के सदृश चाकचक्य उत्पन्न कर देने वाले नव स्फूर्ति से सम्पन्न होने के कारण अभिनव तारुण्य से परिपूर्ण विलासों से सम्पन्न आह्लादक अङ्गों से सहृदयों में कौतूहल उत्पन्न कर देती है। सीता के वचनामृत भाषा के वचनामृत हो जाते हैं इसका सुन्दर निदर्शन इस प्रकार है –

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि

कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।

राम सीता के ललितलावण्य से श्रृंगार की सुखद अनुभूति कर रहे हैं। कवि ने तदनुरूप भाषा का प्रयोग कर पाठकों के श्रोत्रेन्द्रियों को समरसता की अनुभूति करा दी है। भाव भाषा के द्वारा पूर्णतया अनुगमित है। पाठक इसकी अनुभूति निम्नलिखित श्लोक से सहज में ही कर सकता है –

अलसललितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदा-

दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि।

परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि

त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवात्ता।।

पञ्चवटी में राम के अकस्मात् दर्शन से सीता के हृदय में सहसा ही अनेक भाव समुद्वेलित हो उठते हैं। कवि ने सीता की इस भावशबलता का वर्णन वैदर्भी रीति के द्वारा किया है। विरहव्यथा से व्यथित जानकी तो शरीरधारिणी करुणा की मूर्ति हो ही जाती है, भाषा भी इस व्यापार में पीछे नहीं रहती है –

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं

दधती विलोलकबरीकमाननम्।

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी

विरहव्यथेव वनमेति जानकी।।

राम के प्रति वासन्ती की कटु उलाहना उसके सीता विषयक मार्मिक राग को सहज में ही अभिव्यक्त कर देता है। राम के प्रति उसकी कठोरता एवं सरलता विचित्र भाव सामञ्जस्य को उपस्थित कर देता है। कवि मानों उसके हृदय को ही खोलकर रख देता है –

अयि कठोर! यशः किल ते प्रियं

किमयशो ननु घोरमतः परम्।

किमभवद्विपिने हरिणीदृशः?

कथं नाथ! कथं बत! मन्यसे?

ऐसी जीवन्त, सरस, आह्लादक, रोचक एवं प्रभावोत्पादक भाषासुन्दरी किस रसिक के चित्त को आकर्षित नही कर लेती है? कौन उसके मधुर वाक्यविन्यासों से आविद्ध नहीं हो जाता है? अपने कटाक्षवीक्षण से वह किसे मर्माहत न कर भावावेश से अभिभूत नहीं कर देती है? वस्तुतः वासन्ती का कथन जिस प्रकार से राम के हृदय में सीता विषयक प्रीति को उत्पन्न करता है उसी प्रकार भाषा भी रसिक के हृदय में प्रीति को उद्दीप्त करती है। हृदय की स्थिति को हृदय ही जानता है। लौकिक साधनों से प्रेम घटाया–बढ़ाया नहीं जा सकता। प्रेम अन्तःभाव की अपेक्षा रखता है। इस सम्बन्ध में कवि की भाषा सङ्गति इस प्रकार है –

व्यतिषजति पदार्थानन्तरः कोऽपि हेतु

र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं

द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।।

पद्य के ही समान हृदय की गूढ़ भावनाओं की अभिव्यक्ति में कवि ने गद्य के भी उन स्थलों पर वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित गद्य भाग द्रष्टव्य है –

''हन्त हन्त! सम्प्रति विपर्यस्तो जीवलोकः। अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य। शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। असारः संसारः। काष्ठप्रायं शरीरम्। अशरणोऽस्मि। किं करोमि? का गतिः?''

कवि ने उत्तररामचरित में यथावसर उचित स्थलों पर गौड़ी रीति का प्रयोग किया है। प्रकृति के सहज स्वरूप के चित्रण में तदनुकूल गौडी रीति का प्रयोग किया है। दिवस की कठोरता का वर्णन निम्नलिखित श्लोक में देखें –

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन संपातिभि-
र्घर्मस्रंसितबन्धनैश्च कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।
छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः।।

अश्वरक्षकों के उत्तेजक शब्दों को सुनकर चमकते हुए प्रचण्ड शस्त्रों को देखकर धनुष को चढ़ाते हुए लव दीर्घसमासों और कठोर वर्णो से युक्त भाषा का प्रयोग करता है। लव के पराक्रम का वर्णन विषयानुकूल गौडो रीति में हुआ है –

आगर्जग्दिरिकुञ्जकुञ्जरघटानिस्तीर्णकर्णज्वर-
ज्यानिर्घोषममन्ददुन्दुभिरवैराध्मातमुज्जृम्भयन्।
वेल्लद्भैरवरुण्डखण्डनिकरैर्वीरो विधत्ते भुवं
तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणामिव।।

इसी प्रकार कवि ने लाटी तथा पाञ्चाली रोति का भी समुचित स्थानों पर सन्निवेश किया है। 'प्रतनुविरलै........' इत्यादि स्थलों में लाटी का अवलोकन किया जा सकता है। दधति कुहरभाजाम्.... इत्यादि में पाञ्चाली की स्थिति है। समास रूप में भवभूति की काव्य शैली के विषय में इस प्रकार कहा जा सकता है कि उनकी भाषासुन्दरी सरस, सरल, प्राञ्जल, परिष्कृत और प्रसादपूर्ण होती हुई यथावसर भाषाभामिनी के रूप में स्थित होकर ओजस्विनी एवं कठोर हो जाती है। परन्तु उभयत्र वह कुछ मन्दस्मिति लिये रहती है, जिसके लिए पाठक लालायित हो उठता है। कहीं–कहीं पर मुहावरेदार चुस्त भाषा से भाषा के मन्द मुस्कराहट में चुस्ती सी आ गई है, अतएव वह अपने यौवन के विकास द्वार पर पहुँच जाती है। भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार है। वे जहाँ जिस भाव को प्रस्तुत करना चाहते हैं भाषा उस भाव को उसके सहज रूप में ही प्रस्तुत कर देती है। उनके कथोपकथन यथावसर छोटे, गम्भीर, सरस एवं सुन्दर हैं।

कालिदास की तरह भवभूति की भाषा में भी अपूर्व तरलता है। इन दोनों कवियों में भाषा के सम्बन्ध में कौन अधिक सक्षम है इसका निर्णय करना कठिन है। भवभूति का उत्तररामचरित भाषा की दृष्टि से अभिज्ञानशाकुन्तल की अपेक्षा न्यून नहीं है। जहाँ जैसा भाव है वहाँ वैसी ही भाषा का प्रयोग दोनों कवियों ने किया है। परन्तु महाकवि भवभूति कहीं–कहीं पाण्डित्य के चक्कर में पड़कर दुरूह भाषा का प्रयोग कर देते हैं जिससे साधारण लोकदृष्टि से वे कुछ ऊपर उठ जाते हैं। इस सम्बन्ध में श्री द्विजेन्द्रलाल राय के विचार इस प्रकार है –

''यद्यपि भाषा की सरलता और लालित्य में भवभूति की भाषा कालिदास की भाषा से निकृष्ट है, किन्तु प्रसार के सम्बन्ध में वह कालिदास की भाषा से श्रेष्ठ है। अपनी रचना में वे ललित कोमल–कान्त पदावली भी सुना सकते हैं और गम्भीर जलद नाद भी सुना सकते हैं। संस्कृत भाषा कितनी गाढ़ी और गम्भीर हो सकती है, इसका चरम निदर्शन भवभूति के उत्तररामचरित की भाषा है।''

उनकी भाषा में विदग्धता, प्रौढ़ता, उदारता, गुणबहुलता, प्रसन्नकर्कशता, विपुलार्थता, अर्थगुरुता, मधुरता, भावुकता आदि गुणों के दर्शन होते हैं। इनके साथ ही साथ उनका नाद सौंदर्य अत्यन्त ही प्रभावशाली एवं चमत्कारोत्पादक है।

गुण – महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में तीनों ही गुणों का प्रयोग किया है। वीररस प्रधान होने के कारण महावीरचरित में ओज गुण का, शृंगार रस प्रधान होने के कारण मालतीमाधव में माधुर्य गुण का करुण रस प्रधान होने के कारण उत्तररामचरित में प्रसाद गुण का प्राधान्य है।

उत्तररामचरित में कुछ स्थलों को छोड़कर प्रसाद गुण का ही प्रयोग हुआ है परन्तु औचित्य की दृष्टि से जहाँ माधुर्य और ओज की आवश्यकता प्रतीत हुई है वहाँ उनका प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए प्रथम अङ्क में ही अनेक स्थलों पर हमं प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं। तृतीय अङ्क में राम और सीता के सुख–दु:ख की अभिव्यक्ति प्रसाद से परिपूर्ण है। भगवती अरुन्धती के द्वारा जगत् वन्दनीया सीता के प्रति व्यक्त किये गये विचारों में भी प्रसाद गुण है –

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु, ननु वन्द्यासि जगतां
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु, न च लिङ्गं, न च वयः।।

वासन्ती के निम्नलिखित कथन में भी प्रसाद गुण के दर्शन होते हैं –

त्वं जीवितं, त्वमसि मे हृदयं, द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण।।

द्वितीय अङ्क में आत्रेयी और वासन्ती के वार्तालाप में भी हमें प्रसाद गुण का दर्शन होता है। इस प्रकार कवि ने इस नाटक में प्रसाद गुण का भरपूर प्रयोग किया है।

प्रसङ्ग तथा परिस्थिति के अनुकूल कवि का ओजोगुण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। अविवेकी प्रजा सीता की अग्निशुद्धि पर विश्वास नहीं करती है। कंचुकी के इस वाक्य को सुनकर राजा जनक ओजपूर्ण भाषा में कहते हैं –

अहो निर्दयता दुरात्मनां पौराणाम्! अहो रामभद्रस्य क्षिप्रकारिता।
एतद्वैशस वज्रघोरपतनं शश्वन्ममोत्पश्चतः
क्रोधस्य ज्वलितं झटित्यवसरश्चापेन शापेन वा।

इसी प्रकार कुश की उक्तियों में भी ओजोगुण के दर्शन होते हैं –

दत्तेन्द्राभयदक्षिणैर्भगवतो वैवस्वतादा मनो–
र्दृप्तानां दमनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः।
आदित्यैर्यदि विग्रहो नृपतिभिर्धन्यं ममैतत्ततो
दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रहीधितिशिखानीराजितज्यं धनुः।

उत्तररामचरित में अनेक स्थानों पर माधुर्य गुण के मधुर दर्शन होते हैं। प्रारम्भ में ही सीता के मधुर अङ्गों के वर्णन में माधुर्य मिलता है। (प्रतनुविरलैः.....1/20) इसी अङ्क का 'अलसललित.....' 1/24 माधुर्य का सुन्दर उदाहरण है। इसी प्रकार निम्नलिखित श्लोक में भी माधुर्य की सहज स्थिति है –

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगा-
दविरलितकपालं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।

अलङ्कार छटाः महाकवि भवभूति ने अपनी कवितावनिता को विभिन्न अलङ्कारों से सजाया सँवारा है। इनकी रचनाओं में अलङ्कारों की सुन्दर छटा-छिटक रही है। यथावसर उचित अलङ्कारों का प्रयोग कर उन्होंने उसकी स्वाभाविकता को संवारा है। अतएव ये उसके अङ्ग बन गये हैं, उसके साथ पूर्णतया घुल-मिल गये हैं। उन्होंने अलङ्कारों की बहुलता से न तो उसको बोझिल बनाया है और न ही हार को पाँव में पहनाकर अलङ्कारों का अनुचित सन्निवेश किया है। यों तो उन्होंने आवश्यकतानुसार विभिन्न अलङ्कारों का प्रयोग किया है परन्तु वे उपमा के प्रयोग में अत्यन्त सिद्धहस्त है। उनके तीनों ही नाटकों में अन्य अलङ्कारों की अपेक्षा उपमा का प्रचुर प्रयोग हुआ है।

उत्तररामचरित के लगभग पद्यों में उपमा का प्रयोग हुआ है। उपमा अलङ्कार का एक उदाहरण –

हा हा धिक्! परगृहवासदूषणं
यद्वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाका –
दालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम्।

विषैले कुत्ते द्वारा काटे गये व्यक्ति के घावों को उपायों के द्वारा ठीक कर दिया जाता है परन्तु अज्ञात रूप में उसका विष शरीर में फैलता रहता है और कुछ समय पश्चात् उसका भयङ्कर परिणाम सामने आ जाता है। उसी प्रकार सीता का परगृहवासदूषण अद्भुत उपायों के द्वारा प्रशमित कर दिया गया था परन्तु वह अज्ञात रूप में फैलता रहा और उसका भयङ्कर परिणाम कालान्तर में प्रकट हो गया। यहाँ में कवि ने अमूर्त्त उपमेय के लिए अमूर्त्त उपमान की संयोजना की है।

रूपक : प्रथम अङ्क में जब सीता राम की गोद में सिर रखकर सो जाती है तो राम उनको सम्बोधित करते हुए एक ही पद्य में चार रूपकों का प्रयोग करते हैं –

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलचन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।।

इसी प्रकार अन्यत्र भी रूपक का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

अर्थान्तरन्यास : अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में कवि को असाधारण सफलता मिली है। दो विशेष के द्वारा एक सामान्य के समर्थन का उदाहरण निम्नलिखित पद्य है –

व्यतिषजति षदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।।

दृष्टान्त :

क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरञ्जनीय-
स्तन्नो यदुक्तमशुभं च न तत्क्षमं ते।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।।

संदेह - सीता के स्पर्श से प्राप्त आनन्द का राम के द्वारा वर्णन शुद्ध सन्देह का उदाहरण है-

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च।।

अतिशयोक्ति :

जनस्थाने शून्ये विकलरणैरार्यचरितै -
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।।

छन्द : योजना - महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में विषय के अनुकूल सरल व रोचक छन्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने अपने नाटकों में लगभग पच्चीस छन्दों का प्रयोग किया है। महावीरचरित और उत्तररामचरित में प्रयुक्त छन्दों की संख्या उन्नीस है। मालतीमाधव में पच्चीस छन्दों का प्रयोग हुआ है। जिन स्रग्धरा और उपेन्द्रवज्रा छन्दों का प्रयोग महावीरचरित में हुआ है वे उत्तररामचरित में नहीं है। उनके स्थान पर उत्तररामचरित में मञ्जुभाषिणी और द्रुतविलम्बित का प्रयोग किया गया है।

उत्तररामचरित में नवासी पद्यों की रचना अनुष्टुप् छन्दों में हुई है। वे अनुष्टुप् रचना में महर्षि वाल्मीकि के श्लोक से प्रभावित हैं। अनुष्टुप् के पश्चात् सबसे अधिक संख्या शिखरिणी छन्द की है। उनकी शिखरिणी अत्यन्त हृद्य, रोचक और प्रभावोत्पादक है। शिखरिणी करुण, वीर और श्रृङ्गार के लिए उपयुक्त छन्द है। अतएव महाकवि ने इन तीनों रसों की अभिव्यक्ति के लिए शिखरिणी का स‌न्दर प्रयोग किया है। उनकी शिखरिणी की प्रशंसा करते हुए किसी ने ठीक ही कहा है -

भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे सा मयूरीव नृत्यति।।

शिखरिणी के अतिरिक्त उनका शार्दूलविक्रीडित भी प्रिय छन्द रहा है। शार्दूलविकीडित के माध्यम से उन्होंने उसके अनुरूप गम्भीर, भयावह रूक्ष विषयों को प्रस्तुत किया है। स्रग्धरा का प्रयोग कवि ने सम्भवतः उसके विशाल कलेवर के कारण नहीं किया है। करुण और विप्रलम्भ के लिए उचित मन्दाक्रान्ता का प्रयोग तृतीय अङ्क में हआ है। नायिका वर्णन के लिए वसन्ततिलका उत्तम छन्द माना गया है इसलिए वसन्ततिलका के द्वारा प्रायः सीताविषयक वृत्त को प्रस्तुत किया गया है। मालिनी छन्द का प्रयोग संभोग शृंगार के अनुकूल है। प्रायः उसी रस को स्फुटित करने के लिए कवि ने मालिनी का प्रयोग किया है।

1.5 पात्रों का चरित्र-चित्रण

राम -

राम एक सम्राट् के रूप में इस नाटक में आये हुए हैं। उन्हें भगवान् न कहकर रामभद्र नाम का प्रयोग भवभूति ने करवाया है। अपने पूर्व के नाटक 'महावीरचरित' में भवभूति ने राम को एक आदर्श महान्

वीर के रूप में उपस्थित किया था। परन्तु इस नाटक में वे प्रजा का आदर्श और कर्तव्य का वहन करने वाले ऐसे प्रजा–अनुरञ्जक सम्राट् हैं, जिन्हें वीरता से भी अधिक गुरुतर उत्तरदायित्व निभाना पड़ रहा है। प्रजा के भाग्यचक्र के वही केन्द्र बिन्दु हैं। प्रजा के भाग्य में, प्रजा की नैतिकता में तनिक भी त्रुटि आने पर सारा दोष सम्राट् का होगा, इसे राम भलीभांति स्वीकार करते हैं।

इसीलिए प्रजा की नैतिकता और प्रजा के चरित्र की रक्षा के लिए वे बहुत सावधान हैं। प्रजा को चरित्र के संबंध में उच्छृंखल होने का कहीं अवकाश न मिल जाय, इस संबंध में राम कितने सावधान हैं, इसका हमें तब ज्ञान होता है जब सीता के संबंध में लंका–निवास के कारण प्रजा की विपरीत भावना गुप्तचर से सुनकर वे सीता को अपने घर से निर्वासित करने में जरा भी संकोच नहीं करते। स्वयं वे पवित्र चरित्र वाली सीता की महत्ता से परिचित थे। लेकिन प्रजावर्ग में जब उस महत्ता का स्पष्टीकरण न हो सका या सीता के प्रति विश्वास न हो सका तब राम को सम्राट् का स्वरूप प्रकट करना पड़ा। हृदय में निवास करने वाली सीता का ध्यान त्यागकर राज्य में बसने वाली प्रजा का आग्रह पहले रखना पड़ा – **आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।**

सीता को निर्वासित करने के समय का वातावरण बड़ा ही करुणाजनक है। राम के हृदय में जो द्वन्द्व उपस्थित हुआ है, वह देखते ही बनता है। सीता गर्भवती हैं। ऋष्यशृंग के यज्ञ में गये हुए गुरुजनों ने आदेश दिया है कि राम को सब प्रकार सीता की अभिलाषाओं को पूर्ण करना है। जिस समय राम उनके निर्वासन का निश्चय कर रहे हैं, सीता उनकी बाँह पर ही सो रही हैं। सीता की यह करुणाजनक स्थिति देखकर राम का हृदय द्रवीभूत हो उठता है और अंत में वे सीता के पैरों पर अपना सिर रखकर रोने लगते हैं। यह दृश्य अवलोकनीय है–

(सीताया: पादौ शिरसि कृत्वा) अयं पश्चिमस्ते रामशिरसि पादपङ्कजस्पर्श:। (इति रोदिति)

किन्तु सीता के प्रति इस प्रियतम भाव को ऊपर से सम्राट् का चरण दबाये जा रहा है और राम के लिए रोने के सिवा दूसरा मार्ग नहीं है। रोने के पहले ही उन्होंने अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी है–

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम्।
छद्मना परिददामि मृत्यवे शौनिके गृहशकुन्तिकामिव॥

–प्रथम अंक 45

सम्राट् के दोष से प्रजा का कष्ट पाती है। राम के राज्य में एक ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु हो जाती है। ऋषियों से पूछने पर पता चलता है कि एक शूद्र के तपस्या करने के कारण यह असामयिक घटना हुई है। राज्य में यह उच्छृङ्खलता सम्राट् है। राम इसे स्वीकार करके उस शूद्र तपस्वी को खोजते हुए दण्डकवन में पहुँचते हैं और जब उसे मारने के लिए तलवार उठाते हैं तो उन्हें कुछ कठोरता का अनुभव होता है। पर उस शूद्र तपस्वी को मारने पर ही ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो सकता है। अतएव यह कठोरता उन्हें करनी पड़ती है। लेकिन सीता के निर्वासन में उन्होंने इससे भी कठोर कार्य किया था। जैसे शम्बूक को मारते समय वे अपने दाहिने हाथ को सम्बोधित करके कहते हैं कि रे दक्षिण हस्त! गर्भ के भार से अलसाई सीता के निर्वासन में पटु तुम में अब करुणा कहाँ है–

रे हस्तदक्षिण! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमनौ कृपाणम्।
रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्न–
सीताविवासनपटो: करुणा कुतस्ते?॥

–द्वितीय अङ्क

इसके बाद राम से सम्बन्धित सारा प्रसंग करुणा में डूबा हुआ दृष्टिगत होता है। राज्य का प्रबंध संचालन करते हुए भी वे सीता की करुणा से अपने को नहीं बचा पाते हैं। मर्यादा–पालन के लिए वे कठोर से कठोर हो सकते हैं और सज्जनता, शालीनता आदि के संबध में विनम्र से विनम्र हो सकते हैं। अश्वमेधयज्ञ के समय वे सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा बनवा कर शास्त्र–विधि का पालन करते हैं। उनका यह चरित्र इतना विलक्षण है कि बिरला ही कोई उस गहराई में पैठ सकता है। अतः भवभूति अपने एक पात्र से राम के विषय में कहलाते हैं–

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥

–द्वितीय अङ्क 7

दूसरे अंक के बाद राम का दर्शन तीसरे, छठे और सातवें अंक में होता है। सर्वत्र उन्हें सीता के वियोग की करुणा–धारा बहाये जा रही है। दण्डकवन को देखकर सीता के साथ वनवास काल की स्मृतियाँ ताजी हो उठती हैं। वे अचेत हो जाते हैं। कदाचित् सीता के प्रति उनकी इसी अनन्यप्रियता को जानकर भगवती भागीरथी ने सीता को अपने स्पर्श से राम को सचेत करने के लिए तमसा के साथ भेजा था।

राम को अपने वंश की मर्यादा और उसकी गौरवमय परम्परा के सभी लक्षणों का पूर्ण अभिज्ञान है। इसीलिए लव–कुश को देखकर उनके अंगों की पहचान कर वे कहते हैं कि मैं इन दोनों कुमारों में बहुत कुछ रघुवंशोत्पन्न कुमार की समानता देख रहा हूँ–

भूयिष्ठं च रघुकुलकौमारमनयोः पश्यामि।
कठोरपारावतकण्ठमेचकं वपुर्वृषस्कन्धसुबन्धुरंसयोः।
प्रसन्नसिंहस्तिमितं च वीक्षितं ध्वनिश्च माङ्गल्यमृदङ्गमांसला॥

–षष्ठ अङ्क 25

इसके बाद उन्हें ध्यान होता है कि इनके अंग तो सीता के अंगों के सदृश हैं–

अपि जनकसुतायास्तच्च तच्चानुरूपम्।
स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति॥

–षष्ठ अङ्क 26

राम सुख–दुःख के अतिशय आश्चर्य में डूब जाते हैं। क्या वे सीता के ही पुत्र हैं? सुख का यह अतिरेक उस धरती के सम्राट् को आत्मसात् कर लेता है और हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि राम का दाहिना हाथ सीता के निर्वासन में पटु हो सकता है, शूद्रमुनि के ऊपर तलवार चलाने में उद्यत हो सकता है लेकिन उसमें यह साहस नहीं है कि उन बालकों को राम की छाती से आलिंगन कराने में अस्वीकार कर दे। प्रजावत्सल सम्राट् को उसकी प्रजा ने मोह लिया और चाहता है कि किसी प्रकार यह सिद्ध हो जाय कि ये पुत्र सीता के ही हैं–

अयं विस्मयसम्प्लूवमानसुखदुःखातिशयो हृदयस्य मे विप्रलम्भः। यमाविति च भूयिष्ठात्मसंवादः। जीवद्वयापत्यचिह्ना हि देव्या गभिणीभाव आसीत्।

–षष्ठ अङ्क

संक्षेप में राम ने सीता का निर्वासन करके अपने सम्राट् पद को जितना गौरव प्रदान किया, उससे अधिक गौरव सीता को अपनी अपार करुणा व्यक्त करके प्रदान किया है। भवभूति को राम के इस चरित्र अंकन में बड़ी सफलता मिली है।

सीता–

राम के सिंहासनारूढ़ होने के बाद लोकोत्तर आनन्द के साथ प्रजा के दिन बीत रहे थे। सीता गर्भवती हुई। जिसके कारण भविष्य की आनन्दकल्पना में राजकुल निमग्न हो गया। मातायें, अरुन्धती और वशिष्ठ जामाता के यज्ञ से अष्टावक्र को भेजकर राम के लिए यह संदेश पहुँचाते हैं कि गर्भवती सीता की सभी अभिलाषाओं को राम पूर्ण करें। उन्हें कोई कष्ट न होने पाये। राम भी सीता के प्रति यही स्नेह रखते हैं और सीता की इच्छा पर ही उन्हें वनभूमियों का एक बार पुनः दर्शन कराने के लिए तैयार होते हैं। लेकिन दैव की कुछ दूसरी इच्छा थी। वनभूमि का दर्शन नहीं, सदैव के लिए गर्भवती अवस्था में ही सीता को वनवास दे दिया गया। वह भी वनभूमि दर्शन व्याज से। इतना सब होने पर भी भगवान् राम में सीता की एकनिष्ठता थी। राम के प्रति उनमें अलौकिक पूज्यभाव था। राम ने कहा था–

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

–प्रथम अंक 12

राम के इस वाक्य का समर्थन करती हुई सीता ने उसी समय उत्तर दिया–

अतएव राघवकुलधुरन्धर आर्यपुत्रः।

तत्काल सीता के सामने यह परिस्थिति आ गई। राम को प्रजा के अनुरंजन के लिए जानकी का परित्याग करना पड़ा और राम की रघुकुलश्रेष्ठता सीता को स्वीकार करनी पड़ी। सीता वनवास सेवन करती हुई पति के विरह का कष्ट भोग रही थी, किन्तु इससे भी बढ़कर कष्ट उन्हें यह था कि राम उनके विरह में व्यथा का भार ढो रहे हैं।

नाटक के दूसरे और तीसरे अंक में कवि ने राम और सीता के अनन्य प्रेम का दर्शन कराया है। दण्डकवन में राम सीता संबंधी पुरानी स्मृतियों में डूब रहे थे और उन्हें निश्चय हो गया था कि वनभूमि में गर्भवती सीता को हिंस्र जन्तुओं ने आहार बना लिया होगा। उस समय भागीरथी की आज्ञा से तमसा के साथ सीता भी वहाँ पहुँची थी। उन्हें वहाँ सब की दृष्टि से अदृश्य होकर केवल इसलिए उपस्थित होना था कि राम को मूर्च्छा आ जाये तो वे अपने स्पर्श से उनकी रक्षा करेंगी। राम वन की पुरानी परिचिता देवी वासन्ती के साथ वार्तालाप करते हुए सीता के वियोग में भीतर ही भीतर व्याकुल हो रहे थे और वासन्ती उनके वियोग को अपने सीता-विषयक समर्थन से और बढ़ा रही थी। पर सीता को वासन्ती का यह समर्थन तनिक भी सह्य नहीं हो रहा था। वे मन ही मन वासन्ती को कोस रही थी–

'त्वमेव सखि वासन्ति! दारुणा कठोरा च या एवमार्यपुत्रं प्रदीप्तं प्रदीपयसि।'

इधर सीता की पति में एकनिष्ठता, उधर राम का उनके प्रति असीत अनुराग दोनों की विरहाग्नि को दुगुने रूप से प्रदीप्त कर रहे हैं। विरहावस्था में दोनों संज्ञाहीन होते हैं, किन्तु प्रजावत्सल राम का कार्य प्रजारञ्जन था और सीता का धर्म या उनकी मनोवृत्तियों का अनुसरण। राम उस अवस्था में जब सीता का स्मरण करके मूर्च्छित होते हैं तब सीता अपने आपको कोसती हुई दुखी हो रही हैं कि मैं ही इस समय आर्यपुत्र के दुःख का कारण हो रही हूँ–

'एवमस्मि मन्दभागिनी पुनरपि आयासकारिणी आर्यपुत्रस्य'

राम के प्रति सीता के अनुराग की यह पराकाष्ठा है!

सातवें अंक में जब सब का मिलन होता है। तब माता अरुन्धती पुत्र राम को आदेश देती हैं–

जगत्पते रामभद्र!
नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम्।
हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे॥

–सप्तम अंक 20

तब सीता मन में कहती हैं–

'जानाति आर्यपुत्रः सीतादुःखं प्रमार्ष्टुम्।'

ऐसी अलौकिकचरित्रा पुत्री के प्रति राजर्षि जनक को गर्व है। वे कहते हैं–

'आः, कोऽयमग्निर्नाम अस्मत्प्रसूतिपरिशोधने? कष्टम्, एवंवादिना जनेन रामभद्रपरिभूता अपि पुनः परिभूयामहे।'

सीता की तुलना में अग्नि को अति तुच्छ मानती हुई अरुन्धती ने कहा है–

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं जनयति।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः॥

–चतुर्थ अंक 11

नाटक का कोई ऐसा पात्र नहीं है, जो सीता के पावन चरित्र की स्तुति न करता हो। एक तरह से यदि कहा जाय तो 'उत्तररामचरित नाटक' सीता यशोगान है। यदि हम इसे 'सीताचरित' नाम से पुकारें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

लव –

बालक लव का वीर–दर्प पूर्ण और विनम्रता से परिपूर्ण चरित्र बड़ा ही मनमोहक है। भवभूति ने इस चरित्र को बालस्वभाव की दृष्टि से इतना स्वाभाविक अंकित किया है कि कहीं दूसरे नाटक या काव्य में इसकी तुलना दृष्टिगत नहीं होती। कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में आया हुआ बालक भरत का चरित्र तो इसके सामने कृत्रिम प्रतीत होता है।

लव की विनम्रता और मर्यादानिष्ठता तो पिता राम के उत्तराधिकार से जन्म के साथ प्राप्त निधि है। चौथे अंक में वाल्मीकि–आश्रम में अतिथि की भाँति आये हुए जनक, कौशल्या, अरुन्धती के सामने जब लव पहली बार पहुँचता है तो वहाँ स मर्यादा और शिष्टाचार का ध्यान हो उठता है। वह कैसे अभिवादन करे, इसकी इसे चिन्ता है–

(प्रविश्य स्वगतम्) अविज्ञातवयःक्रमौचित्यात् पूज्यानपि ततः कथमभिवादयिष्ये? (विचिन्त्य) अयं पुनरविरुद्धप्रकार इति वृद्धेभ्यः श्रूयते। (सविनयमुपसृत्य) एष वो लवस्य शिरसा प्रणामपर्यायः।

–चतुर्थ अंक

अश्वमेधयज्ञ के घोड़े को देखकर आये हुए बटु जब उसे घोड़ा दिखाने के लिए ले जाना चाहते हैं और वह भी मन ही मन इसके लिए लालायित है तब भी वह शिष्टाचार के भंग होने से भयभीत है और उन पूज्यों को संबोधित करके बाल–स्वभाव में कहता है–

(सकौतुकोपरोधविनयम्) आर्याः! पश्यत। एभिर्नीतोऽस्मि।

–चतुर्थ अंक

बालकोपयुक्त कितना स्वाभाविक शिष्टता–गर्भित उत्तर है यह!

राम के विरुद्ध संग्राम करके भी जब लव को राम का प्रत्यक्ष दर्शन और उनके स्वभाव का परिचय होता है तब लव ने जो विचार व्यक्त किये हैं, वह उसकी महत्ता और विद्या–सम्पन्नता का द्योतक है। देखिये, यह राम की प्रशंसा में, जिसके विरुद्ध अभी तक वह संग्राम का रहा था, कह रहा है–

(स्वगतम्) अहो! पुण्यानुभावदर्शनोऽयं महापुरुषः।
आश्वासन इव भक्तीनामेकमायतनं महत्।
प्रकृष्टस्येव च धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसुन्दरः॥

–षष्ठ अंक 10

फिर तो लव के हृदय में–

विरोधो विश्रान्तः प्रसरति रसो निर्वृतिघनः।

–वही 11

लव में वीरता तो कूट–कूट कर भरी हुई है। वह किसी प्रकार अपनी पराजय सहने के लिए तैयार नहीं है। राम के अश्वमेधयज्ञ के रक्षकों की सप्तलोकैकवीर राम विषयक विजय–घोषणा सुनकर वह ओज और क्रोध में भर उठता है–

भोः भोः, तत् किमक्षत्रिया पृथिवी! यदेवमुद्घोष्यते।

युद्ध करना तो जैसे उसके लिए कौतुक है। वह बड़ी प्रसन्नता के साथ चन्द्रकेतु को युद्ध के लिए आह्वान करता है–

कुमार! कुमार! एह्येहि। विमर्दक्षमां भूमिमवतरावः।

–पञ्चम अंक

लव के चरित्र का नाटक में बड़ा रमणीय एवम् उदात्त अङ्कन भवभूति द्वारा किया गया है। उसकी तुलना किसी अन्य संस्कृत नाटक से नहीं मिलती।

1.6 'एको रसः करुण एव' के आधार पर उत्तररामचरित के अङ्गीरस का विवेचन

महाकवि भवभूति रससिद्ध कवि हैं। उन्होंने औचित्य को ध्यान में रखते हुय रस का सुन्दर संयोजन किया है क्योंकि रचनाओं में जहाँ औचित्य का सम्यक् निर्वाह होता है जहाँ रस का परिपाक होता है। कहा भी गया –

अनौचित्यादृते नान्यत् रसभङ्गस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा।।

अर्थात् अनौचित्य के अतिरिक्त रसभङ्ग का अन्य कोई कारण नहीं है। काव्य में औचित्य का निर्वाह ही रसपरिपाक का कारण है। रस संयोजन में महाकवि ने सर्वत्र स्वाभाविकता को स्थान दिया है। यही कारण है कि उनकी कविताकामिनी आदि से अन्त तक निरन्तर निर्बाध रूप से रसास्वादन कराती है। उसमें कहीं भी ऐसे कृत्रिम तत्त्व नहीं पाये जाते हैं जो कि पाठकों को रूखे–सूखे लगे तथा रसानुभूति में बाधक बनें। उनकी कविता में सभी तत्त्व सरस, सजीव, स्वाभाविक एवं आह्लादक हैं अतएव रसानुभूति में सहायक सिद्ध होते हैं। अङ्गीरस के मध्य में जो अन्य रस आये हैं वे स्वयं तो रोचक हैं ही, साथ ही साथ प्रधान रस की परिपूर्णता में उपकारक भी हैं।

उत्तररामचरित नाटक के अङ्गीरस के विषय में सभी आचार्य एक मत नहीं हैं। कतिपय विद्वान् करुण को अङ्गी रस मानते हैं तथा अन्य करुण विप्रलम्भ शृङ्गार को। यह स्थिति इसलिये उत्पन्न हो गयी है कि अङ्गीरस के विषय में नाटक लक्षणकारों ने एक व्यवस्था दे रखी है –

एको रसोऽङ्गीकर्तव्यो वीरः शृंगार एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम्।। (दशरूपक)

तथा

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः।। (साहित्यदर्पण)

यही बात रस के विषय में शिङ्गभूपाल, शारदातनय और विद्यानाथ आदि आचार्यों ने भी कही है। इस प्रकार उक्त शास्त्रोक्त रीति के अनुसार उत्तररामचरित में हमें शृंगार या वीर रस को अङ्गीरस के रूप में मानना चाहिये तथा अन्य रसों को अङ्ग के रूप में। परन्तु संस्कृत साहित्य के गम्भीर विद्वानों ने उत्तररामचरित में करुण को अङ्गीरस के रूप में स्वीकार किया है।

महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरित की प्रस्तावना में ही सीता की उदासी के द्वारा करुण रस के बीज को बो दिया है। उदाहरणतः गुरुजनों के अयोध्या से चले जाने से सीता खिन्न हो जाती हैं। राम उनकी सान्त्वना के लिए धर्मासन से वासगृह में जाते हैं। प्रथम अङ्क में ही भगवती, अरुन्धती, शान्ता और राजमाताओं का सन्देश, महर्षि वसिष्ठ का आदेश और राम की प्रतिज्ञा अज्ञात रूप से ही सीता परित्याग के कारण बन जाते हैं और सीता के परित्याग से ही आविर्भूत शोक सम्पूर्ण नाटक को करुणा–सागर में आप्लावित कर देता है। सीता का क्षणिक वियोग भी राम के लिए असह्य है। इसकी पुष्टि चित्रदर्शन का वह श्लोक कर देता ह जिसमें लक्ष्मण – 'आर्येणास्मिन्....' इतना ही कह पाते हैं कि राम उन्हें मध्य में ही रोक कर कहने लगते हैं –

.....विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि
प्रत्यावृत्तः स पुनरिव मे जानकीविप्रयोगः।

सीता के विषय में जब वे दुर्मुख के द्वारा किंवदन्ती को सुनते हैं तो मूर्च्छित हो जाते हैं। पवित्र सीता के विषय में यह सब कुछ सुनकर वे विलाप करने लगते हैं –

हन्त हन्त! सम्प्रति विपर्यस्तो जीवलोकः अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य। शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। असारः संसारः। काष्ठप्रायं शरीरम्। अशरणोऽस्मि। किं करोति? का गतिः?

इस प्रकार प्रथम अङ्क से प्रवाहित होने वाली करुण रस की यह धारा द्वितीय अङ्क के विष्कम्भक में भी दिखलाई पड़ती है। जनस्थान में तपोवन, पञ्चवटी, गोदावरी, प्रस्रवण और वासन्ती को देखकर आत्रेयी अधीर हो उठती है। आत्रेयी के मुख से सीता विषयक अपवाद को सुनकर ''हा दारुणो दैवनिर्घातः'' यह कहती हुई वासन्ती मूर्च्छित हो जाती है। जनस्थान में पहुँच कर राम भी वहाँ के परिचित स्थलों को और सीता की स्मृतियों को ध्यान कर व्यथित हो उठते हैं। वे व्यथित होकर कहने लगते हैं कि जिस पञ्चवटी में मैंने प्रियतमा सीता के साथ अपने घर की तरह दिनों को व्यतीत किया था, इस समय प्रियतमा सीता को नष्ट कर देने वाला, अतएव अकेला पापी राम उसी पञ्चवटी को कैसे देखे? अथवा उसका अनादर करके कैसे लौट जाए? राम के इस अन्तर्द्वन्द्व में भी उनकी तीव्र मनोव्यथा छिपी हुई है। सीता की स्मृति से उद्भूत यह विषाद अत्यन्त कारुणिक है।

तृतीय अङ्क में करुण रस की अत्यन्त मार्मिक, गम्भीर और हृदय को आकृष्ट कर लेने वाली अभिव्यक्ति हुई है। इस अङ्क में तो करुण रस चारों ओर से छा गया है। अङ्क के प्रारम्भ में ही सीता का करुण रस

पुटपाकप्रतीकाश बतला दिया गया है जोकि उन्हें आन्तरिक रूप से जला रहा है। पञ्चवटी में पूर्वपरिचित स्थानों को देखकर सीता की स्मृति से उनकी मनोव्यथा और ही तीव्र हो गई है।

राम के वियोग से सीता की दशा भी अत्यन्त गम्भीर है। उन्हें कवि के करुण रस की मूर्ति अथवा शरीरधारिणी विरहव्यथा के रूप में चित्रित किया है उनका दुर्बल और पीला शरीर किसी के भी हृदय में सहसा ही करुणा का उद्रेक कर सकता है। राम दण्डकारण्यवासप्रियसखी विदेहराजपुत्री का स्मरण कर मूर्च्छित हो जाते हैं। जब सीता के करकमलों के कोमलस्पर्श से राम को चेतना प्राप्त होती है तो वे कहते हैं कि पूर्व परिचित उत्तम जीवन का हेतु और मन को सन्तुष्ट कर देने वाला वही निश्चय स्पर्श है जो कि सन्तापजन्यमूर्च्छा को दूर कर तत्क्षण आनन्द को उत्पन्न कर पुन: जड़ता का ला रहा है। सीता के लिए आकुलित होते हुए वे निर्वेद के साथ कहने लगते हैं – ''हा प्रिये जानकि।'' जब उन्हं प्रिय प्रतिवचन नहीं मिलता है तो वे कहते हैं – ''हा न किञ्चिदत्र।'' सीता का मूर्तिमान् प्रसाद स्नेहार्द्र शीतल स्पर्श अब भी उन्हें आनन्दित कर रहा है, उस आनन्द से विभोर होकर वे कहने लगते हैं कि इस आनन्द की उपलब्धि तो हो रही है परन्तु हे आनन्ददायिनी तुम कहाँ हो? खोजने पर भी नहीं मिल रही हो अथवा प्रियतमा कहाँ है? कितनी सुन्दर करुण की योजना है।

करिकलभ को देखने के अनन्तर सीता को अपने पुत्र लव-कुश की याद आ जाती है और वे कहने लगती है कि अयि तमसे यह (करिकलभ) ऐसा हो गया है, उन दोनों को नहीं जानती हूँ कि इतने समय में वे मेरे पुत्र कुश लव कैसे होंगे? मैं ऐसी अभागिन हूँ जिसे केवल आर्यपुत्र का ही नहीं अपितु पुत्रों का भी वियोग सहन करना पड़ा है। इतना ही नहीं, सन्तानों की स्मृतिमात्र से कम्पित उनके पयोधरों से दूध बहने लगता है और उन बच्चों के पिता राम की उपस्थिति से वे कुछ समय तक के लिए असंसारिणी होते हुए भी संसारिणी हो जाती है। इस स्थल पर तमसा के द्वारा कहा गया ''प्रसव: खलु प्रकृष्टपर्यन्त: स्नहस्य'' यह वाक्य करुण रस की धारा में आवर्त का कार्य करता है।

वासन्ती को यह अच्छी तरह से ज्ञात है कि राम सीता के वियोग से अत्यन्त व्यथित है फिर भी वह उनकी व्यथा को और उद्दीप्त करती है। राम की पीड़ा बढ़ती ही जाती है, उनके मन में यह विश्वास बैठ जाता है कि सीता की सुन्दर अङ्गलतिका वन के हिंस्र पशुओं के द्वारा नष्ट कर दी गई है। वे 'हा प्रिये जानकि' कह कर मुक्तकण्ठ से रोने लगते हैं। वे अपने उद्वेग, मोह, दान और हृदय को विदीर्ण करने वाले शोक का वर्णन इस प्रकार करते हैं –

दलितहृदयं शोकाद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकल: कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाह: करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्।।

प्रजाजनों को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं कि देवि सीता का घर में रहना आप लोगों की अभीष्ट न हुआ, अत: उन्हें शून्य वन में तृण के समान त्याग दिया और शोक भी नहीं किया परन्तु आज यहाँ पञ्चवटी में चिर परिचित वे पदार्थ मेरे हृदय को द्रवित कर रहे हैं इसलिये मैं अशरण होकर रो रहा हूँ, आप लोग क्षमा करें। राम के इस कथन में करुणा की विवशता पराकाष्ठा को पहुँच गई है। वासन्ती के समझाने पर वे कहने लगते हैं, क्या कहती हो? धैर्य धारण करें? इस संसार को छोड़े हुए सीता को बारह वर्ष हो गये हैं, उनका नाम भी लुप्तप्राय हो गया है फिर भी राम जीवित है। अयि वासन्ति जिस प्रकार हृदय में प्रविष्ट तिरछा जलता हुआ काष्ठखण्ड और विषैला दांत दु:खदायक होता है उसी प्रकार दु:सह मर्मस्थलों को छेदन करते हुए और हृदय में प्रविष्ट तीव्र शोकशङ्कु को क्या मैंने सहन नहीं किया?

मर्यादा का भी अतिक्रमण करने वाला अतएव क्षुभित शोक की वृद्धि को रोकने के लिए राम जो भी प्रयत्न करते हैं उस यत्न को कोई अनिर्वचनीय चित्त का विकार उसी प्रकार छिन्न-भिन्न कर देता है जिस प्रकार वेगवान् जल प्रवाह रेत के पुल को छिन्न-भिन्न कर देता है। वासन्ती अपार करुण पारावार में निमग्न राम के चित्त को दूसरी ओर आकृष्ट करना चाहती है वह उन्हें जनस्थान का सुपरिचित भाग दिखाती है-

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः

सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद् गोदावरीसैकते।

आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया

कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामाञ्जलिः।।

वासन्ती के द्वारा राम के चित्त को अन्यत्र आकृष्ट करने के लिये प्रयुक्त यह वाक्य उनके करुण रस का उद्दीपक ही हो जाता है और वे इस दृश्य की स्मृति से अत्यन्त उद्वेलित होकर कहने लगते है कि देवि! हृदय विदीर्ण हो रहा है। शरीर का सन्धिबन्धन शिथिल पड़ रहा है। संसार सूना लग रहा है। आन्तरिक ताप से जल रहा हूँ। अवसन्न होकर प्रिय रहित अन्तरात्मा प्रगाढ़ अन्धकार में डूब रहा है। मोह ने मुझे चारों ओर से घेर लिया है। मन्द भाग्य वाला मैं क्या करूँ? -

हा हा देवि! स्फुटति हृदयं, ध्वंसते देहबन्धः

शून्य मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।

सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा

विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि।।

यह कह कर राम मूर्च्छित हो जाते हैं। सीता उनके ललाट और हृदय का स्पर्श कर उन्हें आश्वस्त करती है। सीता के पाणिस्पर्श से वे आनन्द निमग्न हो जाते हैं। वे समझते हैं कि वस्तुतः सीता उनके समीप हैं परन्तु छाया सीता माया की तरह उनसे दूर हट जाती है और वे पुकार उठते हैं- हे प्रिये तुम कहाँ हो? मुझ पर दया करो। ऐसी अवस्था में मुझे छोड़कर मत जाओ। वासन्ती के यह कहे जाने पर मेरी प्रिय सखी कहाँ है? राम तर्क करने लगते हैं कि क्या सचमुच सीता यहाँ नहीं है? नहीं तो वासन्ती भी उन्हें कैसे न देखती? हो सकता है यह स्वप्न हो परन्तु मैं तो सोया नहीं हूँ। राम को नींद कहाँ? सभी प्रकार से ऐश्वर्य सम्पन्न और चिन्ता से परिकल्पित वह भ्रम ही पुनः पुनः मेरा अनुसरण कर रहा है-

व्यक्तं नास्त्येव। कथमन्यथा वासन्त्यपि न पश्येत् ? अपि खलु स्वप्न एष स्यात्? न चास्मि सुप्तः। कुतो रामस्य निद्रा? सर्वथापि स एवैष भगवाननेकवार परिकल्पितो विप्रलमम्भः पुन पुनरनुबध्नाति माम्।

सीता की करुणा दशा भी यहाँ पूर्णता को प्राप्त हो जाती है। उनके इस कथन से कि बिना कारण के परित्याग करने वाले राम के इस प्रकार के दर्शन से भी मेरे हृदय की कैसी अवस्था हो रही है? यह मैं नही जानती हूँ, नही जानती हूँ। पर तमसा कहती है कि अयि वत्से सीते! मैं तुम्हारे हृदय को भलीभाँति समझती हूँ। तुम्हारा हृदय इस समय निराशा के कारण उदासीन ती तरह, पति के परित्याग रूप अप्रिय आचरण से क्रोधयुक्त की तरह बहुत समय तक रहने वाले इस वियोग में आकस्मिक सम्मेलन से निश्चल की तरह, सम्बोधन रूप सुजनता से प्रसन्न की तरह और प्रिय राम की शोकमयी अवस्थाओं से अत्यधिक शोकयुक्त,अतः प्रेम से द्रवीभूत सा हो रहा है-

तटस्थ नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्,

वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव।

प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढकरुणं

द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव।।

ततीय अङ्क के लहराते हुये इस करुणासागर में सीता का एक एक वाक्य करुण रस की सुन्दर बिन्दु की तरह प्रतीत हो रहा है। जब वासन्ती राम को शयनीय शिला तल दिखलाती है और यह बतलाती है कि यहीं पर बैठकर सीता अपने कोमल करों से मृगों को तृण ग्रास खिलाया करती थीं तब वे वासन्ती को सम्बोधित करती हुई इस प्रकार कहती हैं= **सखि वासन्ति! किं त्वया कृतमार्यपुत्रस्य मम चैतद्दर्शयन्त्या। हा धिक् हा धिक्! स एवार्यपुत्रः, तदेव पञ्चवटीवनम्, सैव प्रियसखी वासन्ती, त एव विविधविस्रम्भसाक्षिणा गोदावरी काननोद्देशाः, त एव जातनिर्विशेषा मृगपक्षिणः पादपाश्च। मम पुनर्मन्दभाग्यायां दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति। ईदृशो जीवलोकस्य परिणामःसंवृतः।**

जब वासन्ती कहती है कि सखि सीते तुम राम की इस अवस्था को क्यों नहीं देख रही हो तो दु:खित होकर सीता उत्तर देती हैं सखि वासन्ति देख रही हूँ। राम को निर्निमेष दृष्टि से देखती हुई कहती हैं–हा देवि ये मेरे बिना और मैं इनके बिना रह सकूँगी यह किसने सम्भावना की थी? सम्प्रति जिनके दर्शन जन्मान्तर में भी दुर्लभ हैं ऐसे स्नेही आर्यपुत्र क दर्शन क्षण भर कर लूँ। अपनी प्रतिकृति की सराहना करती हुई वे कहती हैं कि वह मेरी मूर्ति धन्य है जो कि आर्यपुत्र के द्वारा इस प्रकार सम्मानित हो रही है। अन्ततः वे राम के चरण कमलों को नमस्कार करती हुई मूर्च्छित हो जाती हैं। तमसा के द्वारा आश्वस्त किये जाने पर वे कहने लगती हैं – अथवा मेघ के कारण अवरुद्ध पूर्णचन्द्र का दर्शन कितने समय तक हो सकता है? सीता के इस कथन में मार्मिक करुण की अभिव्यञ्जना है। तमसा करुण रस की सराहना करती हुई कहती है कि एक करुण रस ही निमित्त के भेद से भिन्न होता हुआ पृथक्–पृथक् श्रृङ्गार आदि परिणामों को आश्रय करता है, ऐसा प्रतीत होता है, जैसे एक ही जल, भँवर, बुद्बुद और तरङ्गरूप विकारों को आश्रय करता है वस्तुतः वह सब जल ही है–

एको रसः करुण एव निमित्तभेदा

द्भिन्नः पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्तान्।

आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा

नम्भो यथा, सलिलमेव हितत्समस्तम्।।

इस प्रकार यह स्पष्ट हैं कि इस सम्पूर्ण अंक में करुण रस की मार्मिकअभिव्यञ्जना हुई है जो कि कवि की 'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलाति वज्रस्य हृदयम्' इस उक्ति को पूर्णतया चरितार्थ कर रही है।

चतुर्थ अंक में भी करुणरस के दर्शन होते है। अंक के प्रारम्भ में ही जनक का शोक दिखाई पड़ता है। अपनी प्रिय पुत्री सीता का स्मरण कर कर वे अपने शोकाकुलित हृदय को लोक क समक्ष रखते हैं–

अनियतरुदित स्मतं विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्।

वदनकमलकं शिशोः स्मरामि स्खलदसमञ्जसमञ्जुजल्पितं ते।।

जनक का यह कथन वात्सल्य का उद्रेक करता हुआ करुण की परिपुष्टि कर रहा है। जनक और कौशल्या का मिलन भी करुणा से ओतप्रोत है। कौशल्या के दर्शन से जनक का दु:ख और असह्य हो जाता है। इसी प्रकार के दशरथ का स्मरण करके भी दु:खित होते हैं। अपने प्रिय सखा दशरथ तथा वत्सला सुता सीता की स्मृति से उन्हें अपने जीवन के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है– ''**घोरेऽस्मिन् मम जीवलोकनरके पापस्य धिग्जीवितम्।**'' वन में छोड़ी गयी असहाय सीता के राजा जनक के द्वारा चित्रित उस रूप क दर्शन या श्रवण से किस सहृदय का हृदय करुण सागर में निमग्न नहीं हो जायेगा?

कौन शोकाकुलित सीता के प्रति सहानुभूति नहीं रक्खेगा? जनक के द्वारा प्रस्तुत करुण से ओतप्रोत और हृदयद्रावक चित्र को निम्नलिखित श्लोक में देखें–

नूनं त्वया परिभवं च वनं च घोरं

तां च व्यथां प्रसवकालकृतामवाप्य।

क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारत्सु

संत्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽहम्।।

पञ्चम अङ्क में भी लव को देख कर वृद्ध सुमन्त्र अपने नेत्रों से अश्रुधारा को बहाने ही लगते हैं–

मनोरथस्य यद्बींज तद् दैवेनादितो हृतम्।

लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्योद्भवः कुतः।।

तृतीय अङ्क का पुष्ट हुआ राम का करुणरस षष्ठ अङ्क में जाकर परिपुष्ट हो जाता है। नाटक के प्रारम्भ में ही लव को देखकर राम का हृदय स्नेह से परिपूर्ण हो जाता है। वे कहने लगते हैं कि यह बालक सहसा ही मेरे दुःख को विश्राम दे रहा है किसी कारण से अन्तःकरण को स्नेह युक्त कर रहा है अथवा स्नेह कारण की अपेक्षा रखता है, यह कथन समीचीन नहीं है क्योंकि कोई आन्तरिक कारण दो पदार्थों (प्राणियों) को परस्पर मिला देता है। प्रेम बाहर के कारणों का आश्रय नहीं करता हैं अर्थात् प्रेम के लिये बनावटीपन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सूर्य के उदय होने पर कमल स्वयं खिल जाता है और चन्द्रमा के उदित होने पर चन्द्रकान्त मणि स्वयं द्रवित हो उठती है–

व्यतिषजति पदार्थानन्तरः कोऽपि हेतु–

र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।

विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं

द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।।

राम का यह प्रेम सहज ही में करुण रस में पर्यवसित हो जाता है। कुश और लव के मुखमण्डल पर सीता की आभा को देखकर राम को सीता का स्मरण हो आता हैं और उनके आँखों में आँसू आ जाते हैं।

इसी अङ्क में कुश का कथन राम की वेदना के उद्दीपन का कारण बन जाता है। कुश उन्हें उन दिनों का स्मरण करा देते हैं जब वे सीता के साथ अत्यन्त आनन्द पूर्वक समय व्यतीत कर रहे थे। उसकी स्मृति से सीता के सहस्रों गुण उनके मस्तिष्क में उपस्थित हो जाते हैं और उन्हें अपना जीवन भार लगने लगता है और वे कहने लगते हैं–

क्व तावानानन्दो निरतिशयविस्रम्भबहुलः?

क्व वाऽन्योन्यप्रेम? क्व च नु गहनाः कौतुकरसाः?

सुखे वा दुःखे वा क्व नु खलु तदैक्यं हृदययो–

स्तथाप्येष प्राणः स्फुरति, न तु पापो विरमति।।

हृदयों की वह एकता? फिर भी पाप पूर्ण यह प्राण वायु चल ही रहा है नष्ट नहीं हो रहा है।

इसी समय लव राम को चित्रकूट में मन्दाकिनी विहार के प्रसङ्ग की स्मृति करा देते हैं जिससे राम की पीड़ा और अधिक बढ़ जाती है। प्रिया सीता के वियोग में उन्हें सारा संसार जीर्ण अरण्य के समान लगता है और उनका हृदय तुषानल की राशि में दग्ध होने लगता है–

चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः

प्रवासे चाश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः

जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्यु परते

कुकूलानां राशी तदनु हृदयं पयत इव।।

सप्तम अङ्क में भी राम और सीता के मिलन से पूर्व करुण रस के दर्शन होते है। गर्भाङ्क की प्रस्तावना में नेपथ्य से सुनाई देने वाला सीता का करुण विलाप करुण रस से ओत-प्रोत है। इससे राम का शोक और बढ़ जाता है। अपने समक्ष भगवती वसुन्धरा और भागीरथी के द्वारा स्थिर की गई मूर्छित सीता को देखकर राम की आँखों में आँसू आ जाते हैं। भगवती वसुन्धरा के प्रत्येक वाक्य से राम के हृदय में अपूर्व करुण वेदना उत्पन्न होती है। विलाप करती हुई जानकी जब हाथ जोड़ कर पृथ्वी से प्रार्थना करती हैं कि भगवति वसुन्धरे ! मुझे अपनी गोद में समेट लो तथा अपने नवजात शिशुओं को देख कर कहती है मैं अनाथ हूँ, मुझे इन पुत्रों से क्या? यह सुनकर राम का विषाद असह्य हो जाता है। सीता का यह प्रश्न, कि इन दोनों अनाथ बालकों में क्षत्रियोचित संस्कार कौन करेगा? राम के हृदय में शूल सा चुभता है। जब भगवती वसुन्धरा और भागीरथी के साथ सीता चली जाती हैं तो राम ''कथ वैदेह्या: विलय एव सम्पन्न:'' कहते हुए मूर्छित हो जाते हैं। इस प्रकार के करुण रस से वैशिष्ट्यों से युक्त इस नाटक में कतिपय आचार्य करुण रस को अंगीरस के रूप में मानते हैं। इस सन्दर्भ में वे ''एको रस: करुण एव निमित्तभेदात्'' कवि की इस उक्ति को प्रस्तुत करते हुये यह तर्क देते हैं कि महाकवि भवभूति ने करुण रस को ही सभी रसों का हेतु माना है और इसी कारण से अपने नाटक में अङ्गीरस के रूप में रक्खा है परन्तु यहाँ विचारणोय यह है कि सप्तम अङ्क में कवि राम और सीता का मिलन करा देता है। अतएव क रुणरस इस नाटक का प्रधान (अङ्गी) रस नहीं बन पाता। करुण में नायक अथवा नायिका का आत्यन्तिक वियोग आवश्यक है और वह तभी सम्भव है कि दो में से एक की मृत्यु हो जाय और पुनर्मिलन कभी भी सम्भव न हो जैसा कि कविराज विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में करुण रस के लक्षण में लिखा है-

इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसी भवेत्।

इस दृष्टि से उत्तररामचरित में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक राम का करुण विलाप सार्थक है क्योंकि उन्हें ऐसा विश्वास है कि प्रियतमा सीता की अङ्गलतिका वन में हिंस्र पशुओं द्वारा विलुप्त कर दी गई है। अन्य पात्र भी इसी आधार पर शोक करते हैं। यद्यपि राम आदि सीता को नष्ट समझकर पुनर्मिलन में विश्वास नहीं करते रहे परन्तु कवि न इस विषय में सामाजिकों को भ्रान्त नहीं किया है। द्वितीय अङ्क में कुश-लव के परिचय से सामाजिक जन सीता के विषय में आश्वस्त हो जाते हैं और तृतीय अङ्क में दर्शन भी कर लेते हैं। अतएव उनकी दृष्टि में राम का निरन्तर वियोग अस्थायी बन जाता है और जब उनका शोक स्थायी भाव रह कर विप्रलम्भ शृंगार के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यहाँ से करुण विप्रलम्भ शृंगार की नींव सुदृढ़ होने लगती है। करुण विप्रलम्भ शृंगार का लक्षण कविराज विश्वनाथ ने इस प्रकार किया है -

यूनोरेकतरस्मिन्गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।

विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करुणविप्रलम्भाख्यः।।

अर्थात् नायक और नायिका में से एक के पुन: लभ्य रहते हुए भी परलोक चले जाने पर जब एक विमनायमान होता है तो करुण विप्रलम्भ शृंगार होता है।

उत्तररामचरित में राम और सीता में से सीता का परलोक गमन हो जाता है। यद्यपि राम की सृष्टि में वह यथार्थ है अत: सीता की प्राप्ति तक राम में करुण रस की स्थिति रहती है परन्तु सामाजिकों की दृष्टि से सीता का परलोक गमन पुनर्लभ्य से रहित नहीं है अत: उनकी दृष्टि में करुणा प्रधान करुण विप्रलम्भ शृंगार ही रहता है। महाकवि भवभूति ने अपने नाटक के द्वारा अपने करुण हृदय की अभिव्यक्ति करते हैं और इस नियम से वे सम्पूर्ण नाटक को करुण हृदय की अभिव्यक्ति करते है और इस नियम से वे सम्पूर्ण नाटक को करुण रस में निमग्न रखते हैं। पूरे नाटक में करुण की प्रधानता दिखाते हुए वे अन्त में राम और सीता का मिलन दिखाकर करुण रस को शृंगार में पर्यवसित कर अपने आप को शास्त्र की मर्यादा के अतिक्रमण के अपराध से मुक्त कर लेते हैं क्योंकि यह शास्त्रीय नियम है कि नाटक में शृंगार अथवा वीर रस को ही अङ्गीरस के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए और अन्य रसों की स्थिति अङ्गरस के रूप में होना चाहिए –

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे ....।।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

जृम्भकास्त्र – युद्ध के प्रसङ्ग में जब लव जृम्भकास्त्रों का प्रयोग करते हैं तो सुमन्त्र को यह स्मरण होता है कि ये सर्वप्रथम कृशाश्व को प्राप्त हुए थे, उनसे विश्वामित्र को और विश्वामित्र से राम को।

आर्य – ऋ+ ण्यत् – जो श्रेष्ठ है उसे आर्य कहते है।

'**छाया**'- शब्द अमरकोश के अनुसार कान्ति वाचक है। कान्ति शब्द शोभा और इच्छा का वाचक है। इच्छा तथा भावना पर्यायवाची ही है।

कुमारविक्रम – पञ्चम अङ्क को 'कुमारविक्रम' नाम दिया है। टीकाकारों ने अधिकतकर 'कुमारयोर्विक्रमो यत्रेति कुमारविक्रमः' इस बहुव्रीहि समास द्वारा उक्त नामकरण की सार्थकता सिद्ध की है। किन्तु यदि अङ्क की घटनाओं को देखा जाए तो इसमें लव का ही विक्रम वर्णित है, चन्द्रकेतु का नहीं।

प्रत्यभिज्ञान – ज्ञात वस्तु का पुन: ज्ञान ही 'प्रत्यभिज्ञान' कहलाता है।

अर्थात इष्ट का नारा तथा अनिष्ट की आशंका को करुण रस कहते है।

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोधगम्य प्रश्न –

1. संस्कृत नाट्यसाहित्य के अन्तर्गत 'उत्तररामचरितम्' के नाटकीय वैशिष्ट्य का अङ्कन कीजिए।
2. महाकवि भवभूति कृत 'उत्तररामचरितम्' नाटक की भाषा-शैली की सविस्तार समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।
3. 'उत्तररामचरितम्' नाटक के प्रथम अङ्क के 'चित्रदर्शन' नामकरण की सार्थकता पर प्रकाश डालिये।
4. 'उत्तररामचरितम्' के तृतीय अङ्क के छायासीता (छायाङ्क) महत्त्व का प्रतिपादन कीजिये।
5. 'उत्तररामचरितम्' नाटक के सप्तम अङ्क के 'गर्भाङ्क' नामकरण की सार्थकता पर विस्तार से प्रकाश डालिये।
6. 'उत्तररामचरितम्' नाटक के आधार पर 'एको रसः करुण एव' भवभूति के इस कथन के परिप्रेक्ष्य में अङ्गीरस का विवचेन कीजिये।

7. 'उत्तररामचरितम्' नाटक के नायक राम तथा नायिका सीता के चरित का निरूपण कीजिये।

1.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने भवभूति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में जाना। %उत्तररामचरितम्%के नाटकीय वैशिष्ट्य् एवं मूल कथा के स्रोत तथा उसमें किए गए परिवर्तनों का विस्तार से अध्ययन किया । पात्रों के चरित्र-चित्रण में भवभूति कितने सफल रहे हैं यह जाना । अपने ग्रन्थ के माध्यम से भवभूति करुण रस को नाटक के अङ्गीरस रस के रूप में चित्रित करने में कितने सफल रहे है इसका समीक्षात्मक अध्ययन किया ।

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास,पं. बलदेव उपाध्याय,शारदा प्रकाशन, वाराणसी, 1995.
2. संस्कृत सुकवि समीक्षा,पं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1963.
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास,प्रो. शिवबालक द्विवेदी, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर,1988.
4. उत्तररामचरितम्ता,रिणीश झा, रामनारायण बेनीप्रसाद प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006.
5. उत्तररामचरितम्,'इन्दुमती' कपिलदेवगिरि, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी, 1987.
6. उत्तररामचरितम्, ब्रह्मानन्द शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ,2008.
7. उत्तररामचरित की शास्त्रीय समीक्षा,सत्यनारायण चौधरी, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी,1987.

इकाई – 2

उत्तररामचरितम् – प्रथम एवं द्वितीय अंक

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य

'उत्तररामचरितम्' नाटक के अध्ययन से काव्य के अन्तर्गत दृश्य काव्य की प्रभावोत्पादकता को समझ कर प्रकृत नाटक के आदर्श पात्रों के अनुकरणीय व्यक्तित्व को हृदयङ्गम करके उनका अनुगामी होकर जीवन को उत्कृष्ट बनाना संस्कृत भाषा के साथ स्त्रीपात्रों के संवादों में प्रयुक्त प्राकृत भाषा का भी परिज्ञान करना एवं करुण रस को अङ्गीरस मानने के कारणों पर सर्वविध चिन्तन करना।

2.1 प्रस्तावना

यहाँ 'उत्तररामचरितम्' के मूल कथानक को ध्यान में रखकर उसमें चमत्कृति उत्पन्न करने की दृष्टि से भवभूति ने जो परिवर्तन, परिवर्धन एवं कतिपय काल्पनिक पात्रों की मूर्तरूप दिया है उनका प्रत्येक दृष्टि से आकलन करते हुए नाटक की परिणति को प्रस्तुत किया गया है।

2.2 महाकवि श्रीभवभूतिप्रणीतम् उत्तररामचरितम् प्रथमोऽङ्कः

इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे।
विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।।1।।

महाकवि भवभूति 'उत्तररामचरितम्' नाटक का प्रणयन करने की भावना से सर्वप्रथम माङ्गलिक नान्दीपाठ को प्रस्तुत करते हैं –

अन्वय : पूर्वेभ्यः कविभ्यः नमोवाकम् 'आत्मनः अमृतां कला देवतां वाचं विन्देम,' इदं प्रशास्महे।

अनुवाद : (श्लोकार्थ) हम आदिकवि वाल्मीकि तथा अन्य कवियों को प्रणति निवेदन पूर्वक यह कामना करते हैं कि (हम) ब्रह्माजी की अंशभूता सनातनी सदातनी सरस्वती अर्थात् वाणी को प्राप्त करें।।1।।

कवियों ने इस मङ्गलात्मक श्लोक के अर्थ पर अनेक दृष्टि से विचार किया है, जिसका निष्कर्ष इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि –

हम अपने पूर्वज उन वाल्मीकि आदि कविजन को प्रणाम निवेदन करते हैं, जिनके अनुग्रह से रस, भाव, गुण, अलङ्कार, रीति, ध्वनि आदि से परिपूर्ण सहृदयावर्जिका आत्मप्रसादिनी श्रेष्ठ कवियों द्वारा वन्दनीय ज्ञान की अधिष्ठात्री शब्दशक्तिस्वरूपिणी भगवती सरस्वती के प्रसाद से काव्योत्कर्ष को प्राप्त कर सकें।

टिप्पणी : विघ्नविघात एवं शिष्य शिक्षार्थ किये गये इस मांगलिक श्लोक में वाल्मीकि आदि पूर्व कवियों को प्रणाम करते हुए नाटकीय वस्तु का निर्देश भी कर दिया गया है, जिसमें उन वाल्मीकि आदि के अनुग्रह से भगवान् श्रीराम की अंशभूता भगवती सीता का साक्षात्कार हुआ है।

प्रकृत माङ्गलिक श्लोक नान्दीरूप है। नान्दी का लक्षण है –

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।।

अर्थात् नन्दयति प्रसादयति सामाजिकानां मनांसि इति नान्दी। अथवा नन्दन्ति प्रसीदन्ति देवता अस्यां सा नान्दी।

यहाँ 'कविभ्य:' पद में 'प्रशास्महे' क्रियापद के उद्देश्यभूत होने से चतुर्थी विभक्ति का विधान किया गया है। कतिपय आचार्यों के मत में 'नम:' पद के योग में नमः स्वस्ति.... सूत्र से 'कविभ्य:' में चतुर्थी विभक्ति की गई है।

नमोवाकम् पद क्रिया विशेषण रूप है। यहाँ 'वचनं वाक्' इस अर्थ में वच् परिभाषणे धातु से घञ् प्रत्यय किया गया है।

प्रशास्महे – प्र उपसर्ग शास् धातु का इच्छा अर्थ में प्रयोग।

विन्देम – विद् (तुदादि) लिङ् लकार।

यहाँ पथ्यावक्त्र छन्द तथा श्लेष अलङ्कार का प्रयोग विधान है।

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधार : अलमति विस्तरेण। अद्य खलु भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयति– एवमत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः।

अनुवाद :

सूत्रधार : अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है। आज भगवान् कालप्रियानाथ (शिव) की यात्रा के अवसर पर मैं आदरणीय श्रेष्ठजनों से निवेदन करता हूँ कि आप सभी को यह विदित हो कि काश्यप गोत्र में उत्पन्न व्याकरण मीमांसा एवं न्यायशास्त्र के परम विद्वान् 'श्रीकण्ठ' उपाधि से समलङ्कृत 'जतुकर्णी' के सुपुत्र सम्मान्य 'भवभूति' कवि हैं।

टिप्पणी : नाटकीय वस्तु की 'सत्र' संज्ञा है तथा नाटक का प्रबन्धक सूत्रधार कहलाता है –

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते।।

पदवाक्यप्रमाणज्ञ–पद–व्याकरणशास्त्र, वाक्य–मीमांसाशास्त्र एवं प्रमाण–प्रत्यक्ष आदि प्रमाण अर्थात् न्यायशास्त्र के ज्ञ अर्थात् विशारद।

अत्रभवान् – समीप में विद्यमान व्यक्ति का सम्मानसूचक शब्द।

तत्रभवान् – दूर विद्यमान व्यक्ति का सम्मानसूचक शब्द।

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते।।2।।

अन्वय – यं ब्रह्माणम् इयं देवी वाक् वश्या इव अनुवर्तते, तत्प्रणीतम् उत्तरं रामचरितं प्रयोक्ष्यते।।

यहाँ कवि भवभूति के असाधारण पाण्डित्य का सङ्केत करते हुए यह कहा जा रहा है कि –

अनुवाद – (श्लोकार्थ) जिस भवभूति कवि का 'यह ब्रह्मा' (समस्त शास्त्रों के पारङ्गत) है यह समझकर सरस्वती वशीभूत सी होकर अनुगमन करती हैं आज उनके द्वारा प्रणीत 'उत्तररामचरितम्' नाटक का अभिनय किया जायेगा।।2।।

टिप्पणी : यहाँ कवि भवभूति को साक्षात् ब्रह्मा बतलाकर उनके सभी शास्त्रों में पारङ्गत होने का सङ्केत किया गया है, जिसका अनुगमन ज्ञानाधिष्ठात्री देवता सरस्वती भी करती हैं। आशय यह है कि भवभूति को सरस्वती सिद्ध थी अर्थात् उनकी पूर्णकृपा प्राप्त थी।

प्रयोग : प्रयोग का अर्थ है – अभिनय। यह आङ्गिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक भेद से चार प्रकार का होता है –

भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः।
आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्विकस्तथा।

उत्तररामचरितम् : राम के राज्याभिषेक के बाद का चरित्र जिसमें वर्णित हो। अथवा उत्तर = उत्कृष्ट राम का चरित्र जहाँ वर्णित हो। अथवा जिसके चरित्र का अनुकरण करने से लोक निर्भय होकर संसार सागर से पार जा सके, वह उत्तररामचरित है। अथवा राम शब्द का रामा च रामश्च रामौ, तयोश्चरितम् अर्थात् भगवती सीता और राम के उत्कृष्ट चरित्र का जहाँ वर्णन किया गया हो वह उत्तररामचरित है।

प्रकृत श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द तथा उत्प्रेक्षा अलङ्कार है एवं प्रसाद गुण के साथ गौडी रीति को स्थान दिया गया है।

(एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यकस्तदानींतनश्च संवृत्तः। (समन्तादवलोक्य) भो भोः यदा तावदत्रभवतः पौलस्त्यकुधूमकेतोर्महाराजरामस्यायं पट्टाभिषेकसमयो रात्रिन्दिवमसंहृतनान्दीकः तत्किमिदानींविश्रान्त चारणाणि चत्वरस्थानानि।)

अनुवाद : यह मैं सूत्रधार अभिनय के कारण अयोध्या निवासियों एवं उस समय में जायमान श्रीराम का समसामयिक बन गया हूँ। (चारों ओर दृष्टिक्षेप करके) हे नट! जब सम्पूर्ण लोक के वन्दनीय एवं रावण के वंश के लिए धूमकेतु अर्थात् अग्नि की तरह उसके कुल के विनाशक महाराज श्रीराम के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में दिन-रात निरन्तर होने वाले गीत वाद्य आदि को माङ्गलिक उत्सव का यह समय है तो भी क्यों राजप्रासाद के प्रांगण में नट लोग अपने-अपने कार्य से विरत दिखाई दे रहे हैं।

टिप्पणीः

अयोध्यकः – अयोध्यायां भव अयोध्या + वुञ् (अक)।

तदानीन्तन – तदानीं भवः तदानीं + ट्यु (मध्य में तुट् का आगम) यु के स्थान पर अन आदेश।

पौलस्त्यकुलधूमकेतो :– पुलस्त्यस्यापत्यं पौलस्त्यः रावणः, पुलस्त्य + अण्। तस्य कुलम् इति पौलस्त्यकुलम् तस्य धूमकेतुः तस्य

विश्रान्तचारणानि – विश्रान्ताः चारणाः येषु तानि, बहुव्रीहिः।

अमरकोश के अनुसार, 'भारता इत्यपि नटाश्चारणाश्च कुशीलवाः'

नटः – भाव! प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लङ्कासमरसुहृदो महात्मानः प्लवङ्गमराक्षसाः सभाजनोपस्थायिनश्च नानादिगन्त पावना ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च, यत्समाराधनायैतावतो दिवसान् प्रमोद आसीत्।

सूत्रधार :– आः अस्त्येतन्निमित्तम्।

नट :- अन्यच्च -

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य मातरः।

अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम्।।3।।

अन्वय - वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो, रामस्य मातरः अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुः आश्रमं गताः।

अनुवाद (श्लोकार्थ) नट - आर्य! महाराज ने लङ्का के समर के सुहृद वानरों, राक्षसों तथा अभिनन्दन करने के लिए उपस्थित हुए सभी दिशाओं को पवित्र करने वाले ब्रह्मर्षियों एवं राजर्षियों के स्वागत हेतु इतने दिवस पर्यन्त उत्सव का आयोजन करके अपने घर से सम्मानपूर्वक विदाई दे दी है (इसलिए उन सबके विदा हो जाने पर रात-दिन आमोद-प्रमोद की क्या आवश्यकता है?)।।3।।

सूत्रधार - ओह यह कारण है?

अनुवाद नट - इतना ही नहीं, और भी कारण है - ब्रह्मर्षि वसिष्ठ की अध्यक्षता में भगवती अरुन्धती को आगे करके श्रीरामचन्द्र की कौशल्या आदि मातायें यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए जामाता ऋष्यशृङ्ग के आश्रम में गई हैं इसीलिए अतिथिगण एवं गुरुजन के उपस्थित न रहने पर उत्सव मनाना उचित नहीं है इसलिए यह उत्सव बन्द कर दिया गया है।

टिप्पणी - **प्लवङ्गमः** प्लवेन गच्छतीति प्लव गम् खच् + मुम्।

वशिष्ठः अतिशयेन वशी वशिन् + इष्ठन्।

अधिष्ठिता अधि स्था + क्त

पुरस्कृत्य पुरस् + कृ + ल्यप्।

सूत्रधार - वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि। कः पुनर्जामाता?

नट - **कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्।**
अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय तां ददौ।।4।।

अन्वय - राजा दशरथः शान्तां नाम कन्यां व्यजीजनत्। राज्ञे रोमपादाय अपत्यकृतिकां तां ददौ।

विभाण्डकसुतस्तामृष्यशृङ्ग उपयेमे। तेन द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्। तदनुरोधात्कठोरगर्भामपि जानकीं विमुच्य गुरुजनस्तत्र यातः।

अनुवाद (श्लोकार्थ) सूत्रधार - मैं दूसरे देश का रहने वाला हूँ इसलिए पूछता हूँ कि जामाता कौन हैं?

नट - **श्लोकार्थ** राजा दशरथ के शान्ता नाम की कन्या ने जन्म लिया है। उन्होंने उसे 'अपत्यकृतिका' के रूप में राजा रोमपाद को दे दिया है।।4।।

विभाण्डक ऋषि के यशस्वी पुत्र ऋष्यशृङ्ग ने उससे विवाह कर लिया है। इस समय उन्होंने बारह वर्ष तक चलने वाले यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया ह। उनके उस यज्ञ में उपस्थित होने के आग्रह के कारण पूर्ण गर्भ वाली होने पर भी सीता देवी को छोड़कर गुरुजन वहाँ चले गये हैं।

टिप्पणी :- अपत्यकृतिका - अपत्यस्य कृतिः व्यापारः यस्याः सा। अथवा अपत्याय कृतिः ग्रहणं यस्याः सा। अर्थात् कृत्रिम पुत्री के रूप में गृहीत पुत्री अथवा इसके गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र मेरा पुत्र होगा। इस शर्त पर दी जाने वाली कन्या अपत्यकृतिका कहलाती है। विष्णु पुराण के अनुसार राजा दशरथ ने निःसन्तान रोमपाद को शान्ता नाम की कन्या दी थी।

वैदेशिकः - विदेशे भवः विदेश + ठञ्।

व्यजीजनत् – वि + जन् + लुङ्।

द्वादशवार्षिकः द्वादश वर्ष + ठक्। **कठोरगर्भाम्** – कठोरः पूर्णो गर्भो यस्याः।

सूत्रधारः तत् किमनेन? एहि राजद्वारमेव स्वजाति समयेनोपतिष्ठावः।

नटः तेन हि निरूपयतु राज्ञः सुपरिशुद्ध। मुपस्थानस्तोत्र पद्धति भावः।

सूत्रधारः – मारिष!

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।। 5।।

अन्वयः सर्वथा व्यवहर्तव्यम्, अवचनीयता कुतः? हि जनः यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनः।

नट : अति दुर्जन इति वक्तव्यम्।

देव्या अपि वैदेह्याः साऽपवादो यतो जनः।
रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः।। 6।।

अन्वयः – यतो देव्याः, वैदेह्याः अपि जनः सापवादः। रक्षोगृहस्थितिः मूलम्, अग्निशुद्धौ तु अनिश्चयः।

अनुवाद – **सूत्रधार** – हमें इससे क्या लेना–देना। आओ हम अपनी जाति के स्वभाव के अनुसार राजदरबार में ही उपस्थित होते हैं।

नट – यदि ऐसा है तो आप महाराज के निर्दोष स्तुतिपरक वचनों पर विचार कर लें। (अर्थात् कोई प्रशंसापरक रचना कर लें)

श्लोकार्थ – पत्येक दृष्टि से व्यवहार योग्य वचन का प्रयोग करना चाहिये। दोष के पूर्ण अभाव की सम्भावना कैसे की जा सकती है? क्योंकि दुर्जन व्यक्ति जिस तरह स्त्रियों के चरित्र के विषय में शङ्का करता है उसी तरह निर्दोष व्यक्ति में भी दोषान्वेषण की चेष्टा करता है।।5।।

नट – उसे दुर्जन ही नहीं, अति दुष्ट स्वभाव वाला कहना चाहिये। क्योंकि –

श्लोकार्थ – परम पवित्र भगवती सीता के बारे में भी लोक निन्दायुक्त ही है। इस निन्दा का मूल कारण उनका राक्षस रावण के घर में निवास करना है। लोगों का उनकी अग्नि परीक्षा में हुई शुद्धि पर विश्वास ही नहीं है।।6।।

टिप्पणी – यहाँ दोष के न होने पर भी दोषारोपण करना 'विभावना' अलङ्कार है।

लक्षण – विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।

इसी तरह अग्नि में शुद्ध होने पर भी उसका अनिश्चय होने से विशेषोक्ति अलङ्कार है।

लक्षण– सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिर्निगद्यते।

सूत्रधार – यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति स्यन्देत ततः कष्टं स्यात्।

नटः – सर्वथा ऋषयो देवताश्च श्रेयो विधास्यन्ति (परिक्रम्य) भो भोः, क्वेदानीं महाराजः? (आकर्ण्य) एवं जनाः कथयन्ति –

स्नेहात्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूमि
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देवास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय
धर्मासनाद्विशति वासगृहं नरेन्द्रः।।7।।

अन्वय – स्नेहात् सभाजयितुम् एत्य अमूनि दिनानि उत्सवेन नीत्वा जनकः अद्य विदेहान् गतः। ततः विमनसः देव्याः परिसान्त्वनाय, नरेन्द्रः धर्मासनात् वासगृहं प्रविशति।

अनुवाद सूत्रधार – यदि यह जनश्रुति महाराज के कानों तक पहुँच जाए तो महान् अनर्थ होगा।

नट – ऋषि वसिष्ठ, वाल्मीकि आदि तथा गङ्गा पृथिवी आदि देवगण हर तरह से कल्याण करेङ्गे।(घूमकर) महानुभावो। इस समय महाराज कहाँ है? (सुनकर) नागरिक जन यह कहते हैं कि–

श्लोकार्थ – अयोध्या में राज्याभिषेक के उत्सव में स्नेहभाव से युक्त होकर अभिनन्दन के लिए आए हुए जनक इतन दिवस पर्यन्त यहाँ रहकर अपने विदेह नगर (मिथिला) को गये हैं। (पिताजी के चले जाने से) दु:खयुक्त सीता को सान्त्वना देने के लिए महाराज न्यायासन से उठकर अन्त:पुर में प्रविष्ट हो रहे हैं।।7।। (इति निष्क्रान्तौ) ऐसा कहकर दोनों निकल गए। (इति प्रस्तावना) यह प्रस्तावना पूर्ण हुई।

विदेहान् – विदेहानां निवासो जनपदः विदेह + अण्, जनपदे लुप् प्रत्यय का लुप्।

प्रस्तावना : प्रस्तावयति प्रतिपाद्य विषयमुत्थापयति या वाक्यावली सा।

टिप्पणी – प्रकृत श्लोक में स्वाभाविकता का वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलङ्कार है।

लक्षण – स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्। यहाँ वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग सुस्पष्ट है। जैसा कि **लक्षण है** – उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

(ततः प्रविशत्युपविष्टो रामः सीता च) (तदनन्तर आसन पर विराजमान राम और सीता का प्रवेश)

रामः देवि वैदेहि! विश्वसिहि,
ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान्।
किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
सङ्कटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता।।8।।

अनुवाद – हे देवि सीते! विश्वास रखो, वे गुरुजन (जनक) आदि हमको अधिक समय तक छोड़ कर नहीं रहे सकते हैं।

अन्वय : किन्तु अनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यम् अपकर्षति, हि आहिताग्नीनां गृहस्थता प्रत्यवायैः सङ्कटा।

श्लोकार्थ – किन्तु अग्निहोत्र आदि अनुष्ठान की अनिवार्यता स्वतन्त्रता में विघ्न पैदा कर देता है क्योंकि अग्निहोत्र कर्म करने वालों का गृहस्थ जोवन अनेक विघ्नों के कारण सङ्कटग्रस्त रहता है (या यह भी कहा जा सकता है कि उचित समय पर अग्निहोत्र आदि नित्य कर्म न करने पर पाप लगता है)।।8।।

टिप्पणी – **स्वातन्त्र्यम्** – स्वम् आत्मा तन्त्रं प्रधानं यस्य स स्वतन्त्रः, तस्य भावः कर्म वा स्वातन्त्र्यम्, स्वतन्त्र + ष्यञ्।

आहिताग्नीनाम् – आहिताः आधानसंस्कारेण स्थापिताः अग्नयः दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयाख्याः, यैस्ते आहिताग्नयः तेषाम्।

प्रकृत श्लोक में काव्यलिङ्ग अर्थान्तरन्यास का अंगागिभाव मिश्रण है तथा अनुष्टुप् छन्द, गौडी रीति एवं माधुर्य गुण का प्रयोग किया गया है।

सीता – जाणामि अज्जउत्त! जाणामि। किंदु संदावआरिणोबन्धुजण विप्पओआ होन्ति (जानामि आर्यपुत्र! जानामि, किन्तु सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति)।

रामः – एवमेतत्। एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः। येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान् कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी – रामभद्र (इत्यर्धोक्ते साशङ्कम्) महाराज!

राम – (सस्मितम्) आर्य! ननु रामभद्र! इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य तद्यथाभ्यस्तस्तम-भिधीयताम्।

कञ्चुकी – देव! ऋष्यशृङ्गाश्रमादष्टावक्रः सम्प्राप्तः।

सीता – अज्ज! तदा किं विलम्बीअदि। (आर्य! ततः किं बिलम्बयते)

रामः – त्वरितं प्रवेशय।

(कञ्चुकी निष्क्रान्तः प्रविश्य)

अष्टावक्रः – स्वस्ति वाम्।

रामः – भगवन्! अभिवादये, इत आस्यताम्।

सीता – भअवं णमो दे। अवि कुसलं सजामातु अस्स गुरुअणस्स अज्जाए सन्ताए अ? (भगवन् नमस्ते। अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्यायाः शान्तायाश्च?)

रामः – निर्विघ्नः सोमपीथी भावुको मे भगवानृष्यशृङ्गः, आर्या च शान्ता?

सीता – अम्हे वि सुमरेदि? (अस्मानपि स्मरति?)

अष्टावक्रः – (उपविश्य) अथ किम् देवि, कुलगुरुर्भगवान् वसिष्ठस्त्वामिदमाह –

अनुवाद – **सीता** – आर्यपुत्र मुझे सब कुछ मालूम है किन्तु बन्धुजनों के विछोह कष्ट पहुँचाने वाले होते ही हैं।

राम – ऐसा ही है। ये हृदय के मार्मिक स्थलों को विदीर्ण करने वाले सांसारिक बन्धन हैं, जिससे अन्यमनस्क होते हुए बुद्धिमान जन समस्त कामनाओं का परित्याग करके वनों में रहते हैं अर्थात् सांसारिक कष्टों से अपने को अलग करके एकान्त शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी : रामभद्र.... (इतना आधा ही बोलकर, शङ्कित होकर) महाराज!

राम – (मुस्कुराते हुए) आर्य पूज्य पिताजी के सहयोगी (वयोवृद्ध) आपका मेरे लिए 'रामभद्र' सम्बोधन ही अच्छा लगता है। अतः अभ्यस्त रामभद्र ही कहिये।

कञ्चुकी – महाराज! ऋष्यशृङ्ग जी के आश्रम से अष्टावक्र जी का आगामन हुआ है।

सीता – आर्य! तब उनको यहाँ लिवा आने में विलम्ब क्यों किया जा रहा है?

राम – उन्हें शीघ्र ही लिवा आयें।

(कञ्चुकी जाकर पुनः प्रवेश करके)

अष्टावक्र – आप दोनों का कल्याण हो।

राम – भगवान् ! आपको मेरा प्रणाम है इधर आसन ग्रहण करें।

सीता – भगवन्! आपको मेरा भी नमस्कार है। जामाता ऋष्यशृङ्ग सहित गुरुजन तथा शान्तादेवी कुशलपूर्वक हैं न?

राम – सोमरस का पान करने वाले मेरे आत्मीय भगवान् ऋष्यशृङ्ग तथा आर्या शान्ता आनन्दपूर्वक तो हैं न?

सीता – क्या कभी वे हमारा भी स्मरण करते हैं?

अष्टावक्र – बैठकर। हाँ देवी। इस इक्ष्वाकुवंश के गुरु आदरणीय वसिष्ठ ने तुम्हारे लिए यह सन्देश भेजा है –

टिप्पणी – कञ्चुकी – अन्त:पुर में विचरण करने वाला वृद्ध ब्राह्मण एवं सभी कार्यों में निपुण कञ्चुकी कहलाता है –

अन्त:पुरचरो विप्रो वृद्धो गुणगणान्वित:।
सर्वकार्यार्थकुशल: कञ्चुकीत्यभिधीयते।।

हृदयमर्मच्छिद: हृदयस्य मर्माणि छिन्दन्ति इति। हृदयमर्मच्छिद् + क्विप्।

मनीषिण: मनीषा अस्य अस्ति इति मनीषी – प्रथमा बहुवचन।

अष्टावक्र: अष्टसु अवयवेषु वक्र:।

सोमपीथी – पानमस्यास्तीति पीथी, सोमस्य पीथी इति।

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत
राम: प्रजापतिसमो जनक: पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि! पार्थिवानां
येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च।।9।

अन्वय – हे नन्दिनि! भगवती विश्वम्भरा भवतीम् असूत, प्रजापतिसमो जनक: ते पिता, त्वं तेषां पार्थिवानां वधू: असि येषां कुलेषु सविता गुरु: वयं च (गुरव:)।

श्लोकार्थ – समस्त लोक का भरण-पोषण करने वाली भगवती वसुन्धरा ने तुम्हें उत्पन्न किया है, ब्रह्माजी के समान राजा जनक तुम्हारे पिता हैं तथा हे आनन्दप्रदायिनी सीते! तुम उन राजाओं की कुलवधू हो, जिनके कुल में भगवान् सूर्य तथा हम गुरु हैं (इस तरह मातृसम्पत्ति, पितृसम्पत्ति एवं गुरु सम्पत्ति से समृद्ध तुम्हारे लिए हमारे आशीर्वाद सदैव फलीभूत हों)।।9।।

टिप्पणी : विश्वम्भरा – विश्वं बिभर्ति इति। विश्व भृ + खच् + मुम् + टाप्।

पार्थिवानां पृथिव्या: ईश्वरा: तेषाम् पृथ्वी + अञ्

प्रजापतिसम: – यहाँ जनक की तुलना ब्रह्मा से की गई है।

यहाँ 'प्रजापतिसम:' में उपमा अलङ्कार 'जनक:पिता' में पुनरुक्तवदाभास अलङ्कार एवं 'सविता गुरुर्वयं च' में एकगुरुत्वधर्म के सम्बन्ध में तुल्ययोगिता अलङ्कार तथा पुन: तीनों अलङ्कारों में परस्पर अङ्गांगिभावसम्बन्ध होने से संकर अलङ्कार हो जाता है। प्रकृत श्लोक में वसन्ततिलका छन्द एवं लाटी रीति का प्रयोग किया गया है।

तत्किमन्यदाशास्महे। केवलं वीरप्रसवा भूया:।

राम: – अनुगृहीता: स्म:।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।। 10।।

अन्वय:– लौकिकानां, साधूनां, वाक्, अर्थम्, अनुवर्तते, हि पुन:, आद्यानाम्, ऋषीणाम्, वाचम्, अर्थ:, अनुधावति।।10।।

अनुवाद –

इससे अधिक और क्या आशीर्वाद दें? हमारी तो केवल यही शुभभावना है कि तुम वीर प्रसविनी होवो।

राम – (आशीर्वाद को पाकर) हम कृतकृत्य हो गये हैं। (क्योंकि –)

श्लोकार्थ – लौकिक सत्पुरुषों की वाणी (तो) अर्थ के पीछे चलती है, परन्तु (भूत, भविष्यत्, वर्तमान का दर्शन करने वाले) आद्य ऋषियों की वाणी के पीछे-पीछे अर्थ (स्वयं) चलता है। उनकी वाणी कभी व्यर्थ नहीं होती)।।10।।

टिप्पणी –

(1) '**वीरप्रसवा भूया**' यह आशीर्वाद कवि ने (मुखसन्धि) के 'परिकर' नामक अङ्ग का वर्णन किया है। 'परिकर' का लक्षण है –

''समुत्पन्नार्थबाहुल्यं ज्ञेयः 'परिकरः' पुनः।''

आगामी विभिन्न घटनाओं का सङ्केत ही 'अर्थबाहुल्य' है।

(2) ऋषि 'मन्त्रद्रष्टा' को कहते हैं – ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः। पुराण-ऋषियों की वाणी सत्य होती है। उन्हें अर्थ के पीछे-पीछे नहीं दौड़ना पड़ता, अर्थ स्वयं उनकी वाणी के पीछे चलता है। वे सिद्धवाक् होते हैं। लौकिक महात्मा तो कदाचित् सत्य का अपलाप भी कर सकते हैं, परन्तु ऋषि नहीं। भगवान् राम के इस कथन से जहाँ उनकी ऋषियों के प्रति हार्दिक श्रद्धा अभिव्यक्त होती है, वहाँ आगामी घटना-चक्र की अपरिहार्यता की ओर भी सङ्केत मिलता है।

(3) लौकिक महात्माओं की अपेक्षा ऋषियों की वाणी के आधिक्य वर्णन से व्यतिरेक अलङ्कार है तथा अप्रस्तुत प्रशंसा भी है। प्रसाद गुण, लाटी रीति तथा अनुष्टुप् छन्द है।।10।।

अष्टावक्रः– इदं च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभिः, शान्तया च भूयो भूयः संदिष्टम् – ''यः कश्चिद्गर्भदोहदो भवत्यस्याः, सोऽवश्यमचिरान्मानयितव्य'' इति।

रामः – क्रियते यद्येषा कथयति।

अष्टावक्रः– ननान्दुः पत्या च देव्याः संदिष्टम् – 'वत्से, कठोरगर्भेति नानीतासि। वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्विनोदार्थमेव स्थापितः। तत्पुत्रपूर्णोत्सङ्गामायुष्मतीं द्रक्ष्याम, इति।'

रामः– (सहर्षं लज्जास्मितम्।) तथास्तु। भगवता वसिष्ठेन न किंचिदादिष्टोऽस्मि?

अनुवाद– **अष्टावक्र** – और भगवती अरुन्धती (कौशल्या प्रभृति) महारानियों तथा शान्ता ने यह बार-बार कहा है कि –

''इसकी (सीता की) जो कोई भी गर्भ के समय इच्छा हो उसकी पूर्ति अविलम्ब करनी चाहिये।''

राम – जो यह कहेंगी वह किया जाएगा।

अष्टावक्र – (आपकी) ननद के पतिदेव (ऋष्यशृङ्ग) ने आपको सन्देश दिया है कि – ''वत्से! आसन्नप्रसवा होने के कारण तुम्हें (इस उत्सव में) नहीं लाया गया है और पुत्र रामभद्र को भी तुम्हारे मनोरञ्जन के लिए वहीं रहने दिया है। (अब तो) हम सौभाग्यवती तुमको पुत्र से भरी पूरी गोद वाली (ही) देखेङ्गे।''

राम – (हर्षपूर्वक लज्जा और मुस्कराहट के साथ) ऐसा ही हो! भगवान् वसिष्ठ ने क्या मेरे लिए कोई और आदेश नहीं दिया ह।

अष्टावक्र – सुनिये –

टिप्पणी –

(1) दोहद :- गर्भिणी की इच्छा। यद्यपि यह सब प्रकार की इच्छा का वाचक है तथापि गर्भिणी की इच्छा के लिए ही प्रयुक्त होता है। ''अथ दोहदम्, इच्छा, कांक्षा, स्पृहा, तृट्'' इत्यमरः ''**अयमिच्छावाचो अपि विशेषेण गर्भिणीच्छायाँ प्रयुज्यते'' (व्याख्यासुधा)।** गर्भिणी की इच्छा पूरी न करने से सन्तान जिघृक्षु (बदनीयत) सी रहती है।''दोहदस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात्।''

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धास्त्वं बाल एवासि नवं राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः।।11।।

अन्वय - जामातृयज्ञेन, वयं निरुद्धाः, त्वं बाल, एव, असि, राज्यं च नवम्, प्रजानाम्, अनुरञ्जने, युक्तः, स्याः, तस्माद्, यशः (भविष्यति), यद् वः, परमं, धनम्।। 11।।

श्लोकार्थ - हम यहाँ जामाता के यज्ञ के कारण रुक गये हैं, तुम अब तक बालक हो हो तथा राज्य भी नवीन है। (इस प्रकार बहुत से विघ्न हो सकते हैं) अतः तुम प्रजा का अनुरञ्जन करने में सावधान रहना। (इस भाँति प्रजानुरञ्जन से) जो यश फैलेगा वही तुम लोगों का श्रेष्ठ धन होगा।।11।।

टिप्पणी - इस श्लोक के पूर्वार्ध में, वसिष्ठ ने अपने दूर रहने का कारण तो बताया ही है साथ ही सन्देश भी दिया है कि राज्य नवीन है, कहीं कोई विघ्न न हो जाय। सब प्रकार से सावधान रहने की आवश्यकता है। लोक-प्रियता प्राप्त करना राजा का, शासन को सफलता के लिए, आवश्यक कर्तव्य है। ''कीर्तिरेव भवतां प्रियदाराः।''

बहुत से कारणों के समुच्चय के कारण यहाँ '**समुच्चय**' तथा हेतु-निर्देश के कारण काव्यलिङ्ग अलङ्कारों की संसृष्टि है तथा इन्द्रवज्रा छन्द है।।11।।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति में व्यथा।।

अन्वय - लोकस्य, आराधनाय, स्नेहं, दयां, सौख्यं, च, यदि वा जानकीम्, अपि, मुञ्चतः, मे, व्यथा, न, अस्ति।।12।।

अनुवाद -

राम - जो भगवान् वसिष्ठ जी आज्ञा देते हैं।

श्लोकार्थ - लोकाराधन करने के लिए मुझे स्नेह, दया सुख (और यहाँ तक कि प्राणप्रिया) जानकी को भी छोड़ते हुए मुझे कोई व्यथा नहीं होगी।।12।।

टिप्पणी -

मैत्रावरुणिः - मित्रश्च वरुणश्चेति मित्रावरुणौ, तयोरपत्यं पुमान्, मैत्रावरुणिः।''देवताद्वन्द्वे च'' इत्यानङ्। ''अत इञ्'' इति इञ्।'तद्धितेष्वचामादेः' इत्यादिवद्धिः।

इस श्लोक से भगवान् राम की अदम्य लोकाराधन-भावना का पता चलता हैं। वे प्रजा के सुख के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार हैं। धन्य हैं राम! और धन्य है उनकी प्रजावत्सलता।'लोकस्य' शब्द भी अतीव सारगर्भित है।'एक व्यक्ति' के कल्याण के लिए भी मैं अपना सर्वस्व त्याग सकता हूँ। यह अतीव अनुपम आदर्श है।

सीता - अदो जेव्व राहवधुरन्धरो अज्जउत्तो। (अत एव राघवधुरंधर आर्यपुत्रः)

रामः - कः कोऽत्र भोः? विश्राम्यतादष्टावक्रः।

अष्टावक्रः - (उत्थाय परिक्रम्य च।) अये, कुमारलक्ष्मणः प्राप्त (इति निष्क्रान्तः)।

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः – जयति जयत्यार्यः। आर्य! अर्जुनेन चित्रकरेणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितमस्यां वीथ्यामभिलिखितम्। यत्पश्यत्वार्यः।

रामः – जानासि वत्स! दुर्मनायमानां देवी विनोदयितुम्। तत्कियन्तमवधिं यावत्?

लक्ष्मणः – यावदार्याया हुताशनशुद्धिः।

रामः – शान्तम् (ससान्त्ववचनम्।)

उत्पत्तिपरिपूतायाः, किमस्याः पावनान्तरैः?
तीर्थोदकं च वह्निश्च, नान्यतः शुद्धिमर्हतः।।13।।

अन्वयः – उत्पत्तिपरिपूतायाः, अस्याः, पावनान्तरैः किम्? तीर्थोदकं, वह्निः, च अन्यतः, शुद्धिं न, अर्हतः।।13।।

अनुवाद- **सीता** – इसलिए तो आर्यपुत्र रघुकुल की प्रतिष्ठा के संरक्षक हैं।

राम – यहाँ (द्वार पर) कौन है? आदरणीय अष्टावक्र को विश्राम कराओ।

अष्टावक्र – (उठकर तथा घूमकर) अरे, कुमार लक्ष्मण आ रहे हैं!

(चले जाते हैं।)

(प्रवेशकर)

लक्ष्मण – आर्य की जय हो! आर्य! हमारे द्वारा आदिष्ट आपके चरित्र को अर्जुन नामक चित्रकार ने इस चित्रवीथिका पर चित्रित किया है। अतः आप इसे देखिये।

राम – वत्स! तुम खिन्न-चित्त देवी का मनोरञ्जन करना जानते हो। तो (बताओ) कहाँ तक (मेरा चरित्र) चित्रित किया गया है?

लक्ष्मण – आर्या की अग्नि-परीक्षा तक।

राम – शान्त! (सान्त्वना के स्वर में)

जन्म से ही पवित्र सीता को शुद्धि के लिए दूसरे पदार्थों की क्या आवश्यकता है? (क्योंकि) तीर्थों का जल तथा अग्नि स्वतः शुद्ध होने के कारण किसी दूसरे पदार्थ से शुद्धि की अपेक्षा नहीं रखता है।।13।।

टिप्पणी –

चित्रवीथी – चित्रवीथिका-दृश्य की संयोजना कवि की मौलिक कल्पना की परिचायिका है। इस प्रकार उसने उत्तरचरित में राम का पूर्वचरित भी प्रदर्शित कर दिया है। साथ ही नाटक के मुख्य प्रतिपाद्य सीता-परित्याग की भी इस से सूचना दे दी है। इस प्रकार से नाटकीय घटनाचक्र का सूत्र ही चित्र दृश्य वीथी है।

उत्पत्ति – सीता तो उत्पत्ति से ही परिपूत हैं। वे अयोनिजा हैं। निष्पाप हैं। उनकी शुद्धि किसी पदार्थान्तर से सम्भव नहीं है। तीर्थोदक और वह्नि तो स्वतः शुद्ध होते हैं, उन्हें अपनी शुद्धि के लिए किसी अन्य पदार्थ की अपेक्षा नहीं होती। सीता तीर्थोदक तथा वह्नि के समान सदा स्वतः शुद्ध हैं।

प्रकृतश्लोक में दृष्टान्तालङ्कार है – कुछ विद्वानों के मत में प्रतिवस्तूपमा भी है।

देवि देवयजनसम्भवे, प्रसीद! एष ते जीवितावधिः प्रवादः।

क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरञ्जनीय-
स्तन्नो यदुक्तमशुभं च न तत्क्षमं ते।

नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।।14।।

अन्वयः – क्लिष्टः, जनः, जनैः, अनुरञ्जनीयः किल तत्, ते, नः यत, अशुभम् उक्तम्, तत, न, क्षमम्। सुरभिणः कुसुमस्य, मूर्ध्नि स्थितिः, नैसर्गिकी सिद्धा, चरणैः अवताडनानि न ।।14।।

सीता – होद। अज्ज्उत्त, होदु। एहि । पेक्खह्म दाव दे चरिदम्। (इत्युत्थाय परिक्रामति।) भवत्वार्यपुत्र, भवतु एहि। प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम्।

अनुवाद : यज्ञभूमि से उत्पन्न देवि! प्रसन्न होओ। यह तुम्हारा जीवनभर के लिए अपवाद है।

दु:खी व्यक्ति को (उसके सम्बन्धी) जनों को मनोरञ्जन करवाना चाहिये। तुम्हारे विषय में जो हमने अनुचित कहा है, वह तुम्हारे योग्य नहीं है, क्योंकि सुगन्धित पुष्प को सिर पर रखना उचित है, न कि उसे पैरों से कुचलना।।14।।

सीता – आर्यपुत्र! होने दो। आओ, आपके चरित्र को देखें। मेरा तो जैसा है, वैसा है ही, अब अपना चरित्र देखिये।

टिप्पणी –

(1) देवयजनसम्भवे – देवा इज्यन्तेऽस्मिन् इति देवयजनं यज्ञभूमिः। देवयजनात् सम्भवो यस्याः सा। महाराज जनक द्वारा यज्ञभूमि को शुद्ध करने के लिए हल चलाने पर उन्हें सीता की प्राप्ति हुई थी। यज्ञभूमि से उत्पन्न होने के कारण उन्हें 'देवयजनसम्भवाः' कहा गया है।

(2) दृष्टान्त अलङ्कार। प्रसाद गुण। लाटी रीति। वसन्ततिलका छन्द।

(3) 'प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम्' इस कथन में सीता के हृदय की सारी व्यथा झलक उठी है। मेरे चरित्र के प्रति यदि लोकापवाद है, तो आपके चरित्र में भी कहीं न कहीं लोगों को टीका–टिप्पणी का अवसर मिल ही जायेगा।

लक्ष्मणः – इदं तदोत्लेख्यम्।

सीता – (निर्वर्ण्य!) के इदे उवरि णिरन्तरट्ठिदा उवस्थुवन्दि विअ अज्जउत्तम्? (क इते उपरि निरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्यपुत्रम्?)

लक्ष्मणः – देवि, एतानि, तानि सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि, यानि भगवतः कृशाश्वात्कौशिक-मृषिमुपसंक्रान्तानि। तेन च ताटकावधे प्रसादिकृतान्यार्यस्य।

रामः – वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा, परः सहस्रं शरदां तपांसि।
एतान्यदर्शन्गुरवः पुराणाः, स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि।।15।।

सीता – णमो एदाणम्। (नम एतभ्यः।)

रामः – सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति।

सीता – अणुगहीदह्मि। (अनुगृहीतास्मि।)

अनुवाद –

लक्ष्मण – यह वह चित्र है।

सीता – लगातार खड़े हुए ये कौन आर्य की स्तुति कर रहे हैं?

लक्ष्मण – ये (प्रयोग और उपसंहार) रहस्यमय वे 'जृम्भकास्त्र' हैं, जो कि कृशाश्व से विश्वामित्र मुनि के पास आये और उन्होंने 'ताड़का-वध' के अवसर पर 'आर्य' श्री रामचन्द्र जी को प्रसादरूप में प्रदान किए थे।

राम – देवि! दिव्यास्त्रों की वन्दना करो।

श्लोकार्थ – ब्रह्मा आदि पुरातना गुरुओं ने वेद (अथवा ब्राह्मणों) की रक्षा के लिए हजारों वर्षों से भी अधिक तपस्या कर अपने तपोरूप तेज पुञ्ज का ही इस रूप में दर्शन किया था।।15।।

सीता – इनको नमस्कार है।

राम – अब वह सर्वात्मना तुम्हारी सन्तान पर चले जायेंगे।

सीता – मैं कृतार्थ हो गई हूँ।

टिप्पणी – जृम्भक नाम के अस्त्र। इन अस्त्रों की एक विशिष्ट परपम्परा थी, जिसका एक आभास यहाँ मिलता है। कृताश्व से कौशिक और कौशिक से राम के पास ये अस्त्र आए।

कृशाश्वतनयान् राम! भास्वरान् कामरूपिणः।
प्रतीच्छ मम भद्रं ते, पात्रभूतोऽसि राघव।।

(1) 'सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति' कहकर राम ने सीता को पुत्रोत्पत्ति का आशीर्वाद दिया है। अस्त्रों का उपयोग पुत्रों के ही उपयुक्त है।

(2) ब्रह्महिताय वेद अथवा ब्राह्मणों के उपकार के लिये। इस पद से भारतीयों की विज्ञान-विषयक मान्यता पर प्रकाश पड़ता है। यहाँ विज्ञान जगत् के विनाश के लिए नहीं, अपितु निर्माण के लिये है। भौतिक उन्नति धर्म-विरोधी नहीं है, अपितु उसकी साधिका है।

लक्ष्मणः – एष मिथिलावृत्तान्तः।

सीता – अम्महे, दलन्त-णवणीलुप्पल-सामल-सिणिद्ध-मसिण-सोह माणमसलेन देह-सोहग्गेण विह्मअ-त्थिमिद-ताद-दीसन्तासोम्म-सुन्दरसिरी, अणादर-त्थुडिद-संकर-सरासणो, सिहण्ड-मुद्ध-मुहमण्डलो अज्जउत्तो आलिहिदो! (अहो, दलन्नवनीलोत्पल-श्यामल-स्निग्ध-मसृण-शोभमान-मांसलेन देह-सौभाग्येन विस्मय-स्तमित-तात-दृश्यमान-सौम्य-सुन्दर-श्रीरनादरत्रुटित-शङ्कर-शरासनः, शिखण्ड-मुग्ध मुखमण्डलः आर्यपुत्र आलिखितः!)

अनुवाद –

लक्ष्मण – यह मिथिला का वृत्तान्त है।

सीता – अहा! विकसित नूतन कमल के समान श्यामल, स्निग्ध, मसृण (चिकने) और मांसल (गठे हुए) शरीर की सुन्दरता के कारण जिनकी परम मनोहर शोभा को पिताजी विस्मय से टकटकी लगाकर देख रहे हैं तथा जिन्होंने शिव-धनुष तोड़ डाला है, ऐसे काकपक्षों (प्रसाधित केशों से) रमणीय तथा भोले-भाले मुख वाले 'आर्यपुत्र' ही इसमें चित्रित किये गये हैं।

टिप्पणी –

(1) मिथिलावृत्तान्त को चित्र पर अङ्कित देखकर सीताजी को धनुषयज्ञ बातों की स्मृति हो आई। आश्चर्यचकित होकर उन्होंने राम की उसी मनोहर मूर्ति का वर्णन कर दिया। भगवान् राम का सुगठित शरीर, धनुर्भङ्ग का दृश्य, जनक की मनोभावना-सभी का सुन्दर चित्र इस वर्णन में प्राप्त होता है। भवभूति की समर्थ वर्णनशक्ति तथा वाक्सिद्धि का यह वाक्य उदाहरण है।

(2) **अम्महे** – आश्चर्यसूचक अव्यय।

शिखण्डमुग्धमुखमण्डलः – शिखण्डेन = काकपक्षेण, मुग्धं सुन्दरं मुखमण्डलं यस्य सः। काकपक्ष (बालों की लटों) से सुन्दर मुख वाले।

''काकपक्षः शिखण्डकः।'' ''मुग्धः सुन्दरमूढयो''

लक्ष्मणः – आर्ये, पश्य पश्य!

सम्बन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति।
गौतमश्च शतानन्दो, जनकानां पुरोहितः।।16।।

अनुवाद – आर्ये! देखिए, देखिए –

श्लोकार्थ – ये आपके पिताजी जनक-वंश के पुरोहित गौतम शतानन्द के साथ वसिष्ठ आदि सम्बन्धियों का अर्चन कर रहे हैं।।16।।

टिप्पणी –

(1) यहाँ लक्ष्मण ने 'वसिष्ठ आदि सम्बन्धियों को' यह कहकर अपनी हार्दिक गुरुभक्ति का परिचय दिया है। सम्बन्धी तो वास्तव में दशरथ थे परन्तु उनका उल्लेख न करके वसिष्ठ जी का ही मुख्य रूप से उल्लेख करना रघुवंशी की शिष्टता का द्योतक है।

(2) शतानन्द – ये गौतम तथा अहिल्या के पुत्र थे और जनक क कुलपुरोहित थे।

(3) जनकानाम् – यह शब्द यहाँ वंश-परम्परा के लिये प्रयुक्त हुआ है। राजा जनक का वास्तविक नाम तो 'सीरध्वज' था।

रामः – सुश्लिष्टमेतत्।

जनकानां रघूणां च, सम्बन्धः कस्य न प्रियः।
यत्र दाता ग्रहीता च, स्वयं कुशिकनन्दनः।।17।।

अनुवाद –

राम – यह सर्वाङ्ग सुन्दर है।

श्लोकार्थ – जनक तथा रघुवंश के राजाओं का यह सम्बन्ध किसे प्रिय नहीं है? जिसमें कि दाता और ग्रहीता (दोनों ही) स्वयं कुशिकनन्दन अर्थात् विश्वामित्र हैं।

सीता – एते खलु तत्कालकृतगोदानमङ्गलाश्चत्वारो भातरो विवाहदीक्षिता यूयम्, अहो! जानामि, तस्मिन्नेव प्रदेशे, तस्मिन्नेव काले वर्ते।

रामः –

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां,
समनन्दयत्सुमुखि! गौतमार्पितः।
अयमागृहीतकमनीयकङ्कण-
स्त्व मूर्तिमानिव महोत्सवः करः।।18।।

अनुवाद –

सीता – ये तत्काल 'गोदान-संस्कार' (मुण्डन) कराये हुए, विवाह के लिये दीक्षित आप चारों भाई हैं। ओह, मुझे तो ऐसा लग रहा है जैसे कि मैं उसी स्थान और उसी समय में ही हूँ।

राम – सुमुखि सीते! मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो यह वही समय है जबकि कमनीय कङ्कण से अलंकृत, गौतम (शतानन्द) के द्वारा (मेरे हाथ में) पकड़ाये हुए तुम्हारे इस हाथ ने मूर्तिमान् महोत्सव की भाँति मुझे आनन्दित किया था।।18।।

टिप्पणी :

(1) गोदान – ''गावो लोमानि = केशा दीयन्ते = कर्त्यन्ते'' अर्थात् जिसमें केश दिए अर्थात् मुण्डन जाते हो, उस संस्कार को '**गोदान**' कहते हैं। यह विवाह से पूर्व होता है। कुछ टीकाकारों ने विवाह से पूर्व गौओं के वितरण को ही 'गोदान' माना है।

'गो' पूर्वक √'दो' (अवखण्डने) धातु से ल्युट् होकर 'गोदान' की सिद्धि होती है।

(2) श्लोक में उत्प्रेक्षा तथा भाविक अलङ्कार हैं।

लक्ष्मणः – इयमार्या। इयमप्यार्या माण्डवी। इयमपि वधूः श्रुतकीर्तिः।

सीता – वत्स, इयमप्यपरा का?

लक्ष्मणः – (सलज्जास्मितम् अपवार्य) अये, उर्मिलां, पृच्छत्यार्या। भवतु। अन्यतः सञ्चारयामि। (प्रकाशम्।) आर्य! दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत्। अयं च भगवान्भार्गवः।

सीता – कम्पितास्मि।

रामः – ऋषे। नमस्ते।

लक्ष्मणः – आर्ये! पश्य। अयमार्येण – (इत्यर्धोक्ते।)

रामः– (साक्षेपम्) अयि, बहुतरं द्रष्टव्यम्। अन्यतो दर्शय।

सीता – (सस्नेहबहुमानं निर्वर्ण्य।) सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र! एतेन विनयमाहात्म्येन।

लक्ष्मणः – एते वयमयोध्यां प्राप्ताः।

रामः– (सास्रम्) स्मरामि हन्त! स्मरामि।

जीवत्सु तातपादेषु, नूतने दारसंग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां, ते हि नो दिवसा गताः।।19।।

अनुवाद –

लक्ष्मण – यह आप हैं। (भरत जी की धर्मपत्नी) आर्या मण्डवी हैं और यह वधू श्रुतकीर्ति (शत्रुघ्न-पत्नी) हैं।

सीता – वत्स! और यह दूसरी कौन है?

लक्ष्मण – (लज्जा और मुस्कराहट से दूसरी ओर को स्वयं ही) अरे, अरे, आर्या (भाभी) उर्मिला को पूछ रही है। अस्तु, (अन्य वृत्तान्त दिखलाकर) दूसरी ओर इनका ध्यान आकृष्ट करता हूँ। (प्रकाश में) आर्ये, देखिये, यह द्रष्टव्य है। ये भगवान् भार्गव (परशुरामजी) हैं।

सीता – (घबराहट से) मैं तो भय से काँप उठी हूँ।

राम – ऋषे! आपको प्रणाम है।

लक्ष्मण – आर्ये! देखिये इन्हें आर्य ने.... यह आधा कहने पर बीच में ही।

राम– (निषेध करते हुए) प्रिय अनुज? बहुत कुछ देखना है। अतः दूसरा दृश्य दिखलाओ।

सीता – (सस्नेह सम्मानपूर्वक देखकर) आर्यपुत्र! आप इस विनय-प्रकर्ष से बहुत सुशोभित होते हं।

लक्ष्मण –(लीजिए) अब हम लोग अयोध्या में आ गए हैं।

राम – (आँसुओं के साथ) स्मरण करता हूँ। हन्त! स्मरण करता हूँ।

जब पिताजी जीवित थे, हमारा नया-नया विवाह हुआ था, माताएँ सब प्रकार से हमारी चिन्ता रखती थीं (हा!) आज हमारे वे (सुखमय) दिन चले गये।।19।।

टिप्पणी –

(1) '**वत्स! इयमपरा का?**' कहकर सीताजी ने बड़ी मीठी चुटकी ली है। उर्मिला के विषय में संस्कृत में इस पंक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(2) '**अपवार्य**' – एक ओर को मुख करके कोई बात कहना जिससे कि दूसरा पात्र उस कथन को न सुन सके। प्रो. काणे का मत है कि '**अपवार्य**' के स्थान पर 'स्वगत' का प्रयोग होना चाहिए।

(3) **प्रकाशम्** – ''सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्।'' उस बात को, जिसे सभी सुन सकें, 'प्रकाश' कहते हैं। जो स्वयं मन ही मन में कही जाय उसे 'स्वगत'।

(4) ''अयि, बहुतरं द्रष्टव्यम्, अन्यतो दर्शय।'' भगवान् राम का यह कथन उनकी अनुपम शालीनता का द्योतक है। परशुराम जी के मानभंग का प्रसङ्ग उठाने पर भी वे उसे पसन्द नहीं करते, उस दृश्य को छोड़कर आगे बढ़ने का अनुरोध करते हैं।

(5) 'ते हि नो दिवसा गताः' में पिछली अनुभूतियों के लिए कितनी लालसा, उत्सुकता और व्यथा है।

इयमपि तदा जानकी –

प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै-
र्दशनकुसुमैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै-
रकृतमधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकैः।।20।।

अन्वयः– प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः, दशन-कुसुमैः, मुग्धालोकं, मुखं, दधति (अयं), शिशुः, ललितललितैः ज्योत्स्नाप्रायैः, अकृत्रिमविभ्रमः, मधुरै अङ्गकैः, मे, अम्बानां, च, कुतूहलम्, अकृत।।20।।

अनुवाद –

और उस समय यह जानकी भी –

छोटे-छोटे और छीदे-छीदे कुसुम-कलिकाओं के समान कमनीय दाँतों तथा कपोलों पर सुशोभित होती हुई मनोहर काली-काली, घुंघराली अलकों से रमणीय एवं भोले-भाले मुख को धारण करती हुई थोड़ी-सी अवस्था वाली अत्यन्त सुन्दर, चन्द्रिका सदृश गौरवर्ण, स्वाभाविक हाव-भावों से युक्त अपने अङ्गों से मेरा तथा माताओं का कौतूहल बढ़ाया करती थी।।20।।

टिप्पणी –

(1) प्रतनुविरलैः = छीदे-छीदे। बाल्यावस्था में दाँत पूरे नहीं निकल पाये थे। वाल्मीकि-रामायण से पता चलता है कि विवाह के समय सीताजी की अवस्था 6 वर्ष की थी। (2) उपमाऽलङ्कार। हरिणी छन्द।

लक्ष्मणः – एष मन्थरावृत्तान्तः।

रामः – (सत्वरमन्यतो दर्शयन्) देवि वैदेहि?

इङ्गुदीपादपः सोऽयं, शृङ्गवेरपुरे पुरा।
निषादपतिना यत्र, स्निग्धेनासीत्समागमः।। 21।।

अन्वयः – शृङ्गवेरपुरे, अयं, स, इङ्गुदीपादपः, यत्र, पुरा, स्निग्धेन, निषादपतिना, (सह) समागम आसीत्।।21।।

लक्ष्मणः – (विहस्य। स्वगतम्।) अये, मध्यमाम्बावृत्तान्तोऽन्तरित आर्येण।

लक्ष्मण – यह 'मन्थरा' का वृत्तान्त है।

राम – (शीघ्रता से दूसरी ओर दिखलाते हुए) देवि! जानकी!

(श्लोकार्थ) शृङ्गवेरपुर में यह वही 'इंगुदी' (हिङ्गोट) का वृक्ष है, जहाँ पहिले परम-स्नेही निषादराज गुह के साथ हमारा परिचय हुआ था।।21।।

लक्ष्मण – (हंसकर स्वयं ही) अरे, 'आर्य ने' मंझली माता 'कैकेयी का वृत्तान्त छोड़ दिया है।'

टिप्पणी :

(1) **'एष मन्थरावृत्तान्तः'** – कहकर लक्ष्मण ने पुनः एक विगत कटु प्रसङ्ग की अवतारणा की, किन्तु भगवान् राम ने उस दृश्य से सीता का ध्यान दूसरी ओर कर दिया। वे नहीं चाहते थे कि माता कैकेयी के प्रति कोई अनुचित भावना रखी जाये। भगवान् राम की उदारता का कैसा सुन्दर निर्दशन है।

(2) राम एक ओर तो कटु-प्रसङ्गों को भुलाते चलते हैं, परन्तु श्रद्धालु और स्नेहीजनों को नहीं भूलते। निषाद-राज गुह का वह कैसे प्रेम से स्मरण करते हैं। गुह शृङ्गवेरपुर का राजा था।

'इङ्गुदीवृक्ष' के सम्बन्ध में रामायण में भी उल्लेख है –

सीता – अहो, एष जटासंयमन वृत्तान्तः?

लक्ष्मणः–

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम्।।22।।

अन्वयः – पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः, वृद्धेक्ष्वाकुभिः, यत् धृतम्, तत्, पुण्यम्, आरण्यकव्रतम्, आर्येण, बाल्ये, धृतम्।।22।।

अनुवाद –

सीता – ओह! यह 'जटा-धारण' करने का वृत्तान्त है।

लक्ष्मणः–

(श्लोकार्थ) – पुत्रों को राज्यभार सौंपकर 'इक्ष्वाकु' वंश के वृद्ध राजागण जिस वनवास के व्रत को धारण किया करते थे, उस पुण्यव्रत को 'आर्य' ने बाल्यावस्था में ही धारण कर लिया था।

टिप्पणी –

(1) पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः – पुत्रेष संक्रान्ता लक्ष्मीर्यैस्तेः। वृद्धावस्था में इक्ष्वाकुवंशीय राजा पुत्रों पर राज्य का भार छोड़कर वन में चले जाया करते थे जैसा कि कालिदास ने लिखा है –

''गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्।'' किन्तु भगवान् रामचन्द्र ने तो उस आरण्यक-व्रत (वानप्रस्थ-व्रत) को बाल्यावस्था में ही ग्रहण कर लिया था।

(2) आरण्यकं व्रतम् – (अरण्य + वुञ्) ('अरण्यान्मनुष्ये') वानप्रस्थ व्रत।

(3) व्यतिरेक तथा निदर्शना अलङ्कार।

सीता – एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती भागीरथी।

रामः– रघुकुलदेवते! नमस्ते।

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे,
कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान्पितुश्च पितामहान्।
अगणिततनूतापस्तप्त्वा तपांसि भगीरथो,
भगवति! तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत्।।23।।

अन्वय – भगवति! भगीरथः, अगणिततनूतापः (सन्), तपांसि तप्त्वा, तव, अद्भिः, स्पृष्टान्, सगराध्वरे, तुरगविचयव्यग्रान् उर्वीभिदः, रोषात्, कपिलमहसा प्लुष्टान्, पितुः, पितामहान्, चिरात् उदतीतरत्।।23।।

सा त्वमम्ब! स्नुषायामरुन्धतीव सीतां शिवानुध्याना भव।

अनुवाद –

सीता – यह पुण्यसलिला भगवती भागीरथी है।

राम – रघुकुल की देवि! आपको प्रणाम है।

श्लोकनार्थ – भगवति! जाह्नवि! राजा सागर के यज्ञ के घोड़े को खोजने में व्याकुल पृथ्वी को खोदने वाले तथा महर्षि कपिल की क्रोधाग्नि से दग्ध अपने पिता (दिलीप) के भी पितामह (सगरपुत्रों)को– शारीरिक कष्टों का तनिक भी विचार न करते हुए– भगीरथ ने (घोर) तपस्या कर तुम्हारे पवित्र जल के सम्पर्क से पार कर दिया था (उनका उद्धार कर दिया था)।।23।।

वह (रघुकुल की प्रसिद्ध देवि) माँ! पुत्रवधू सीता के लिए भगवती अरुन्धती की भाँति सदा कल्याण-कारिणी होना।

टिप्पणी –

भगीरथेन आनीता इति। गंगावतरण की कथा शास्त्रों में प्रसिद्ध है।

(2) **तुरगविचयव्यग्रान्** – तुरेण = वेगेन गच्छतीति तुरगस्तस्य विचये = अन्वेषणे व्यग्रान्। यज्ञ के घोड़े की खोज में व्यग्र। **उर्वीभिदः** – उर्वीं भिन्दन्तीति। उर्वी + √ भिद् + क्विप्। **अगणिततनूतापः**– अगणितः = अविचारितो वा तन्वाः शरीरस्य तापः = कष्टं येन सः। शारीरिक कष्टों की चिन्ता न करने वाले। कुछ टीकाकारों ने **अगणिततनूपातं,** पाठ मानकर इसे 'क्रियाविशेषण' भी माना है। पातः = पतनम्। प्लुष्टान् – दग्धान्। √ 'प्लुष्' दाहे कर्मणि क्तः। **उदतीतरत्** – उत्तारयामास। उद् + तृ + णिच् + लुङ् + प्र. पु. एक. + कहीं-कहीं **'उदधीतरत्'** पाठ भी मिलता है।

(3) शिवानुध्याना भव – शिवमनुध्यानं यस्याः सा = कल्याणं-चिन्तापरा। यहाँ गङ्गाजी से सीताजी की कल्याण-कामना के लिए प्रार्थना करने से आगामी घटनाचक्र पर प्रकाश पड़ता है।

लक्ष्मणः – एष भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे वटः श्यामो नाम। (रामः सस्पृहमवलोकयति)

सीता – स्मरति वा तं प्रदेशमार्यपुत्रः?

रामः– अयि, कथं विस्मर्यते?

अलसललित- मुग्धान्यध्वसम्पातखेदा-
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्त- संवाहनानि।

दरिमृदितमृणाली दुर्बलान्यंगकानि,
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता।।24।।

(रामः सस्पृहमवलोकयति।)

अन्वयः- यत्र, त्वम् अध्वसम्पातखेदात्, अलसललितमुग्धानि, अशिथिलपरिरम्भैः दत्तसंवाहनानि, परिमृदितमृणालीदुर्बलानि, अङ्गकानि, मम, उरसि कृत्वा, निद्राम्, अवाप्ता।।24।।

अनुवाद -

लक्ष्मण - यह '**चित्रकूट**' को जाने वाले मार्ग में यमुना-तट पर भरद्वाज ऋषि से निर्दिष्ट श्याम नामक वटवृक्ष है।

(राम बड़ी अभिलाषा से देखते हैं।)

सीता - आर्यपुत्र! क्या आप उस स्थान का स्मरण कर रहे हैं?

राम - अयि! वह कैसे भुलाया जा सकता है?

(श्लोकार्थ) जहाँ तुम मार्ग में चलने की थकावट से आलस्य-युक्त, मृदुल और मनोहर, दृढ़ आलिङ्गन में कसे हुए मर्दित कमल-नाल की भाँति अपने दुर्बल अङ्गों को मेरे वक्ष पर रखकर सो गई थीं।

टिप्पणी-

(1) **अलसललितमुग्धानि** - अलसानि च तानि ललितैर्मुग्धानि च। **अध्वसम्पातखेदात्**- अध्वनि=मार्गे, सम्पातः = गमनं तेन खेदस्तस्मात्। मार्गजन्य थकावट से। **दत्तसंवाहनानि** - दत्तानि, संवाहनानि येभ्यस्तथाभूतानि। आलिङ्गित। **परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि** - परिमृदिता या मृणाली तद्वद् दुर्बलानि अङ्गकानि = ह्रस्वान्यङ्गानि। अङ्ग+कन्। मृदित कमलिनी के समान छोटे-छोटे अङ्गों को। (2) **ललितम्** - ''अनाचार्योपदिष्टं **स्याल्ललितं** रतिचेष्टितम्।'' (भरत)। (3) '**कथं विस्मर्यते?**' जिस स्थान के साथ ऐसे मधुर संस्मरण जुड़े हुए हों, उसे कैसे भुलाया जा सकता है? (4) मालिनी छन्द तथा उपमालङ्कार।

लक्ष्मणः- एष विन्ध्याटवीमुखे विराधसंवादः।

सीता- अलं दाव एदिणा! पेक्खम्मि दाव अज्जउत्तसहत्तधरिदताल वुन्दादवतं, अतणो अच्चाहिदं दक्खिणारण्णपहिअत्तणम्। (अलं तावदेतेन। पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृतताल-वृन्तातपत्र-मात्मनोऽत्याहितं दक्षिणारण्य-पथिकत्वम्।)

रामः-

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु,
वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते,
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि।।25।।

अन्वयः - गिरिनिर्झरिणीतटेषु, वैखानसाश्रिततरूणि, एतानि, तानि, तपोवनानि, येषु, आतिथेयपरमाः, नीवारमुष्टिपचनाः, यमिनः, गृहिणः, गृहाणि, भजन्ते।।25।।

अनुवाद -

लक्ष्मण -यह '**विन्ध्यावटी**' के प्रवेश-स्थान में राक्षस विराध के संवाद का दृश्य है।

सीता - अरे, इसे दिखाने को रहने दो। मैं तो दक्षिणारण्य के यात्रा-प्रसङ्ग (के दृश्य) को, जहाँ कि 'आर्यपुत्र' ने अपनी कोई चिन्ता न कर हाथ में (धूप से बचने के लिए) ताड़-पत्र को छत्र की भाँति धारण किया था, देख रही हूँ।

राम - **(श्लोकार्थ)** पहाड़ी नदियों के किनारे पर वानप्रस्थियों से (छाया में बैठने आदि से) सेवित वृक्षों वाले ये वे तपोवन हैं, जिनमें अतिथि-सत्कार-परायण, कुछ ही मुट्ठी 'नीवार' (अन्न-विशेष) पकाकर (जीवन-निर्वाह करने वाले) गृहस्थ यम नियमपूर्वक रहते हैं।

टिप्पणी -

(1) वैखानस - वानप्रस्थ। 'वैखानसो वानप्रस्थः। विखनसा प्रोक्तेन मार्गेण वर्तत इति।' **वैखान-साश्रिततरूणि** - वैखानसो के द्वारा सवित वृक्ष हैं जिनमें - 'तपोवनानि' का विशेषण। वैखानसैः आश्रितास्तरवो येषु तानि। (3) **आतिथेयपरमाः** = आतिथेयं परमं येषाम्। अतिथिसत्कार-परायण। आतिथेय = अतिथि + ढञ्। (4) **यमिनः** = यमाः सन्ति येषां ते। ''अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रहा यमाः'' (5) **नीवारमुष्टिपचनाः** - नीवारस्य = अन्नविशेषस्य, मुष्टिः=मुष्टिमात्रं पचनं = पाको येषाम्। मुट्ठीभर (परिमित) नीवार पकाने वाले-अपरिग्रही।

(6) **उदात्तालङ्कार।** वसन्ततिलकाच्छन्दः।

लक्ष्मणः- अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्यपरिणद्धगोदावरीमुखरकन्दरः। संततमभिष्यन्दमानेमेघमेदुरितनीलिमा जनस्थानमध्यगो गिरिः प्रस्रवणो नाम।

रामः-

स्मरसि सुतनु! तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन,
प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि?
स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा,
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोवर्तनानि।।26।।

अनुवाद -

लक्ष्मण - यह सघन वृक्षों की कतारों से निरन्तर स्निग्ध तथा श्यामवर्ण वाले वन के भागों से युक्त गोदावरी की तरङ्गों से आस्फालित होने के कारण मुखरित गुफाओं वाला तथा लगातार बरसने वाले मेघों से और भी अधिक नीलिमा धारण करने वाला जनस्थान के मध्य भाग में स्थित प्रस्रवण नाम का पर्वत है।

(श्लोकार्थ) प्रिये! तुम उस 'प्रस्रवण' पर्वत में लक्ष्मण के द्वारा दी गई सेवा से प्रसन्न हम दोनों के उन सुखमय दिनों का, निर्मल जल वाली गोदावरी नदी का और उसके किनारे पर हमारे विहार का स्मरण करती हो? (या नहीं?)।।26।।

टिप्पणी -

(1) जनस्थान - दण्डकारण्य का एक भाग। यह वर्तमान 'नासिक' के पास का क्षेत्र था। प्रत्येक युग में इसके भिन्न-भिनन नाम है - त्रेता में 'त्रिकण्टक', द्वापर में 'जनस्थान' और कलियुग में 'नासिका'। (2) **प्रस्रवणः** - गोदावरी के तट पर जनस्थान (औरङ्गाबाद) की पहाड़ियाँ। इन्हें रामायण में माल्यवान् भी कहा गया है। (3) **प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोः**-(लक्ष्मणेन) प्रतिविहितया सपर्यया = सेवया, सुस्थयोः = स्वस्थयोः आवयोः लक्ष्मण के द्वारा की गई सेवा से आनन्दित। सुस्थयोः के स्थान पर 'स्वस्थयोः' पाठ भी मिलता है। सपर्या = सपर + यक्। 'कण्ड्वादिभ्यो यक्'। पूजा नमस्यापचितिः सपर्याऽर्चार्हणाः समा. इत्यमरः। (4) **उपान्तेषु**- उपगता अन्तं समीपमिति उपान्तास्तेषु। प्रान्त भागों में =

तटों पर। (5)**वर्तनानि** – वृत + ल्युट् भावे। स्वच्छन्द भ्रमणादि। (6) राम का पुरानी बातों के विषय में प्रश्न करना सचमुच एक मार्मिक प्रसङ्ग है। इस श्लोक में लक्ष्मण का भ्रातु-प्रेम, सीता-राम का पारस्परिक दाम्पत्य-प्रेम तथा प्रकृति-प्रेम सभी एक साथ मुखरित हो उठे हैं। राम के इन रहस्यपूर्ण प्रश्नों का सौन्दर्य सहृदय संवेद्य है। (7) **दीपकालङ्कार।** मालिनी छन्द।

किंच –

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।।27।।

अन्वय : आसत्तियोगात् किमपि मन्दं, मन्दं अविरलितकपोलम् अक्रमेण, जल्पतो:, अशिथिल-परिरम्भव्यापृतैकेददोष्णे: (आवयो:) अविदितगतयामां रात्रिरेव व्यरंसीत् ।।27।।

अनुवाद –

और भी –

(श्लोकार्थ) जहाँ पास-पास कपोल से कपोल सटाकर तथा परस्पर एक दूसरे की भुजाओं के दृढ़ आलिङ्गन में बँधकर धीरे-धीरे इधर-उधर की बातें (गपशप) करते हुए बिना पता चले हम दोनों की रात ही (रात के प्रहर के प्रहर ही) बीत जाया करती थी। (क्या वह समय याद है?)।।27।।

टिप्पणी –

(1) यह श्लोक बहुत ही भावपूर्ण है। दाम्पत्य-जीवन का कितना स्वाभाविक किन्तु मर्यादित चित्र प्रस्तुत किया गया है। अनुभूति की एकतानता की दृष्टि से-संयोगवर्णन की दृष्टि से, यह उत्कृष्ट रचना है। (2) कहीं-कहीं **'आसत्ति'** के स्थान पर **'आसक्ति'** तथा **'रात्रिरेव'** के स्थान पर **'रात्रिरेवं'** पाठ मिलते हैं, परन्तु भाव सौंदर्य की दृष्टि से **'आसत्ति'** तथा **'रात्रिरेव'** पाठ ही प्रशंसनीय है। (3) **व्यरंसीत्** – वि + रम् + लुङ्। ''व्याङ् परिभ्यो रम:'' इति परस्मैपदम्। 'यमरमनमातां सक्च' इति सगिटौ। **आसत्ति** – आङ् + सद् + क्तिन्। (4) **स्वभावोक्ति** अलङ्कार! मालिनी छन्द।

लक्ष्मण:- एष पञ्चवट्यां शूर्पणखाविवाद:।

सीता – हा आर्यपुत्र! एतावत्ते दर्शनम्?

राम:- अयि वियोगत्रस्ते? चित्रमेतत्।

सीता- यथा तथा भवतु। दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।

राम:- हन्त, वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तान्त प्रतिभाति।

लक्ष्मण:-

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना,
तया वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।।28।।

अन्वय- अथ, पापै:, रक्षोभि:, कनकहरिणछद्मविधिना, इदं तथा वृत्तम्, यथा क्षालितमपि विकलयति, शून्ये, जनस्थाने, विकलकरणै: आर्यचरितै:, ग्रावा अपि, रोदिति, वज्रस्य, अपि हृदयं दलति।।28।।

सीता- साम्रमात्मगतम्। अहो, दिनकरकुलानन्दन एवमपि मम कारणात् क्लान्त आसीत्।

अनुवाद -

लक्ष्मण - यह पञ्चवटी में शूर्पणखा-विवाद का दृश्य है।

सीता- हा आर्यपुत्र! बस यहीं तक आपका दर्शन था। इसके बाद मेरा हरण कर लिया गया था।

राम- अयि विरहभीते! यह तो चित्र है। (घबराओ मत।)

सीता- चाहे जो भी, दुर्जन अनिष्ट उत्पन्न करता ही है।

राम- हा, मुझे तो जनस्थान का वृत्तान्त प्रत्यक्ष-सा लग रहा है।

(श्लोकार्थ) लक्ष्मण - तदनन्तर उन नीच राक्षसों ने सुवर्ण मृग के छल से ऐसा दुष्कर्म किया, जो कि प्रतिकार किए जाने पर भी (हमको) सन्तापयुक्त कर रहा है। उसे सुनसान जन-स्थान में विकल इन्द्रियों वाले (अथवा विकलतापूर्ण) आर्य के चरित्रों से मूर्छा आदि व्यापारों से एक बार तो पत्थर भी रो उठता है और वज्र का हृदय भी टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

सीता - (रोती हुई, स्वयं ही) ओह! सूर्यवंश को आनन्द देने वाले आर्यपुत्र मेरे लिए ऐसे दु:खी हुए थे?

टिप्पणी -

(1) शूर्पणखा - शूर्पवन्नखानि यस्याः सा। ''नखमुखात् संज्ञायाम्'' इसे ङीषृनिषेध। पूर्वपदात्संज्ञायामगः से णत्व। (2) **एतावत्ते दर्शनम्** - शूर्पणखा-दृश्य को देखकर सीताजी घबरा गई। उन्हें पहला प्रसङ्ग स्मरण आ गया। शूर्पणखा के काण्ड के बाद ही सीता-हरण हुआ था। इसलिए उन्हें अब भी वही शङ्का बनी हुई है। इससे यह अर्थ भी निकलता है कि 'चित्रवीथिका' के दर्शन तक ही सीता को राम का दर्शन हो रहा है। **(3) ''अपि....हृदयम्''** करुणरसाचार्य भवभूति का यह श्लोक बड़ा ही मार्मिक है। भगवान् राम के विलाप से पत्थर भी पिघल उठे थे और वज्र का हृदय भी टुकड़े-टुकड़े हो गया था। पत्थर को रुलाना तथा वज्र को भी संवदेन-शील बनाना निस्सन्देह भवभूति का ही कौशल है। उनके सम्बन्ध में गोवर्धनाचार्य ने ठीक कहा है -

''भवभूतेः सम्बन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृत्कारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा?''।।

लक्ष्मणः- (रामं निर्वर्ण्य साकूतम्।) आर्य! किमेतत्?

अयं तावद्बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो,
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया,
परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः।।29।।

अन्वय- तावत् धाराभिर्विसर्पन्, जर्जरकणः, अयं, वाष्पः, त्रुटितः, मुक्तामणिसरः, इव, धरणीं, लुठति, चिरमाध्मातहृदयः, आवेगः, निरुद्धोऽपि, स्फुरदधरनासापुटतया परेषाम्, उन्नेयो, भवति।।29।।

अनुवाद -

लक्ष्मण - (राम को देखकर (सान्त्वना देने के अभिप्राय से) आर्य! यह क्या?)

(श्लोकार्थ) - आपका यह अश्रुप्रवाह टूटी हुई मोतियों की लड़ी की भाँति अनेक धाराओं में टपाटप गिरता हुआ पृथ्वी पर फैल रहा है। आपके हृदय का यह आवेश रोके जाने पर भी आपके फड़कते हुए ओठों और नथुनों से दूसरों के लिए सहज ही अनुमेय हो रहा है। (अथवा बहुत देर तक दबाये जाने पर भी हृदयवेग ओठों और नासापुटों से दूसरों के लिए अनुमेय होता है।)

रामः- वत्स!

तत्काल प्रियजनविप्रयोगजन्मा,
तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवाञ्छया विसोढः।
दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो,
हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति।।30।।

अन्वय - प्रियजनविप्रयोगजन्मा, तीव्रः, अपि, प्रतिकृतिवाञ्छया, तत्कालं विसोढः, दुःखाग्निः, पुनः, मनसि, विपच्यमानः (सन्)] हृन्मर्मव्रणः इव, वेदनां तनोति।।30।।

अनुवाद -

राम- वत्स!

श्लोकार्थ - उस समय (तो) मैंने सीता के विरह से उत्पन्न दुःखाग्नि को (शत्रु-रावण से) बदला लेने की इच्छा से जैसे-तैसे सह लिया था परन्तु आज वही दाह हृदय के मर्मस्थान में पके हुए फोड़े की भाँति मुझे असह्य पीड़ा दे रहा है। (यद्यपि सीता की विरहाग्नि सर्वथा दुःसह है तथापि उस समय मैंने उसके प्रतीकार की इच्छा से सह लिया था। परन्तु आज उस अवस्था का स्मरण आने से हृदय का घाव पुनः हरा हो गया है। मुझे असह्य सन्ताप हो रहा है। और हो भी क्यों न? क्या कभी किसी ने आग से जले हुए व्यक्ति को बिना रोते हुए देखा है? नहीं! इसलिए भाई! मैं तो जला हुआ पड़ा हूँ। इस स्थिति में यदि रोता हूँ तो कोई अस्वाभाविक बात नहीं है।।30।।

टिप्पणी -

(1) **प्रियजनविप्रयोगजन्मा** - प्रियजनस्य = सीतायाः, विप्रयोगात् = विरहात् जन्म यस्य सः। सीता के विरह से उत्पन्न। (2) **तत्कालम्....विसोढः** - उस समय तो मैंने रावण से बदला लेने की इच्छा से उस दुःखाग्नि को सह लिया था, परन्तु आज इस दृश्य को देखकर सारी बातें पुनः याद आ गई है, आज यह हरे घाव की भाँति बहुत पीड़ा दे रहा है। इसका अर्थ यह भी ध्वनित होता है कि पहला आघात तो मैं सह गया था परन्तु अबका आघात असह्य होगा। (3) **विसोढः**- वि + सह + क्त। **विपच्यमानः**- वि + पच् + शानच्। (4) काव्यलिंग, उपमा, रूपक का अङ्गाङ्गिभावसंकर। प्रहर्षिणी छन्द।

सीता - हा धिक् ! अहमप्यतिभूमिं गतेन रणरणकेनार्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि।

लक्ष्मणः- (स्वगतम्।) भवतु, आक्षिपामि। (चित्रं विलोक्य प्रकाशम्।) अथैतन्मन्वन्तर-पुराणस्य तत्रभवतस्तातजटायुषश्चरित्रविक्रमोदाहरणम्।

सीताः- हा तात! निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेहः।

रामः- हा तात काश्यप शकुन्तराज! क्व न खलु पुनस्त्वादृशस्य महतस्तीर्थभूतस्य साधोः सम्भवः?

लक्ष्मणः- अयमसौ जनस्थानस्य पश्चिमतः कुञ्जवान्नाम (पर्वतो) दनुकबन्धाधिष्ठितो दण्डकारण्य-भागः तदिदममुष्य परिसरे मतङ्गाश्रमपदम्। तत्र श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी। तदेतत्पम्पाभिधानं पद्मसरः।

सीता - यत्र किलार्यपुत्रेण विच्छिन्नामर्षधीरत्वं प्रमुक्तकण्ठं प्ररुदितमासीत्।

अनुवाद -

सीता - अरे कष्ट की बात है, मैं भी सीमा का अतिक्रमण कर देने वाली उत्कण्ठा (घबराहट) से अपने को 'आर्य-पुत्र' से विरहित-सी देख रही हूँ। (मुझे भी पतिदेव की विरहावस्था प्रत्यक्ष-सी लग रही है।)

लक्ष्मण- (स्वयं ही) अच्छा तो मैं (इनका ध्यान) दूसरी ओर आकृष्ट करता हूँ (चित्र को देखकर प्रकाश में) (अच्छा) अब 'मन्वन्तर' से भी प्राचीन पूजनीय जटायु के चरित्र तथा पराक्रम का उदाहरण (देखिये!)

सीता - हा तात! आपका सन्तान-स्नेह पूर्णरूपेण सफल सिद्ध हुआ। अर्थात् आपने अपना सन्तान-स्नेह पूर्ण रूप से निभाया।

राम - हा तात! काश्यप! पक्षिराज! अब आप जैसे महान् पवित्रात्मा प्राणी की उत्पत्ति कहाँ सम्भव है?

लक्ष्मण - यह 'जनस्थान' की पश्चिम दिशा में 'कुञ्जवान्' नामक पर्वत है तथा वहीं ''दनुकबन्ध'' से अधिकृत 'दण्डकारण्य' का भाग है। अथवा - 'दनुकन्धा' धिष्ठित कुञ्ज-पुञ्जों वाला 'दण्डकारण्य' का भाग है। इसी के पास यह 'मतङ्ग' ऋषि का आश्रम है वहीं यह 'श्रमणा' नाम वाली सिद्ध शबर-तपस्विनी (भीलनी) है। और यह 'पम्पा' नामक कमल-सरोवर है।

सीता- जहाँ आप (रावण के प्रति) क्रोध तथा स्वाभाविक धीरता को छोड़ कर गला फाड़ कर रोये थे।

रामः- देवि! परं रमणीयमेतत्सरः।

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष-,
व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः।
वाष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले,
संदृष्टाः कुवलयिनो मया विभागाः।।31।।

अन्वय - एतस्मिन्, मदकलमल्लिकाक्षपक्षव्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः कुवलयिनः विभागाः मया, वाष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले संदृष्टा।।31।।

अनुवाद -

राम - देवि! यह सरोवर अत्यन्त सुन्दर है।

श्लोकार्थ - इसमें मद के कारण अव्यक्त और मधुर कूजन करने वाले मल्लिकाक्ष नामक हंसों के पंखों से कंपाये हुए और सुशोभित नालों वाले श्वेत कमलों से युक्त नील कमल-मय प्रदेशों को मैंने आँसुओं के गिरने और उमड़ने के समय देखा था।

आशय यह है कि इस सरोवर में अत्यन्त मधुर शब्द करते हुए मल्लिकाक्ष हंसों के पंखों से मृणाल-दण्ड हिल रहे थे। नीले कमलों वाले प्रदेशों की ऐसी शोभा देखकर सीते! तुम्हारे नेत्रों का स्मरण हो जाने के कारण मेरे नेत्रों में आँसू भर आये। मैंने डबडबायी आँखों से इन प्रदेशों को देखा था।

हंसों को देखकर तुम्हारी चाल, श्वेत कमलों से मुख तथा नील कमलों को देखकर तुम्हारे नेत्रों पर स्मरण हो जाने के कारण मेरे आँसू झर-झर गिरने लगे थे।

अथवा - हंसों के श्वेत वर्ण पङ्खों से हिलाये हुए श्वेत कमलों वाले प्रदेशों को आँसू भरो आँखों से नील-कमल-युक्त सा देखा था। (उन हंसों के पैर और चोंच मटियाले थे और पङ्ख श्वेत। इस प्रकार दो रङ्ग मिलने से वे श्वेत-कमल नील-कमल से लग रहे थे। वास्तव में तो वहाँ श्वेत कमल ही विकसित थे, पर श्रीरामचन्द्र जी को नीले से प्रतीत हा रहे थे।) (ब्रह्मानन्दशुक्लकृतव्याख्या)

टिप्पणी -

(1) मल्लिकाक्ष - जिसके चोंच और पंजे मटमैले रङ्ग के होते हैं, उन हंसों को 'मल्लिकाक्ष' कहते हैं। जिनके चोंच और पंजे लाल होते हैं, उन्हें 'राजहंस' तथा जिनके काले होते हैं उन्हें 'धार्तराष्ट्र' कहते हैं।

''आताम्रै राजहंसाः स्युर्धार्तराष्ट्राः सितेतरैः।

मलिनैर्मल्लिकाक्षाश्च, कथ्यन्ते चरणानैनः।'' (हलायुध कोष)

(2) पुण्डरीक – श्वेतकमल–'पुण्डरीकं सिताम्भोजम्। (अमर. कोष)'

(3) कुवलय – नीलकमल– 'स्यादुत्पलं कुवलयम्'। (अमर. कोष)

(4) यहाँ **उत्प्रेक्षालङ्कार** है। कुछ ने यहाँ 'भ्रान्तिमान्' माना है, किन्तु यह उचित नहीं लगता है, क्योंकि राम को श्वेतकमलों नील–कमलों की भ्रान्ति नहीं हुई थी, वे कमलों की यथार्थता से परिचित थे, उन्हें या तो आँखें डबडबायी होने के कारण अथवा मल्लिकाक्ष हंसी की समीपता के कारण वे नीले–से प्रतीत हुए थे। अतः यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार ही है। प्रहर्षिणी छन्द। ओज गुण। गौडी रीति का प्रयोग है।

लक्ष्मण – अयमार्यो हनूमान्।

सीता– एष स चिरनिर्व्यूढजीवलोकप्रत्युद्धरणगुरूपकारी महानुभावो मारुतिः।

रामः–

दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरञ्जनानन्दवर्धनः।
यस्य वीर्येण कृतिने, वयं च भुवनानि च।।32।।

अनुवाद –

लक्ष्मण – ये आर्य हनुमान हैं।

सीता – ये हर दृष्टि से संसार का उद्धार करने के कारण अतिउपकारी तथा प्रभावशाली हनुमान जी हैं।

श्लोकार्थ– राम – सौभाग्यवश ये वही अतिपराक्रमी तथा अपनी माता अञ्जनादेवी के आनन्द में वृद्धि करने वाले हनुमान है, जिनकी तेजास्विता से हम सब कृतज्ञ हैं।।32।।

टिप्पणी –

(1) दिष्ट्या – प्रसन्नतासूचक अव्यय। **(2) अञ्जनानन्दवर्धनः** – अञ्जनाया आनन्दं वर्धयतीति असौ। 'अञ्जना' हनूमान् जी की माता का नाम था। इसलिए उनका नाम 'आञ्जनेय' भी है। (3) रामचन्द्र जी के चरित्र की सबसे अधिक आकर्षित करने वाली विशेषता है उनकी कृतज्ञता की भावना। हनूमान् जी की प्रशंसा में उन्होंने अपने हृदय की इसी विशालता का परिचय दिया है। 'यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च' इससे बढ़कर और क्या कृतज्ञता प्रकाशित की जा सकती है? (4) यहाँ उदात्तालङ्कार। तथा पथ्यावक्त्र छन्द का प्रयोग किया गया है।

सीता – वच्छ! एष स कुसुमितकदम्ब ताण्डवितबर्हिणः किन्नामधेयो गिरिः? तत्रान्भावसौभाग्यमात्रपरिशेषसुन्दर श्रीर्मूच्छस्त्वया प्ररुदितेनावलम्बितस्तरुतले आर्यपुत्रः आलिखितः?

लक्ष्मणः – **सोऽयं शैलं ककुभसुरभिर्माल्यवान्नाम यस्मि–**
न्नीलः स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः।
आर्येणास्मिन् ....

रामः–

.... विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि,
प्रत्यावृत्तः स पुनरिव मे जानकीविप्रयोगः।।33।।

हिन्दी –

सीता - वत्स! विकसित कदम्ब के वृक्ष पर ताण्डव करने में निरत मयूरों से युक्त यह कौन सा पर्वत है? जहाँ वृक्ष के नीचे रोते हुए, तुम्हारे द्वारा पकड़े गये, प्रभावमात्र से अवशिष्ट शोभा के कारण सुन्दर तथा मूर्छित होते हुए आर्यपुत्र को चित्रित किया गया है।

लक्ष्मण - **(श्लोकार्थ)** 'अर्जुन' पुष्पों से सुरभित यह वही माल्यवान् नामक पर्वत है, जिसके शिखर पर नीला-नीला, नया-नया मनोहर मेघ विश्राम ले रहा है। आर्य ने यहाँ......।

राम - .... 'बस, बस! (अब इस स्थिति का वर्णन मत करो) मैं इससे अधिक नहीं सुन सकता। मुझे तो ऐसा लग रहा है मानों जानकी का यह वियोग फिर से लौट आया हो।'

टिप्पणी -

(1) इस श्लोक में कवि ने 'परिभावना' नामक मुखसन्धि के अङ्ग का वर्णन किया है। **'परिभावना'** का लक्षण है -

''कुतूहलोत्तरावाचः प्रोक्ता तु परिभावना।'' भावी सीता-विरह की सूचना इस श्लोक में दी गई है।

(2) इस श्लोक की रचना कवि ने बड़े कौशल से की है। प्रारम्भिक लगभग ढाई पंक्तियों में लक्ष्मण की उक्ति है और बाद में राम की। तीसरी पंक्ति में कहीं-कहीं **'वत्सैतस्माद् विरम'** यह पाठ भी मिलता ह, किन्तु उसकी अपेक्षा स्वीकृत पाठ ही अधिक प्रभावोत्पादक है। कवि का कौशल यह है कि राम के ''प्रत्यावृत्तः वियोग'' कहने के अनन्तर ही **'चित्रदर्शन'** समाप्त हो जाता है। **(4) विरम-विरम**- सम्भ्रमे द्विरुक्तिः। (4) **ककुभः** - ककुभ + अण् ''तस्य विकारः''। ''पुष्पमूलेषु बहुलम्'' इति तस्य लुप् च। ''इन्द्रदुः ककुभोऽर्जुनः।'' (अमरकोश)। (5) उत्प्रेक्षालङ्कार। मन्दाक्रान्ता छन्द।

लक्ष्मण- अतः परमार्यस्य तत्रभवतां राक्षसानां चापरिसङ्ख्यान्युत्तरोत्तराणि कर्माश्चर्याणि। परिश्रान्ता चेयमार्या। तद्विज्ञापयामि 'विश्राम्यतामि' ति।

सीता- आर्यपुत्र! एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्नदोहदाया मम विज्ञापनीयमस्ति।

राम- नन्वाज्ञापय।

सीता - जाने पुनरपि प्रसन्नगम्भीराजिसुवनराषि विहृत्य पवित्रनिर्मलशिशिरसलिलां भगवतीं भागीरथीमवगाहिष्य इति।

रामः- वत्स लक्ष्मण।

लक्ष्मणः- एषोऽस्मि।

रामः- वत्स! 'अचिरादेव संपादनीयो दौहद' इति संप्रत्येव गुरुभिः संदिष्टम्। तदस्खलितसंपात रथमुपस्थापय।

सीता- आर्यपुत्र! युष्माभिरप्यामन्तव्यम्।

रामः- अतिकठिनहृदये! एतदपि वक्तव्यम्?

सीता- तेन हि प्रियं मे।

लक्ष्मण - यदाज्ञापयत्यार्यः। (इति निष्क्रान्तः)

रामः- प्रिये! वातायनोपकण्ठे संविष्टा भव।

सीता - एवं भवतु। अपहृतास्मि परिश्रमनिद्रया।

रामः- तेन हि निरन्तरमवलम्बस्व मामत्र शयनाय।

जीवयन्निव ससाध्वसश्रम-
स्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम्।
बाहुरेन्दवमयूखचुम्बित-
स्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः।।34।।

अन्वयः- ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुः (अतएव) ऐन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्र मणिहारविभ्रमः, जीवयन्निव, बाहुः, अधिकण्ठमर्प्यताम्।।34।

अनुवाद -

लक्ष्मण - इससे आगे आर्य एवं राक्षसों के अगणित एवं उत्तरोत्तर आश्चर्यजनक कार्य (चित्रित) हैं। अब आप थक गई हैं, इसलिये मैं निवेदन करता हूँ कि आप विश्राम कीजिये।

सीता- आर्यपुत्र! इस चित्रदर्शन से मुझे इच्छा होने के कारण कुछ निवेदन करना है।

राम- (अरे, निवेदन नहीं) आज्ञा दो।

सीता - मैं एक बार पुनः गहन वनावलियों में विहार कर पवित्र, स्वच्छ एवं शीतल जल वाली गङ्गा जी में अवगाहन करना चाहती हूँ।

राम - वत्स! लक्ष्मण।

लक्ष्मण- आर्य! यह मैं (सेवा में) उपस्थित हूँ।

राम - वत्स! 'इनकी गर्भावस्था की इच्छा को अविलम्ब पूर्ण करना चाहिये' यह अभी-अभी गुरुजनों ने सन्देश दिया है। अतएव बिना हचक लगने वाला रथ सुसज्जित करो।

सीता- आर्यपुत्र! आप भी आइयेगा।

राम - कठोरहृदये! क्या यह भी कहने की बात है? (तुम्हारे कहें बिना ही में आऊँगा।)

सीता - तब तो मेरे लिए बड़ा प्रिय है।

लक्ष्मण - जो 'आर्य' आज्ञा देते हैं।

(चले जाते हैं)

राम - प्रिये! झरोखे के पास बैठ जाओ।

सीता - ऐसा ही हो (ऐसा ही करती हूँ।) थकावट के कारण मैं निद्रालु हो रही हूँ।

राम - तो यहाँ शयन करने के लिए भली भाँति मेरा सहारा ले लो।

(श्लोकार्थ) (चित्र में शूर्पणखा कबन्ध और अन्य दृश्यों को देखने से) घबराहट तथा (बहुत समय तक बैठे रहने की) थकावट के कारण पसीने की बूँदों से युक्त चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से चूने वाले चन्द्रकान्त-मणि के हार की-सी शोभा वाले एवं मेरे जीवन-दाता-सदृश इस कोमल हाथ को मेरे गले में डालो।।34।।

टिप्पणी -

(1) अवगाहिष्ये - अवगाहन करूँगी। अव + गाह् + लृट् + उ. पु. एक.। (2) **अस्खलितसम्पातम्** - अस्खलितः = अध्याहृतः, सम्पातो गमनं यस्य तम्। (3) **अतिकठिनहृदये**-सीता के कहने पर 'आप भी चलियेगा' राम कहते हैं 'क्या यह भी कहने की बात है?' 'कठोरहृदये' कहा तो हंसी में सीता को गया पर आगामी घटनाचक्र ने सिद्ध कर दिया कि कठोरहृदय कौन था? (4) **वातायनोपकण्ठे** - वातस्य अयनमागमनं यस्मात् तद्वातायनं, तस्योपकण्ठे समीपे। (5) **निरन्तरम्..........शयनायः**-

शयन-दृश्य आलोचकों को खटकने वाली बात है। (6) ''**ऐन्देव... विभ्रमः**'' - ऐन्दवैर्ययूखैः = किरणैश्चुम्बितः = स्पृष्टः, स्यन्दौ यश्चन्द्रमणिहारः = चन्द्रकान्तमणिमाला, तस्य विभ्रमो बिलास इव विभ्रमो यस्मिन् सः। चन्द्रमा की किरणों से जल की बूँद स्रवित करने वाले चन्द्रकान्तमणि के हार के समान बाहु पर पसीने की बूँदें ऐसी लगती है जैसा कि चन्द्रकान्तमणि के हार पर चन्द्रमा के उदय होने पर जल की बूँद झलक जाती है।

(तथा कारयन् सानन्दम्)

प्रिये! किमेतत्?

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा,
प्रमोहो? निद्रा वा? किमु विषविसर्पः? किमु मदः?
तव स्पर्शे-स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो,
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च सम्मीलयति च।।35।।

सीता - धीरप्रसादा यूयम्, इत इदानीं किमपरम्?

अन्वय - (प्रिये!) तव, स्पर्शे-स्पर्शे परिमूढेन्द्रियगणः, विकारः मम, चैतन्यं, भ्रमयति, सम्मीलयति च, सुखम् इति वा, दुःखम् इति वा प्रमोहः निद्रा वा, विषविसर्पः किमु, मदः किमु (इति) विनिश्चेतुं न शक्यः।

अनुवाद -

(वैसा कराते हुए आनन्दपूर्वक प्रिये! यह क्या है)

(श्लोकार्थ) तुम्हारे शरीर के प्रत्येक स्पर्श से मरी समस्त इन्द्रियाँ मोहित सी हो रही है और यह कोई (अज्ञात एवं अनिवर्चनीय) आन्तरिक विकास मेरी चेतना को कभी भ्रान्त और कभी प्रकाशित कर रहा है। मैं यह निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि यह सुख है या दुःख? मोह (नशा है अथवा निद्रा स्वप्न)? विष का प्रभाव है या कोई मद है? तुम्हारे (शरीर के) प्रत्येक स्पर्श में एक (बिजली का सा प्रभाव है जिसके कारण मुझे अपने शरीर का ज्ञान नहीं हो रहा है।)।।35।।

सीता- आपकी मेरे ऊपर अपार अनुकम्पा तथा स्नेह है, इसलिए आपके इस कथन में आश्चर्य ही क्या है?

टिप्पणी -

(1) यह श्लोक भवभूति की अनेक भावों को एक साथ व्यक्त करने की मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की क्षमता की साक्षी दे रहा है। सीता के स्पर्श से राम की मानसिक दशा का कैसा सुन्दर चित्र खींचा गया है। वे कहते हैं कि यह निश्चय ही नहीं हो पा रहा है कि सुख है या दुःख? प्रमोह है या निद्रा? विष का प्रसार भी नहीं है क्योंकि कोई तज्जन्य विकार नहीं है। यह तो विविध भावों का ऐसा सम्मिश्रण है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। (2) **मद** - ''सम्मोहानन्दसम्भेदो मदो मद्योपयोगजः।'' (साहित्यदर्पण) (3) **चैतन्यम्** - चेतनताम्। वीरराघव इसका अर्थ करते हैं - ''चैतन्यमन्तः करणावच्छिन्न-चैतन्यम्। जीवचैतन्यमिति यावत्। अद्वैत-मतप्रक्रिययेदमुक्तम्। मदन्तरात्मानमिति फलितोऽर्थः।'' (4) विसर्प = वि + सृप् + घञ्। (5) यहां सन्देहालङ्कार नहीं अपितु वितर्कमात्र ही है, क्योंकि यह 'प्रतिभोस्थित' नहीं है, फिर भी यदि कुछ लोग इसे 'प्रतिभोत्थित' माने तो सन्देह मान सकते है। शिखरिणीछन्द। **धीरप्रसादा यूयम्....**- इतने दिन बीत जाने पर भी आपका प्रसाद मुझ पर ज्यों का त्यों है, इससे बढ़कर मुझे और क्या चाहिए?

रामः -

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि,
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि!
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि।।36।।

सीता – प्रियंवद! एहि। संविशावः।

(इति शयनाय समन्तोऽपि निरूपयति।)

अन्वय – (हे) सरोरुहाक्षि! एतानि ते सुवचनानि, म्लानस्य, जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि, सकलेन्द्रियमोहनानि, कर्णामृतानि, मनसः, च रसायनानि (सन्ति)।।36।।

अनुवाद –

राम – **श्लोकार्थ** – कमललोचने! तुम्हारे मधुर वचन मुरझाए हुए जीवन-कुसुम को विकसित और तृप्त करने वाले, समस्त इन्द्रियों के मोहकारी कानों के लिये अमृत-तुल्य तथा मन के लिए रसायन के समान (शक्तिप्रद) हैं।।36।।

सीता – मधुरभाषिन्! आइए, विश्राम करें! (ऐसा कहकर सोने के लिये चारों ओर देखती है।)

टिप्पणी –

रसायनानि : आप्यते आनीयतेऽनेनेत्ययनम्। रसस्यायनमिति रसायनम्। प्र. बहुवचन। प्रियंवदा- ''प्रियवशे वदः खच्।'' प्रिय + वट् + खच्।

रामः – अयि! किमन्वेष्टव्यम्?

आविवाहसमयाद् गृहे वने, शैशवे तदनु यौवने पुनः।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया, रामबाहुरुपधानमेष, ते ।।37।।

सीता – (निद्रां नाटयन्ती) (अस्त्येतत्। आर्यपुत्र!) (इति स्वपिति।)

अन्वय – आविवाहसमयात् शैशवे गृहे, तदनु पुनर्यौवने वने स्वापहेतुः, अन्यथा, अनुपाश्रितः एष रामबाहुः, ते उपधानं (अस्ति।)।।37।।

अनुवाद –

राम – अरे! क्या ढूंढ रही हो?

श्लोकार्थ – विवाह के समय से लेकर कुमारावस्था में घर में, तदनन्तर यौवनकाल में, पुनः वन में शयन का प्रधान उपकरण और जिसे कि आज तक तुम्हारे अतिरिक्त किसी दूसरी स्त्री को सेवित करने का सौभाग्य नहीं मिला है, यह राम का हाथ तुम्हार लिए तकिया है।

सीता – (निद्रा का अभिनय करती हुई) ऐसा ही है आर्यपुत्र! ऐसा ही है।

(सो जाती है।)

टिप्पणी–

''अनुपाश्रितोऽन्यया'' राम के इस कथन से उनके एकपत्नीव्रत की सूचना मिलती है। **समयात्**– 'आङ्' के योग में पञ्चमी। **उपधानम्**– उपधीयते शिरः अत्र इति उपधानम् 'उपधानं तूपबर्हम्' इत्यमरः।

रामः – कथं प्रियवचनैव मे वक्षसि प्रसुप्ता? (निर्वर्ण्य। सस्नेहम्)।

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।

अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः,
किमस्या न प्रयो? यदि परमसह्यस्तु विरहः।।38।।

अन्वय- इयं गेहे लक्ष्मीः, इयं नयनयोः अमृतवर्तिः असौ, अस्याः स्पर्शः, वपुषि, बहुलः, चन्दनरसः, अयं, बाहुः, कण्ठे, शिशिरमसृणः, मौक्तिकसरः, अस्याः किं न प्रेयः? तु, विरहः, यदि, (भवेत् तदा सः) परम्, असह्यः (स्यात्)।।38।।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी - देव! उवट्ठिहो। (देव! उपस्थितः।)

रामः - अयि, कः?

प्रतीहारी - आसण्णपरिआरओदेवस्य दुम्मुहो। (आसन्नपरिचारको देवस्य दुर्मुखः!)

रामः - (स्वगतम्।) शुद्धान्तचारी दुर्मुखः, स मया पौरजानपदेष्वपसर्पः प्रहितः (प्रकाशम्) आगच्छतु।

(प्रतीहारी निष्क्रान्ता)

अनुवाद -

राम - क्या प्रियभाषिणी मेरे वक्षस्थल पर ही सो गई? (देखकर स्नेह पूर्वक) -

श्लोकार्थ- यह (सीता) मेरे घर में लक्ष्मी है, आँखों के लिए अमृत की सलाई है, इसका यह स्पर्श शरीर में गाढ़े-गाढ़े चन्दन-रस का लेप ह और (इसकी यह भुजलता कण्ठ में शीतल और स्निग्ध मोतियों के हार के समान है। (अधिक क्या?) इसकी कौन-सी वस्तु प्रिय नहीं है? (अपितु सभी कुछ प्रिय है।) परन्तु इसका विरह सर्वथा असह्य है।।38।।

(प्रवेश कर)

प्रतीहारी - देव! आ गया।

राम - अरी! कौन?

प्रतीहारी - महाराज का निकटवर्ती सेवक 'दुर्मुख'।

राम - (स्वयं ही) अन्तःपुरचारी 'दुर्मुख' है? उसे मैंने गुप्तचर-वेश में नागरिकों एवं देशवासियों में (उनकी मनोवृत्ति जानने के लिए) भेजा था। (प्रकाश में) आने दो।

टिप्पणी -

(1) 'इयं गेहे' इस श्लोक में सभी विशेषण सीताजी के प्रति राम के परम अनुराग को व्यञ्जित करते हैं। सीताजी की प्रत्येक वस्तु उन्हें प्रिय है यदि कोई वस्तु अप्रिय है तो वह उनका विरह है। (2) श्लोक के अन्त में प्रतीहारी तुरन्त 'उपस्थितः' कहकर 'विरह की समीपता' द्योतित करती है। यह पताका स्थानक है।

यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिस्तल्लिङ्गोऽन्यः प्रयुज्यते।

आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत्।।

(3) अपसर्पः अप् + सृप् + घञ्।

(4) उल्लेख, अतिशयोक्ति, रूपक। 'शिखरिणी छन्द।'

(प्रविश्य)

दुर्मुखः - (स्वगतम्) हा कथमिदानीं देवीमन्तरेणे दृशमचिन्तनीय जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि? अथवा नियोगः खलु मम मन्दभागधेयस्यैष।

सीता- (उत्स्वप्रायते।) अज्जउत्त! कहिंसि? (आर्यपुत्र! कुत्रासि?)

रामः- सेयमेव रणरणकदायिनो चित्रदर्शनाद्विरहभावना देव्याः स्वप्रोद्योगं कराति। (सस्नेहमङ्गमस्याः परामृशन्)।

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य -
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र, जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते।।39।।

अन्वय -यत्, सुखदुःखयोः, अद्वैतं, सर्वास्, अवस्थासु, अनुगतं यत्र, हृदयस्य विश्रामः, यस्मिन्, रसः, जरसा, अहार्यः, यत्, कालेन, आवरणात्ययात्, परिणते, प्रेमसारे, स्थितं, तस्य, सुमानुषस्य तत् एकं भद्रं कथमपि हि प्रार्थ्यते।।39।।

(प्रवेशकर)

दुर्मुख (स्वयं ही) हा ! अब मैं कैसे देवी सीता के इस असम्भावनीय जनापवाद को महाराज से निवेदन करूँगा? अथवा, मुझे मन्दभाग्य का यह कर्त्तव्य ही है।

सीता - (स्वप्न देखती हुई बड़बड़ाती है) आर्यपुत्र! (आप) कहाँ है?

राम - यह वही चित्र-दर्शन से घबराहट कराने वाली विरह-भावना, देवी को स्वप्न में भी बड़बड़ा रही है। चित्रदर्शन-कालीन निरह-विचारों के कारण ही यह अब भी वैसी ही बातें कर रही है।) चित्रदर्शन-कालीन निरह-विचारों के कारण ही यह अब भी वैसी ही बातें कर रही हैं।) (स्नेहपूर्वक सीता के अङ्गों को छूते हुए)

श्लोकार्थ - (सच्चा प्रेम) सुख-दुःख और सम्पूर्ण दशाओं (सम्पत्ति विपत्ति) में एक-सा रहता है। हृदय जिसमें अपूर्व विश्राम प्राप्त करता है, वृद्धावस्था में भी जिसमें अनुराग की कमी नहीं होती और जो समय बीत जाने पर (अथवा-विवाह से लेकर मरण-पर्यन्त) सङ्कोच-विकोच आदि आचरणों के हट जाने से प्रगाढ़ एवं उत्कृष्ट प्रेम में स्थिर रहता है- ऐसे कल्याणकारी दाम्पत्य स्नेह की प्राप्ति सौभाग्य से ही किसी-किसी को होती है।39।।

टिप्पणी -

(1) भवभूति पवित्र प्रेम के उपासक है। उनका प्रेम वासना के स्तर से बहुत ऊँचा उठा हुआ है। वे सार्वदिक, एकरस, अविच्छिन्न दाम्पत्य प्रेम में विश्वास रखते हैं। प्रेम का इतना उच्च आदर्श बहुत कम देखने को मिलेगा। यहाँ प्रो. काले का अभिमत है -

What a grand ideal of conjugal love, the poet gives us here? Rama's words are not a effusion of youthful passion untried or inexperienced, but passion tempered down by experience and long association. It is impossible to describe a husband's love and regard for his wife more effectively or natuarlly than the poet has done here."

(2) अद्वैतम् - द्वाभ्याम् भेदाभ्याम् इतम् - प्राप्तं द्वीतम्, द्वीतमेव द्वैतम् (अण्) अविद्यमानं द्वैतं यस्मिन् तदद्वैतम् समानम्। सच्चा प्रेम सुख-दुःख में समान रहता है। वह सभी अवस्थाओं में समान

रहता है। 'अद्वैत' को 'भद्रं' के साथ भी रखा जा सकता है – ''सुमानुषस्य एकं भद्रम् अद्वैतं कथमपि प्राप्तये।''

विश्रामो हृदयस्य – हृदय को उसमें शान्ति मिलती है।

अहार्यो रसः – समय के प्रभाव से उनका रस क्षीण नहीं होता।

आवरणात्ययात्...स्थितम् – के दो अर्थ है – (1) जो प्रेम समय बीतने पर लज्जा आदि के हट जाने से परिपक्वावस्था को प्राप्त होता है 'यत् दाम्पत्यम् आवरणस्य लज्जादेः, कालेन, अत्ययात् = विनाशात् प्रेमसारे स्थितम्।' (2) जो विवाह से मृत्युपर्यन्त परिपक्वावस्था में रहता है। 'वरणं= विवाहः, अत्ययः = मृत्यश्चेति वरणात्ययं, आवरणात्ययात् = विवाहदिनादारभ्य मरणं यावत् परिणते प्रेमसारे स्थितम्।'

दुर्मुखः – जयतु देवः।

रामः – ब्रूहि यदुपलब्धम्।

दुर्मुखः – उपस्तुवन्ति देवं पौरजानपदाः, यथा विस्मारिता वयं महाराजदशरथस्य रामदेवेनेति।

रामः – अर्थवाद एवैषः। दाषं तु मे कथंचित्कथय, येन प्रतिविधीयते।

दुर्मुखः – कर्णे एव्वं विअ। इति। शृणोतु महाराजः। एवमिव।

रामः – अहह, अतितीव्रोऽयं वाग्वज्रः (इति मूर्च्छति।)

दुर्मुखः – आस्ससदु देव्वो। (आश्वसितु देवः।)

रामः – आश्वस्य।

हा हा धिक्! परगृहवासदूषणं यद्,
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाका-
दोलार्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम्।।40।।

तत्किमद्य मन्दभाग्यः करोमि?

अन्वय – हा, हा धिक्! वैदेह्याः, यत् परगृहवासदूषणम्, अद्भुतैः, उपायैः, प्रशमितम् दैवदुर्विपाकात्, तत्, एतत्, पुनरपि, आलर्कं, विषमिव, सर्वतः, प्रसक्तम्।।40।।

अनुवाद –

दुर्मुख – (पास जाकर) महाराज की जय हो!

राम – जो समाचार हो, बताओ।

दुर्मुख – नागरिक एवं देशवासी जन सब आपकी प्रशंसा करते हैं कि ''श्री रामचन्द्र जी ने महाराज दशरथ को अपने सद्गुणों के कारण हमारे मन से भुला दिया है।

राम – यह तो प्रशंसा ही है। मेरा कोई दोष हो तो कहो, जिसको कि उसका प्रतिविधान किया जा सके।

दुर्मुख – (आँखों से आँसू भर कर) महाराज! सुनिये! (कान में) ऐसा... ऐसा....।

राम – ओह! यह वचन वज्र सम अत्यन्त असह्य है!

(मूर्छित हो जाते हैं।)

दुर्मुख – महाराज! धैर्य रखिये।

राम – (प्रकृतिस्थ होकर) –

श्लोकार्थ - 'हा! हा!' धिक्कार है। सीता के दूसरे (रावण) के घर में निवास करने का जो दोष (अग्नि-शुद्धि जैसे) बड़े आश्चर्यजनक उपायों द्वारा दूर किया गया था, आज दुर्भाग्यवश वहीं (दोष) पागल कुत्ते के काटे हुए विष की भाँति चारों ओर फैल गया है।

तो मं ओर फैल गया है।

टिप्पणी -

(1) अर्थवादः- प्रशंसा। 'अर्थवादः प्रशंसा च स्तोत्रमीडा स्तुतिर्नुतिः' (हलायुध कोष)। वैसे यह मीमांसा का पारिभाषिक शब्द है। ''प्राशस्त्यनिन्दान्यतरपरं वाक्यमर्थवादः (अर्थसंग्रह)। अर्थवाद के तीन भेद होते हैं -

''गुणवादो विरोधे स्- यादनुवादोऽवधारिते।
भूतार्थवादस्तद्हानावर्थवादस्त्रिधा मतः।।''

भगवान् राम अपनी प्रशंसा नहीं, यथार्थ आलोचना सुनना चाहते हैं। यह उनके चरित्र की अनुपम उदारता है।

(2) अलर्कम् - अलर्कम् - अलर्कस्येदम् आलर्कम्। अलर्क + अण्। आलर्कं विषमिव= पागल कुत्ते के काटने से फैले हुए विष के समान।

''शुनको भषकः श्वा स्यादलर्कस्तु सरोगितः।''(अमरकोष)

(4) 'वाग्वज्र' से आहत राम की दशा का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया गया है।

(5) यहाँ उपमालङ्कार तथा प्रहर्षिणी छन्द है।

विमृश्य सकरुणम्। अथवा किमेतत्?
सतां केनापि कार्येण, लोकस्याराधनं व्रतम्।
तत्प्रतीतं हि तातेन, मां च प्राणांश्च मुञ्चता।।41।।
संप्रत्येव च भगवता वसिष्ठेन संदिष्टम्।

अन्वय - केनापि, कार्येण, लोकस्य, आराधनं, सतां, परम् (व्रतम्) मां, च, प्राणांश्च, मुञ्चता, तातेन, तत्, प्रतीतम्।।41।।

अनुवाद -

(सोचकर करुणापूर्वक) अथवा, इस सोच-विचार से क्या लाभ?

श्लोकार्थ - किसी भी प्रकार से लोकाराधन करना श्रेष्ठ व्यक्तियों का कर्तव्य है। पिताजी ने मुझे और प्राणों को छोड़ते हुए इसी बात को सिद्ध किया है। वन जाने की आज्ञा देने में पूज्य पिताजी को अपने प्राण त्याग करके पड़े मैं भी प्राण-पण से उनके समान ही प्रजा को प्रसन्न करूंगा।

(और) अभी-अभी भगवान् वसिष्ठ ने भी सन्देश दिया है।

अपि च -

यस्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालै-
र्लोकश्रेष्ठैः साधु चित्रं चरित्रम्।
मत्सम्बबन्धात्कश्मला किंवदन्ती,
स्याच्चेदस्मिन्हन्त! धिङ् मामधन्यम्।।42।।

अन्वय - लोकश्रेष्ठैः, सावित्रैः, भूमिपालैः, यत्, चित्रं, चरित्रम्, साधु, दीपितम्, अस्मिन्, मत्सम्बन्धात्, कश्मला, किंवदन्ती स्यातः, चेत् हन्त! अधन्यं, मां, धिक्।।42।।

अनुवाद –

श्लोकार्थ – और भी जगत्प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजाओं ने जिस चरित्र को भली-भाँति उज्ज्वल किया है, यदि उसमें मेरे कारण निन्दनीय लग जाये तो मुझे भाग्यहीन को धिक्कार है।

टिप्पणी –

(1) सावित्रैः = सवितृ + अण्। सवितुरपत्यानि पुमांसः सावित्रास्तै। सूर्यवंशियों क द्वारा। (2) **लोकश्रेष्ठैः** लोकेषु अतिशयेन प्रशस्याः। प्रशस्य + इष्ठन्। 'प्रशस्य' को ''प्रशस्यस्य श्रः'' इससे 'श्र' आदेश होकर 'श्रेष्ठ' बनता है। (3) **विषमालङ्कार।** शालिनी छन्द।

हा देवि देवयजनसंभवे! हा स्वजन्मानुग्रहपवित्रवसुन्धरे! हा मुनिजनकनन्दिनी! हा पावक-वसिष्ठारुन्धतीप्रशस्तशीलशालिनि! हा राममयजीविते! हा महारण्यवासप्रियसखि! हा तातप्रिये! हा स्तोकवादिनी! कथमेवंविधायास्तवायमीदृशः परिणामः?

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः।

नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे।।43।।

अन्वय – त्वया, जगन्ति पुण्यानि, (सन्ति) त्वयि अपुण्याः, जनोक्तयः सन्ति त्वया लोकाः, नाथवन्तः (सन्ति परन्तु) त्वम्, अनाथा, विपत्स्यसे।।43।।

हिन्दी –

हा, देवि, पृथ्वीपुत्रि! हा, अपने जन्म के अनुग्रह से जगत् को पवित्र करने वाली! हा, विदेहानन्दकारिणी! हा, अग्नि, वसिष्ठ और अरुन्धती के द्वारा प्रशंसनीय चरित्र वाली! हा, राममयजीवने! हा, भयङ्कर वनवास की सहाचारिणी। हा, पिताजी की प्रिय। हा, स्वल्पभाषणशीले। ऐसी होने पर भी तुम्हारा ऐसा परिणाम!

श्लोकार्थ – तुमसे संसार पवित्र है, परन्तु तुम्हारे विषय में लोगों के (ऐसे) दूषित विचार हैं। तुमसे लोक सनाथ हैं, परन्तु तुम अनाथ की भाँति मृत्यु को प्राप्त रही हो।।43।।

(1) देवयजनसम्भवे! देवा इज्यन्तेऽत्रेति देवयजनं=यज्ञभूमिः, देवयजनात् सम्भवो यस्या सा, तत्सम्बुद्धौ। यज्ञभूमि से उत्पन्न। इससे सीताजी की परम पवित्रता व्यक्त होती है। (2) स्वजन्मानुग्रहपवित्रितवसुन्धरे! इससे 'तुम्हारा जन्म पृथ्वी के कल्याण के लिए ही हुआ है' यह अर्थ अभिव्यक्त हाता है। (3) **मुनिजनकनन्दिनि!** – वैराग्ययुक्त जनक को भी आनन्दित करने वाली होने से परम पवित्रता तथा दिव्यता व्यञ्जित होती है। (4) **हा पावकवसिष्ठारुन्धतीप्रशस्तशीलशालिनी!** इससे भी उत्तमचरित्रता व्यञ्जित होती है। (5) **राममयजीविते!** राम के बिना कैसे रह सकोगी यह अर्थ व्यञ्जित होता है। **(6) महारण्यप्रवासप्रियसखि!** सुख-दुःख में अभिन्न सङ्गिनी। ''सखा प्राणसमो मतः'' के अनुसार यहाँ 'सखी' शब्द का प्रयोग किया गया है। आशय यह है कि उस महारण्य में तो तुम्हारे साथ मेरा समय कट गया था, परन्तु अब तो यह राजभवन तुम्हारे बिना महावन से भी भयानक हो जायगा। यहाँ मेरा साथ कौन देगी? (7) **तातप्रिये!** परलोक के पूज्य पिताजी क्या कहेंगे? (8) **स्तोकवादिनी!** बहुत कम बोलने वाली! अपने ऊपर किये गये अत्याचार को भी तुम चुपचाप सह जाओगी। इस एक विशेषण में ही सीता के सम्पूर्ण साधनामय जीवन की झाँकी मिल रही है।

(दुर्मुखं प्रति) दुर्मुख! ब्रूहि लक्ष्मणम्। एष नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति। (कर्णे) एवमेवम्। इति।

दुर्मुखः – हा, कथमग्निपरिशुद्धायाः गर्भस्थित पवित्रसंतानायाः, देव्या दुर्जनवचनादिदं व्यवसितं देवेन?

रामः – शान्तं पापम्, शान्तं पापम्। दुर्जना नाम् पौरजानपदाः?

इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां, जातं च दैवाद्वचनीयबीजम्।
यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले, प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवृत्तम्।।44।।

अन्वय - इक्ष्वाकुवंशः प्रजानाम्, अभिमतः, दैवात्, वचनीयबीजं, च, जातम्, विशुद्धिकाले यच्च, अद्भुतं, कर्म, तत्, यदि, दूरवृत्तं कः, प्रत्येतु? ।।44।।

दुर्मुखः- हा देवि! (इति निष्क्रान्तः)।

अनुवाद -

(दर्मुख से) दुर्मुख। लक्ष्मण से कहो कि 'नया राजा' राम आदेश देता है कि (कान में) ऐसे ऐसे....।

दुर्मुख - हा, क्या अग्नि-परीक्षा से शुद्ध तथा गर्भ में पवित्र सन्तान धारण करने वाली देवी (सीता) के लिए दुर्जनों के कहने से (ही) आपने ऐसा निश्चय कर लिया?

राम - शान्त! शान्त! क्या नागरिक और देशवासी दुर्जन हो सकते हैं?

श्लोकार्थ - इक्ष्वाकुवंश (सदा से) प्रजाओं को प्रिय रहा है परन्तु आज दुर्भाग्यवश उसमें निन्दा का एक कारण उत्पन्न हो गया है (तो हम प्रजाओं को दोष क्यों दे?) आर अग्नि परीक्षा के समय जो आश्चर्यजनक कार्य हुआ था, उसका दूर होने के कारण, कौन विश्वास करें?

दुर्मुख - हा देवि! (चला जाता है।)

रामः- हा कष्टम्! अतिबीभत्सकर्मा नृशंसोऽस्मि संवृत्तः।

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां, सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम्।
छद्मना परिददामि मृत्यवे, शौनिके गृहशकुन्तिकामिव।।45।।

अन्वय - शैशवात्, प्रभृति, पोषितां, सौहृदादपृथगाश्रयाम् इमां, प्रियां, शौनिके, गृहशकुन्तिकाम्, इव, छद्मना, मृत्यवे, परिददामि।।44।।

हिन्दी -

रामः - हाय, दुःख है! मैं अत्यन्त घृणित कर्म करने वाला तथा निर्दय (कसाई) हो गया हूँ।

(श्लोकार्थ) - जैसे कोई कसाई बचपन से पाली हुई, साथ रहने वाली घरेलू चिड़िया को मौत को सौंप देता है - उसी प्रकार मैं भी बचपन से पाली हुई, विश्वस्त भाव से अभिन्न सहचारिणी इस प्राणप्रिया को (गङ्गा-स्नान के) छल से मृत्यु को दे रहा हूँ।।45।।

टिप्पणी -

(1) बीभत्सकर्मा = घृणितकर्मा। (√ बध् वैरूप्ये)(भ्वादि) + सन् (2) **नृशंसः** = नृन् शंसति = हन्ति इति। नृ + √ शंस + अन्। (3) **सौहृदात्** = सुहृदय = अण् 'हायनान्तयुवादिभ्योऽण्'। हृदय को 'हृद्' आदेश - 'हृल्लेखयदणलासेषु'। आदिवृद्धिः - तद्धितेष्वचामादेः (4) **शौनिकः** - सूना + ठक्। सूना वधस्थानं, तेने दीव्यति व्यवहरतीति शौनिकः। 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' इति ठक् 'किति च' इत्यादिवृद्धिः (5) **शकुन्तिका** - अनुकम्पा के अर्थ में ''अनुकम्पायाम्'' इस नियम के अनुसार 'कन्' प्रत्यय। शकुन्त + कन् (स्त्री.)

(8) यहाँ उपमालङ्कार एवं रथोद्धता छन्द का प्रयोग है।

तत्किमस्पृश्यः पातकी देवीं दूषयामि? (इति सीतायाः शिरः सुप्तमुन्नमय्य बाहुमाकृष्य।)

अपर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे! विमुञ्च माम्।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या, दुर्विपाकं विषद्रुमम्।।46।।

(उत्थाय) हन्त हन्त, संप्रति विपर्यस्तो जीवलोकः। अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य। शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। असारः संसारः। काष्ठप्रायं शरीरम्। अशरणोऽस्मि। किं करोमि? का गतिः?

अनुवाद –

इसलिए पापी मैं छूकर देवी को क्यों अपवित्र करूँ? (धीरे से सीता का सिर उठा कर, हाथ खींचकर) –

श्लोकार्थ– अयि भोली–भाली सीते! बड़ा निन्दित कर्म करने के कारण चाण्डाल बने हुए मुझको छोड़ो। तुम चन्दन के धोखे से परिणाम में भयङ्कर विषवृक्ष का आश्रय ग्रहण कर रही हो।।46।।

(उठकर) हाय! हाय! अब संसार बदल गया। आज राम के जीवन का प्रयाजन समाप्त हो गया। (मेरे लिए) अब जीवलोक सुनसार–बियाबान जङ्गल के समान है। संसार निस्सार लग रहा है। शरीर चेतना–हीन सा हो रहा है। मुझे कहीं शरण नहीं है। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? क्या उपाय है?

टिप्पणी –

(1) कर्मचण्डाल – चाण्डाल दो प्रकार के होते हैं। एक जन्म–चाण्डाल दूसरे कर्मचाण्डाल। राम–परित्याग रूपी नृशंस कर्म करने का विचार कर रहे हैं, इसलिए उन्होंने अपने लिए 'कर्मचाण्डाल' शब्द का प्रयोग किया है। वसिष्ठ ने चार प्रकार के कर्मचाण्डाल बतलाये हैं –

''असूयकः पिशुनश्च, कृतघ्नो दीर्घरोषकः।
चत्वारः कर्मचाण्डालाः, जन्मश्चापि पञ्चमः।।''

(2) **अस्पर्शनीयः**– स्पृश + अनीयर्। स्वैरम् – स्व + √ईर् + घञ्। दुर्विपाकम् – दुर् + वि + √पच् + घञ्। **विपर्यस्त** – वि + परि + √अस् + क्त। **अवसितम्** – अव + √सो + क्त। **असारः**– अ + √सृ + घञ्। **संसारः**– सम् + √सृ + धञ्। संसरन्त्यस्मिन्निति संसारः।

(3) राम की मानसिक स्थिति का बहुत सुन्दर चित्रण इन पंक्तियों में हुआ है।

अथवा –

दुःखसंवेदनायैव, रामे चैतन्यमागतम्।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि।।47।।

हा अम्ब अरुन्धती! भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ ! भगवन् पावक! हा देवि भूतधात्रि! हा तातजनक! हा मातः! हा प्रिय सुख महाराज सुग्रीव! सौम्य हनूमन्! महोपकारिन् लङ्काधिपते विभीषण! हा सखि त्रिजटे! परिमुषिताः स्थ परिभूताः स्थ राम हतकेन!

अन्वय – दुःखसंवेदनाय, एवं, रामे, चैतन्यं, आगतम्, मर्मोपघातिभिः, प्राणैः हृदि वज्रकीलायितम्।।47।।

अनुवाद –

श्लोकार्थ– दुःखों का अनुभव करने के लिए राम का जन्म हुआ है। मर्मस्थलों पर आघात पहुँचाने वाले प्राण इस समय हृदय में गड़ी हुई व्रज की कील के समान लग रहे हैं।

हा! माता अरुन्धती! पूज्य वसिष्ठ और विश्वामित्र जी! भगवान् अग्निदेव! हा! देवि वसुन्धरे! हा! पिता जनक जी! हा! माता जी! हा! परम सुहृद महाराज सुग्रीव। प्रिय हनुमान्! उपकार–परायण लङ्काधिराज विभीषण! हा! त्रिजटे! आप सब लोग राम से वञ्चित एवं तिरस्कृत हो गये हैं।

टिप्पणी –

(1) संवेदनम् – सम् + √ विद् + ल्युट्। (2) **मर्मोपघातिभिः** – मर्माणि उपघ्नन्ति ये, तैः। मर्मन् + उप + √ हन् + णिनि (म्रियते यस्मिन्नाहते इति मर्म इति व्युत्पत्तिः) (3) **वज्रकीलायितम्**– वज्रकील + क्यङ् (नामधातु) + क्त। वज्रकीलमिवाचरितम्।

अथवा   को नाम तेषामहमिदानीमाह्वाने?

ते हि मन्ये महात्मानः,   कृतघ्नेन   दुरात्मना।
मया गृहीतनामानः, स्पृश्यन्त इव पाप्मना।।48।।

अन्वय – कृतघ्नेन, दुरात्मना, मया, गृहीतनामानः, ते महात्मानः, पाप्मना, स्पृश्यन्त, इव (इति) मन्ये, हि ।।48।।

अनुवाद –

श्लोकार्थ – मुझे तो ऐसा लग रहा है कि मानो वे महानुभाव मुझ कृतघ्न तथा पापी के द्वारा नाम लिये जाने पर पाप-युक्त से हो रहे हैं। यानी मुझ पापी के स्मरण करने मात्र से ही उनकी पवित्रात्मा कलङ्कित-सी होती प्रतीत हो रही है। अतः उन महानुभावों का आह्वान करने का मुझे क्या अधिकार है?।।48।।

योऽहम् –

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातिनिद्रा-
मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य लक्ष्मीम्!
आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं,
क्रव्याद्भ्यो बलिमिव दारुणः क्षिपामि।।49।।

(सीतायाः पादौ शिरसि कृत्वा।) अयं पश्चिमस्ते पादपङ्कजस्पर्शः (इति रोदिति।)

अन्वय – विस्रम्भात्, उरसि, निपत्य, जातनिद्रां, आतङ्कस्फरितकठोरगर्भगुर्वी गृहस्य, लक्ष्मीं प्रियगृहिणीं, दारुणः (सन्) उन्मुच्य, क्रव्याद्भ्यः, बलि, इव क्षिपामि।।49।।

अनुवाद –

जो मैं –

श्लोकार्थ – विश्वासपूर्वक छाती पर लेटी हुई (चित्रदर्शन के) समय से फड़कने वाले गर्भ से मन्थर, इस घर की लक्ष्मी प्रिय पत्नी की नृशंस होकर मांसाहारी हिंस्र जीवों-जन्तुओं में बलि की भाँति फेंक रहा हूँ। इससे अधिक और क्या क्रूरता हो सकती है कि अपने पर अडिग विश्वास रखने वाली, गुणवती एवं गर्भिणी पत्नी को मैं मांस खाने वाले जीवों के सामने बलि के टुकड़ों की भाँति फेंक रहा हूँ।।49।।

(सीता के पैरों में सिर रखकर) राम के सिर में तुम्हारे चरण-कमलों का यह अन्तिम स्पर्श है।

टिप्पणी –

(1) आतंकस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीम्– आतङ्केन स्फुरितः कठोरो यो गर्भस्तेन गुर्वीम्।

(2) क्रव्याद्भ्यः – क्रव्यमाममांसमदन्तीति क्रव्यादाः श्वापदा व्याघ्रादयः। 'क्रव्यादममांसभक्षकाः।' क्रव्य +अद् + विट्- ''क्रव्ये च।'' चतुर्थी सम्प्रदाने।

(3) बलि –   ''बलिर्दैत्यप्रभेदे च करे चामरदण्डयोः।

उपहारे पुमान् स्त्री तु जरया श्लथचर्मणि।

गृहदारुप्रभेदे च, जठरावयवेऽपि च।।''

(मेदिनीकोष)

(4) पश्चिमः - पश्चाद् भवः पश्चिमः। पश्चात् + डिमच् अन्तिम।

(5) उपमालङ्कार। प्रहर्षिणी छन्द का प्रयोग।

(नेपथ्ये)

अब्रह्मण्यम्, अब्रह्मण्यम्!

रामः- ज्ञायतां भोः! किमेतत्?

(पुनर्नेपथ्ये।)

ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम्।
लवणत्रासितः स्तोमस्त्रातारं त्वामुपस्थितः।।50।।

अनुवाद -

(नेपथ्य में)

अमङ्गल! अमङ्गल! ब्राह्मणों पर विपत्ति! ब्राह्मणों को भय!

राम - अरे, पता लगाओ, यह क्या बात है?

(पुनः नेपथ्य में)

श्लोकार्थ - यमुना-तीर-निवासी महातपस्वी ऋषियों का समूह 'लवण' राक्षस से भयभीत होकर रक्षा करने वाले आपके पास आया है।।50।।

टिप्पणी -

(1) नेपथ्य - जहाँ नट वेश-परिवर्तन करते हैं, उसे 'नेपथ्य' कहते हैं। 'नेपथ्यं तु प्रसाधने। रङ्गभूमौ वेषभेदे' इति हेमः। **(2) अब्रह्मण्यम्** - न ब्रह्मण्यम् इति अब्रह्मण्यम्। ब्रह्मन्=यत्। ब्रह्मभ्यो हितं ब्रह्मण्यम्, न ब्रह्मण्यम्, इत्यब्रह्मण्यम्। 'अब्रह्मण्यमवध्योक्तौ' इत्यमरः। 'अब्रह्मण्यम्' का अर्थ तो 'वैसे ब्राह्मणों पर विपत्ति' है, परन्तु यह विपत्ति से बचने के लिए 'पुकार' के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है।

रामः - कथमद्यापि राक्षसत्रासः? तद्यावदस्य दुरात्मनो माधुरस्य कुम्भीनसीकुमारस्योन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि। (परिक्रम्य पुनर्निवृत्य।) हा देवि! कथमेवविधा गमिष्यसि? भगवति वसुन्धरे! सुश्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्।

जनकानां रघूणां च, यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्।
यां देवयजने पुण्ये, पुण्यशीलामजीजनः।। 51।।

(इति रुदन्निष्क्रान्तः)

राम - क्या अब भी राक्षसों का भय है? तो मैं 'कुम्भीनसी-पुत्र' दुष्ट मधुरेश्वर (लवण) का उन्मूलन करने के लिए शत्रुघ्न को भेजता हूँ। (घूमकर तथा पुनः लौटकर) भगवति वसुन्धरे! अपनी प्रशंसनीय पुत्री जानकी का ध्यान रखना -

श्लोकार्थ - जो 'जनक' और 'रघु' - (दोनों) वंशों के समस्त मङ्गल का प्रतीक है, और जिस पुण्यशालिनी को यज्ञ के पवित्र स्थान में तुमने उत्पन्न किया था।।51।।

टिप्पणी -

(1) कुम्भीनसी - कुम्भीव नासिका यस्याः। ''पद्दन्नोमासहृन्निशसन्यूषन्दोषन्कञ्छ-कन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु'' (6। 1। 63 पा.) इति सूत्रेण नसादेशः, स्त्रियां ङीप् च निपात्यते। (2)

गोत्रमङ्गलम् – आशय यह है कि सीता रघु और जनक दोनों के कल्याण की पतिनिधि है। उनसे दोनों वंशों का यश सुरक्षित है।

सीता – हा सौम्य आर्यपुत्र! कुत्रासि? हा धिक्? हा धिक्? दुःस्वप्नरणरणकविप्रलब्धा आर्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि। ....हा धिक्! हा धिक्! एकाकिनीं प्रसूतां मामुज्झित्वा कुत्र गतो नाथः? भवतु। अस्मै कोपिष्यामि, यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मनः प्रभविष्यामि। कोऽत्रपरिजनः?

(प्रविश्य)

दुर्मुखः – देवि! कुमारलक्ष्मणो विज्ञापयति – सज्जो रथः। तदारोहतु देवी इति।

सीता – इयमारूढास्मि। स्फुरति मे गर्भभारः। शनैर्गच्छामः।

दुर्मुखः– इत इतो देवि।

सीता – नमो रघुकुलदेवतानाम्।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते उत्तररामचरितोचित्रदर्शनो नाम प्रथमोऽङ्कः

अनुवाद –

सीता – हा! प्रिय आर्यपुत्र! आप कहाँ है? (सहसा उठ कर) हाय! हाय! इस (विरहमूलक) दुःस्वप्न की उत्कण्ठा (घबराहट) से खिन्न होकर मैं अपने को 'आर्यपुत्र' से विरहित-सी देख रही हूँ। (देखकर) धिक्! धिक्! मुझे अकेली सोती छोड़कर प्राणनाथ कहाँ चले गये? अस्तु, यदि मैं अपने घर नियन्त्रण रख सकी तो (यदि उनको देखकर मेरा क्रोध शान्त न हो गया तो) मैं उनसे क्रोध करूँगी। यहाँ कौन सेवक है?

(प्रवेश कर)

दुर्मुख – देवी! कुमार लक्ष्मण निवेदन करते हैं कि – ''रथ सुसज्जित है अतः आप आरोहण कीजिये।''

सीता – अभी सवार होती हूँ। (उठकर तथा घूमकर) मेरा गर्भ फड़क रहा है, अतः धीरे-धीरे चलते हैं।

दुर्मुख – महारानी जी! इधर से, इधर से।

सीता – रघुकुल के देवताओं को मेरा प्रणाम है। (सब चले जाते हं।)

महाकवि श्रीभवभूति विरचित 'उत्तररामचरित' में 'चित्रदर्शन' नामक प्रथम अङ्क समाप्त।

2.3 महाकवि श्रीभवभूतिप्रणीतम् उत्तररामचरितम् द्वितीयोऽङ्कः

(नेपथ्ये)

स्वागतं तपोधनायाः।

तापसी जी का शुभागमन हो।

ततः प्रविशत्यध्वगवेषा तापसी।

तदनन्तर पथिक के वेश में तापसो (आत्रेयी) प्रवेश करती है।

तापसी – अये, वनदेवता फलकुसुमगर्भेण पल्लवार्घ्येण दूरान्मामुपतिष्ठते।

अनुवाद–तापसी–अरे! वनदेवता तो दूर ही से फल, पुष्प और पल्लव युक्त अर्घ्य द्वारा मेरी पूजा कर रही हैं।

(प्रविश्य) (प्रवेश करके)

वनदेवता–(अर्घ्यं विकीर्य)

वनदेवता – (अर्घ्य देकर)

यथेच्छाभोग्यं वो वनमिदमयं मे सुदिवसः
सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति।
तरुच्छाया तोयं यदपि तपसां योग्यमशनं
फलं वा मूलं वा तदपि न पराधीनमिह वः ॥1 ॥

अन्वय–इदं वनं वः यथेच्छाभोग्यम्, अयं मे सुदिवसः, हि सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि पुण्येन भवति। तरुच्छाया, तोयं, यदपि तपसां योग्यम् अशनं–फलं वा मूलं वा, तदपि इह वः पराधीनं न ॥1 ॥

अनुवाद–यह वन आपके यथेच्छ उपभोग करने योग्य है। यह आज मेरा शुभ दिन है। क्योंकि सत्पुरुषों से सत्पुरुषों का मिलन बहुत पुण्य से होता है। वृक्ष की छाया, जल और जो कुछ भी तपस्या के उपयुक्त भोजन–फल अथवा कंद होता है, वह यहाँ आपके लिए पराधीन नहीं है अर्थात् ये चीजें आपको इच्छानुसार मिलेंगी ॥1 ॥

टिप्पणी–यथेच्छाभोग्यम् = इच्छानुसार भोगने योग्य। इच्छाम् अनतिक्रम्य यथेच्छम्। यथार्थ में अव्ययीभाव समास, समन्तात् भोग्यम् अभोग्यं यथेच्छम् आभोग्यम् यथेच्छाभोग्यं सुप्सुपा से समास। इस श्लोक में सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यहाँ शिखरिणी छंद का प्रयोग है ॥1 ॥

तापसी–किमत्रोच्यते?

तापसी–यहाँ (इस विषय में) क्या कहना?

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥2 ॥

अन्वय – साधूनां वृत्तिः प्रियप्राया, वाचि नियमः विनयमधुरः मतिः प्रकृत्या कल्याणी, परिचयः अनवगीतः, तत् इदं पुरो वा पश्चाद्वा अविपर्यासितरसम् अनुपधि विशुद्धं रहस्यं विजयते ॥2 ॥

अनुवाद – सत्पुरुषों का व्यवहार अतिशय आह्लादकारक होता है, उनकी वाणी का संयम विनय के साथ मधुर होता है, बुद्धि स्वभाव से ही मंगलकारिणी होती है, परिचय दोषरहित होता है, मिलन पहले या पीछे अनुराग का उल्लंघन न करने वाला, निश्छल एवं पवित्र होता है और इस प्रकार उनका चरित्र सर्वोत्कृष्ट होता है ॥2 ॥

टिप्पणी– प्रकृत्या = स्वभाव से। इसमें 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इस वार्तिक से तृतीया हुई। परिचयः –परि चि अच् कर्मणि। इसका पर्यायवाची शब्द संस्तव है। 'संस्तवः सयात् परिचयः' इत्यमरः। पुरः–पूर्वस्मिन् काले इति पूर्व + ङि (सप्तमी) + असि पुर् आदेश। पश्चात्–अपरस्मिन् काले इति अपर + ङि (सप्तमी) + अति पश्चभाव। पुरस् और पश्चात् ये दोनों शब्द अव्यय हैं। अविपर्यासितरसम्–वि–परि अस् + घञ् भावे = विपर्यास = परिवर्तन, विपर्यासं गमित इति विपर्यास + णिच् (नामधातु) + क्त कर्मणि = विपर्यासितः न विपर्यासितः तादृशो रसो यस्मिन् तत्। अनुपधि–उप धा + कि कर्मणि = उपधि = छल, अविद्यमानः उपधिः यस्मिन् तत्। विजयते–'विपराभ्यां जेः' इत्यात्मनेपदत्वम्। इस श्लोक में अप्रस्तुत सामान्य सच्चरित्र के प्रतिपादन से प्रस्तुत वनदेवता के चरित्र की विशेषता प्रतीत होती है। अतः

अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है और चरित्रोत्कर्ष के प्रति 'प्रियप्राया वृत्ति:' इत्यादि अनेक कारणों का उल्लेख होने से समुच्चय अलंकार भी है। फिर इन दोनों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने के कारण संकर अलंकार हो जाता है। यहाँ शिखरिणी छंद का प्रयोग तथा अप्रस्तुतप्रशंसाकाव्यलिंग और व्यतिरेक अलंकार है ॥2 ॥

(उपविशतः ।) (इसके बाद दोनों बैठ जाती हैं।)

वनदेवता – कां पुनरत्रभवतीमगवच्छामि?

वनदेवता – मैं आपको क्या समझूँ अर्थात् आपका शुभ नाम क्या है?

तापसी – आत्रेय्यस्मि।

तापसी – मैं आत्रेयी हूँ।

टिप्पणी – आत्रेयी = ब्राह्मण की तरह सकल संस्कारों से सम्पन्न कोई ब्राह्मण जाति की स्त्री। अत्रेः अपत्यं स्त्री आत्रेयी, अत्रि शब्द से 'इतश्चानिञः' सूत्र से ढक् प्रत्यय और टिड्ढाणञ्–' सूत्र से ङीप् प्रत्यय हुआ।

वनदेवता – आर्ये आत्रेयि! कुतः पुनरिहागम्यतं? किं प्रयोजनो दण्डकारण्योपवनप्रचारः?

वनदेवता – हे आर्ये आत्रेयि! आप यहाँ कहाँ से आ रही हैं? दण्डकारण्य के उपवन में घूमने का क्या उद्देश्य है?

टिप्पणी – प्रचार = प्रचर् + घञ्।

आत्रेयी–

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि ॥3 ॥

अन्वय – अस्मिन् प्रदेशे अगस्त्यप्रमुखाः भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति। तेभ्यो निगमान्तविद्याम् अधिगन्तुम् इह वाल्मीकिपार्श्वात् पर्यटामि ॥3 ॥

अनुवाद – आत्रेयी–इस प्रदेश में अगस्त्य आदि अनेक ब्रह्मवेत्ता ऋषि निवास करते हैं। उनसे वेदान्त का अध्ययन करने के लिए यहाँ वाल्मीकि मुनि के पास से आ रही हूँ ॥3 ॥

टिप्पणी – उद्गीथविदः = ओम् इस एकाक्षर ब्रह्म या सामवेद के ज्ञाता। 'ओमित्येकाक्षरमुद्गीथ-मुपासीत' इति छान्दोग्योपनिषत्। उच्चैर्गीयते इति उद् गै + थक् कर्मणिभावे वा = उद्गीथः तं विदन्ति इति उद्गीथ– विद् + क्विप् कर्तरि। तेभ्यः–इसमें 'आख्यातोपयोगे' सूत्र से पंचमी हुई है। यद्यपि 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्' इस वचन के अनुसार आत्रेयी का वेदाध्ययन असंगत प्रतीत होता है, किन्तु पूर्व कल्प में स्त्रियाँ दो प्रकार की होती थीं। एक ब्रह्मवादिनी और दूसरी गृहमेधिनी। उनमें ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का उपनयनसंस्कार और वेदाध्ययन भी होता था। यथा–'पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते। अध्यापनञ्च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा।' अतएव उपर्युक्त वचन गृहस्थ स्त्रियों के लिए वेदाध्ययन का निषेधक है, ऐसा समझना चाहिए। निगमान्तविद्याम् –नितरां गम्यते बुध्यते परतत्त्वम् अनेन इति नि गम् + अप् करणे = निगमः = वेद, तस्य अन्तः निगमान्तः, तस्य विद्या निगमान्तविद्या = वेदान्तविद्या। यहाँ इन्द्रव्रजा छंद है ॥3 ॥

वनदेवता – यदा तावदन्येऽपि मुनयस्तमेव हि पुराणब्रह्मवादिनं प्राचेतसमृषिं ब्रह्मपारायणायोपासते, तत्कोऽयमार्यायाः प्रवासः?

अनुवाद– वनदेवता – जब अन्य मुनिगण भी सम्पूर्ण वेद या वेदान्त का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्हीं प्राचीन वेदाध्यापक वाल्मीकि मुनि की आराधना करते हैं, तब आर्या (आप) का यह प्रवास क्यों (अर्थात् आप उनसे न पढ़कर यहाँ क्यों आई हैं?)

टिप्पणी – पुराणब्रह्मवादिनम् – पुराणश्चासौ ब्रह्मवादी च कर्मधारय समास। प्राचतसम् = वाल्मीकि। प्रचेतसो वरुणस्य अपत्यं प्राचेतसः तम्। ब्रह्मपारायणाय=वेद का पार पाने के लिए अर्थात् वेदान्त का अध्ययन करने के लिए। पारस्य अयनं पारायणं, ब्रह्मणः पारायणं ब्रह्मपारायणं, तस्मै। उपासते = सेवा करते हैं। 'गुरुशुश्रूषया विद्या'।

आत्रेयी – तस्मिन् हि महानध्ययनप्रत्यूह इत्येष दीर्घप्रवासोऽङ्गीकृतः।

आत्रेयी – वहाँ वाल्मीकि के आश्रम में अध्ययन में बड़ा विघ्न हो रहा था, इसलिए लंबा प्रवास स्वीकार किया है।

टिप्पणी – प्रत्यूह = विघ्न। प्रति ऊह् + घञ्। प्रवास = परदेश में रहना। प्र वस् + घञ्।

वनदेवता – कीदृशः?

वनदेवता – कैसा विघ्न?

आत्रेयी – तत्र भगवतः केनापि देवताविशेषेण सर्वप्रकाराद्भुतं स्तन्यत्यागमात्रके वयसि वर्तमानं दारकद्वयमुपनीतम्। तत्खलु न केवलं तस्य, अपि तु तिरश्चामप्यन्तःकरणानि तत्त्वान्युपस्नेहयति।

अनुवाद – वहाँ पर किसी देवता ने सब प्रकार से आश्चर्यजनक एवम् दूध छोड़ने मात्र की अवस्था वाले दो शिशुओं को लाकर भगवान् वाल्मीकि के पास छोड़ दिया है। वे शिशु केवल उन्हीं वाल्मीकि के नहीं, बल्कि पशु-पक्षियों के भी अंतःकरण रूप तत्त्वों को स्नेह-सिक्त करते रहते हैं।

टिप्पणी – देवताविशेषेण–वि शिष् + घञ् कर्मणि विशेषः, देवतानां विशेषः, तेन। स्तन्यत्यागमात्रके– स्तने भवं स्तन्यं, स्तन + यत् 'शरीरावयवाच्च' इत्यनेन, स्तन्यस्य त्यागः स्तन्यत्यागः स एव मात्रा (परिमाणं) यस्य तत् स्तन्यत्यागमात्रकं तस्मिन्, समासान्तः कप्। कहीं-कहीं पुस्तक में 'न केवलमृषीणामपि तु चराचराणां भूतानामान्तराणि तत्त्वानि' पाठ मिलता है। इस पाठ के अनुसार अर्थ इस प्रकार करना चाहिए-'वे केवल ऋषियों के ही नहीं, अपि तु स्थावर-जंगम रूप सभी प्राणियों के आंतरिक मन, बुद्धि आदि रूप तत्त्वों को'।

वनदेवता – अपि तयोर्नामसंज्ञानमस्ति?

वनदेवता – क्या आपको उन दोनों के नाम ज्ञात हैं?

टिप्पणी – अपि = प्रश्नार्थक अव्यय। नामसंज्ञानम् = नाम का परिचय।

आत्रेयी – तयैव किल देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यातः।

आत्रेयी – वही देवता उन दोनों के कुश और लव – ये नाम तथा प्रभाव भी बता गये हैं।

टिप्पणी – यहाँ 'नामनी आख्याते' और 'प्रभावः आख्यातः' इस प्रकार वाक्यभेद करके अन्वय करना चाहिए, अन्यथा 'नपुंसकामनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्'' इस सूत्र के बल से आख्यात शब्द में नपुंसकता हो जायगी।

वनदेवता– कीदृशः प्रभावः।

वनदेवता– कैसा प्रभाव?

आत्रेयी – तयोः किल सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि जन्मसिद्धानीति।

आत्रेयी –उन दोनों को मंत्र समेत जृंभक अस्त्र जन्म से ही सिद्ध हैं।

टिप्पणी – सरहस्यानि–रहसि भवः रहस्यः मन्त्रः, तत्सहितानि। जृम्भकास्त्राणि–विपक्षान् जृम्भयन्ति यानि तथाभूतानि अस्त्राणि। इस अस्त्र का प्रयोग करने से शत्रु जम्हाई लेकर निद्रा के वशीभूत हो जाते हैं।

वनदेवता – अहो नु भोश्चित्रमेतत्।

वनदेवता – ओह! यह जृंभकास्त्रों का जन्मसिद्धि होना आश्चर्य की बात है।

टिप्पणी–अहो नु भोः = यह विस्मयविशेषद्योतक अव्यय है।

आत्रेयी – ×तौ च भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मतः परिगृह्य पोषितौ रक्षितौ च, निर्वृत्तचौलकर्म-णोस्तयोस्त्रयीवर्जमितरास्तिस्रो विद्याः सावधानन परिनिष्ठापिताः। तदनन्तरं भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ। न त्वेताभ्यामतिदीप्तप्रज्ञाभ्यामस्मदादेः सहाध्ययनयोगोऽस्ति। यतः–

अनुवाद – **आत्रेयी** – धाई का काम स्वीकार कर भगवान् वाल्मीकि ने उन दोनों का पालन–पोषण किया और मुंडन–संस्कार हो जाने के उपरांत उन्हें वेद छोड़कर इतर तीन विद्याएँ–आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति विधिवत् पढ़ायी। तदनन्तर भगवान् ने ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय–विधान के अनुसार उपनयन–संस्कार करा कर वेदाध्ययन कराया। किन्तु प्रखरप्रतिभाशाली इन दोनों के साथ हम लोगों का पढ़ना असभव है। क्योंकि–

टिप्पणी – चौलकर्म = चूड़ाकरण या मुंडन संस्कार। यह संस्कार पहले या तीसरे वर्ष में किया जाता है। 'चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः। प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्' इति मनुः। त्रयीवर्जम् = ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद–इन तीनों को छोड़कर। क्योंकि उपनयन से पूर्व वेदाध्ययन करना निषिद्ध है। 'नामिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते। शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदे न जायते' इति मनुः। इतरास्तिस्रो विद्याः = इतर तीन विद्याएँ–आन्वीक्षिकी, दण्डनीति और वार्ता अथवा आयुर्वेद, धनुर्वेद और गान्धर्ववेद। एकादशे वर्षे = ग्यारहवें वर्ष में। क्योंकि क्षत्रिय बालक के लिए यही अवस्था मनु ने बतायी है–'गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।' एकादशानां पूरणे इत्यर्थे एकादशन् + डट् 'तस्य पूरणे डट्' इत्यनेन। त्रयीविद्यामम् = इसमें 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्द-कर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ' इस सूत्र से कर्मसंज्ञा और फिर द्वितीया हुई।

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां तथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः॥4॥

अन्वय – गुरुः यथा प्राज्ञे तथैव जडे विद्यां वितरति, तु तयोर्ज्ञाने न शक्तिं करोति वा न अपहन्ति, खलु फलं प्रति पुनः भूयान् भेदो भवति हि, तद् यथा शुचिः मणिः बिम्बग्राहे प्रभवति मृदादयः॥4॥

अनुवाद – गुरु जैसे बुद्धिमान् शिष्य को उसी तरह मंदमति शिष्य को भी विद्या प्रदान करता है, किन्तु उन दोनों के ज्ञान के सम्बन्ध में वह न तो शक्ति उत्पन्न करता है और न ढिलाई ही करता है अर्थात् न तो बुद्धिमान् छात्र की ज्ञान–शक्ति को बढ़ाता है और न मंदबुद्धि छात्र की ज्ञान–शक्ति को घटाता है, अपितु समान भाव से दोनों को पढ़ाकर समान भाव से ही दोनों के ज्ञान की वृद्धि चाहता है। तथापि फल में अर्थात् ज्ञान के प्रकाश–काल में बड़ा अन्तर होता है अर्थात् बुद्धिमान् छात्र ज्ञान–सम्पन्न होता है, जब कि मंदबुद्धि छात्र ज्ञानहीन अथवा किञ्चित् ज्ञाता होता है। जैसे–निर्मल मणि प्रतिबिम्ब को धारण करने में समर्थ होता है, पर मृत्तिका आदि पदार्थ प्रतिबिम्ब–ग्रहण में समर्थ नहीं होते। उसी तरह बुद्धिमान् छात्र ज्ञानग्रहण में समर्थ होता है, पर मंदबुद्धि छात्र समर्थ नहीं होता॥4॥

टिप्पणी – प्राज्ञे, जडे–अत्र विषयाधिकरणे सप्तमी। फलं प्रति –यहाँ 'अभित:परित: समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इस वार्तिक से द्वितीया हुई। इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा, यथासंख्य और श्रौती उपमा–इन तीनों अलंकारों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने के कारण संकर अलंकार हो जाता है। यहाँ दृष्टान्त अलंकार और हरिणी छंद है॥4॥

वनदेवता – अयमध्ययनप्रत्यूह:?

वनदेवता – अध्ययन में यह विघ्न है?

आत्रेयी – अन्यश्च।

आत्रेयी – दूसरा भी (विघ्न) है।

वनदेवता – अथापर: क:?

वनदेवता – दूसरा क्या विघ्न है?

आत्रेयी – अथ स ब्रह्मर्षिरेकदा माध्यन्दिनसवनाय नदीं तमसामनुप्रपन्न:। तत्र युग्मचारिणो: क्रौञ्चयोरेकं व्याधेन वध्यमानं ददर्श। आकस्मिकप्रत्यवभासां देवीं वाचमानुष्टुभेन छन्दसा परिणतामभ्युदैरयत्।

अनुवाद – आत्रेयी–अनन्तर एक दिन दोपहर का स्नान करने के लिए वे ब्रह्मर्षि (वाल्मीकि) तमसा नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने विहार करते हुए दो क्रोंच पक्षियों में से एक नर को व्याध द्वारा मारा जाता हुए देखा। उस समय अकस्मात् आविर्भूत एवम् अनुष्टुप् छंद में परिणत वाग्देवी का उन्होंने उच्चारण किया अर्थात् उस समय अकस्मात् उनके मुँह से अनुष्टुप् छंद में निम्नोक्त वाणी निकल पड़ी–

टिप्पणी – माध्यन्दिनसवनाय–मध्य + दिनण् पृषोदरादित्वात् मुम्, सु + ल्युट् भावे = सवनम् = स्नान, माध्यन्दिनं सवनम् कर्मधारय, तस्मै तादर्थ्ये चतुर्थी। ब्रह्मर्षि: = ब्राह्मण ऋषि। ब्रह्मा = ब्राह्मणश्चासौ ऋषि: ब्रह्मर्षि:। क्रौंच = कराँकुल, एक तरह का बगुला। 'क्रुङ् क्रौंचोऽथ वक: कह्व:' इत्यमर:। आनुष्टुभेन = अनुष्टुबेव आनुष्टुभं तेन, अनुष्टुभ् शब्द से स्वार्थ में अण्–प्रत्यय। यहाँ 'क्वचित् स्वार्थिका: प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते' इस वचन के बल से नपुंसकता हुई। अनुष्टुप् छंद का लक्षण यह है– 'पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयो:। गुरु षष्ठन्तु पादानां शेषेष्वनियमो मत:॥'

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा:।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी: काममोहितम्॥5॥

अन्वय – निषाद! त्वं शाश्वती: समा: प्रतिष्ठां मा अगम:, यत् क्रौञ्चमिथुनात् काममोहितम् एकम् अवधी:॥5॥

अनुवाद – रे निषाद! तू चिरकाल तक आश्रय अथवा शान्ति नहीं पायेगा, इसलिए कि तूने क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक कामासक्तचित्त नर क्रौञ्च को मार डाला है॥5॥

टिप्पणी – निषाद = चांडाल। 'निषादश्वपचावन्तेवासिचाण्डालपुक्कसा:' इत्यमर:। मा अगम:–यह आर्ष प्रयोग हो सकता है, अन्यथा व्याकरण की दृष्टि से यह अशुद्ध है, क्योंकि माङ् के योग में 'न माङ्योगे' सूत्र से अट् आगम का निषेध होने पर 'मा गम:' शुद्ध रूप होगा। समा: = वर्षों तक। 'संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समा:' इत्यमर:। 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' सूत्र से द्वितीया हुई। क्रौञ्चमिथुनात् = क्रौञ्चद्वन्द्वात्। क्रौञ्ची च क्रौञ्चश्च क्रौञ्चौ, 'पुमान् स्त्रिया' सूत्र से एकशेष, क्रौञ्चयोर्मिथुनं क्रौञ्चमिथुनं। तस्मात्, 'स्त्रीपुंसोर्मिथुनं द्वन्द्वम्' इत्यमर:॥5॥

वनदेवता – चित्रम्! आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतार:।

वनदेवता – आश्चर्य!! वेद से भिन्न में भी छंद का नवीन आविर्भाव हो गया।

टिप्पणी – आम्नायात् = वेद से। 'श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायः' इत्यमरः। आम्नायते गुरुपरम्पराक्रमेण अधिगत्य यथाविधि अभ्यस्यते इति आम्नायः आ म्ना + घञ्। नूतनश्छन्दसामवतारः –'मा निषाद–' यह लौकिक छंद में बना पहला काव्य है। इससे पूर्व केवल वैदिक छंद होते थे। वैदिक छंद वर्णिक होते हैं और लौकिक छंद में वर्णिक एवं मात्रिक दोनों।

आत्रेयी – तेन हि पुनः समयेन तं भगवन्तमाविर्भूतशब्दब्रह्म प्रकाशमृषिमुपसंगम्य भगवान् भूतभावनः पद्मयोनिरवोचत्–'ऋषे! प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि। तद् ब्रूहि रामचरितम्। अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः प्रतिभातु। आद्यः कविरसि' इत्युक्त्वान्तर्हितः अथ स भगवान् प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय।

अनुवाद– उस समय सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्मा उन भगावन् वाल्मीकि के समीप, जिन्हें शब्दब्रह्म का साक्षात्कार हो गया था, आकर बोले–'मुने! तुम वाङ्मय ब्रह्म को भलीभाँति जान गये हो। अतः राम के चरित्र का वर्णन करो। तुम्हारी अव्याहत तेज वाली आर्ष दृष्टि (ज्ञानचक्षु) प्रकाशित हो। तुम आदिकवि हो।' यह कहकर वे अन्तर्ध्यान हो गये। तदनन्तर भगवान् वाल्मीकि मनुष्यों में सबसे पहले शब्दब्रह्म के वैसे मा निषाद इत्यादि रूपान्तर रामायण नामक इतिहास की रचना करने लगे। अतः रामायण लिखने में व्यस्त रहने के कारण अध्यापन के लिये उनके पास समय नहीं है, यही दूसरा विघ्न है।

टिप्पणी –भूतभावनः–भूतानि प्राणिसंघान् भावयति उत्पादयति इति भूतभावनः, भू णिच् + ल्यु–अन। विवर्तम् = कारण का स्वभाव बदले बिना कार्यरूप में परिणत हो जाना। 'प्रकृतिस्वरूपानुपमर्देन रूपान्तरोत्पत्तिर्विवर्तः।' अतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्तइत्थुदीरितः। इतिहास = यह बात परम्परा से चली आ रही है, यह बताने वाला ग्रंथ। इतिह पारम्पर्योपदेश आस्तेऽस्मिन्, इतिह आस् + घञ्। रामायणम्–राम एव अयनम् उपजीव्यत्वेन आश्रयो यस्य तत् अथवा रामोऽय्यते ज्ञायते यस्मात् तत् रामायणम्।

वनदेवता – हन्त! तर्हि पण्डितः संसारः।

वनदेवता – अहा! तब तो संसार पंडित हो जायेगा अर्थात् सरल शैली में रामायण की रचना होने के कारण उसे पढ़कर सभी लोग विद्वान् हो जायेंगे।

आत्रेयी – तस्मादव हि ब्रवीमि 'तत्र महानध्ययनप्रत्यूह' इति।

आत्रेयी – इसीलिए तो कहती हूँ कि वहाँ अध्ययन करने में महाविघ्न उपस्थित हो गया है।

वनदेवता – युज्यते।

वनदेवता – ठीक कहती हैं।

आत्रेयी – विश्रान्तास्मि भद्रे! संप्रत्यगस्त्याश्रमस्य पन्थानं ब्रूहि।

आत्रेयी – भद्रे! मैं विश्राम कर चुकी हूँ। अब अगस्त्य जी के आश्रम का मार्ग बता दीजिये।

वनदेवता – इतः पञ्चवटीमनुप्रविश्य गम्यतामनेन गोदावरीतीरेण।

वनदेवता – यहँ से पंचवटी में प्रवेश करके गोदावरी के इस किनारे-किनारे चली जाइये।

आत्रेयी – (सास्रम्) अप्येतत्तपोवनम्? अप्येषा पञ्चवटी? अपि सरिदियं गोदावरी? अप्ययं गिरिः प्रस्रवणः? अपि जनस्थानवनदेवता त्वं वासन्ती?

आत्रेयी – (अश्रुपात सहित) यह क्या तपोवन है? यह क्या पंचवटी है? यह क्या गोदावरी नदी है? यह प्रस्रवण पर्वत है? आप क्या जनस्थान की वनदेवता वासन्ती हैं?

वनदेवता – तथैव तत्सर्वम्।

वनदेवता – वह सब वैसा ही है अर्थात् जैसा आप कहती हैं, वैसा ही सब है।

आत्रेयी – हा वत्से जानकि!

आत्रेयी – हाय पुत्री जानकी!

स एष ते वल्लभबन्धुवर्गः प्रासङ्गिकीनां विषयः कथानाम्।
त्वां नामशेषामपि दृश्यमानः प्रत्यक्षदृष्टामिव नः करोति ॥6 ॥

अन्वय – प्रासङ्गिकीनां कथानां विषयः दृश्यमानः स एष ते वल्लभबन्धुवर्गः नामशेषामपि त्वां नः प्रत्यक्षदृष्टामिव करोति ॥6 ॥

अनुवाद – ये पुरोवर्ती तुम्हारे बन्धुगण, जो प्रासंगिक कथाओं के विषय होते थे अर्थात् बातचीत के सिलसिले में तुम जिनका वर्णन किया करती थी, नाममात्र से अवशिष्ट अर्थात् मृत तुमको हमारे साक्षात् दृष्टिगोचर की तरह कर रहे हैं अर्थात् इनको देखने से यह प्रतीत हो रहा है कि तुम हमारे सामने विद्यमान हो ॥6 ॥

वासन्ती – (सभयं स्वगतम्) कथं। नामशेषेत्याह? (प्रकाशम्) किमत्याहितं सीतादेव्याः?

वासन्ती – (भय सहित मन ही मन) 'नाममात्र से बची हुई' यह क्यों कहा? (प्रकट) सीता देवी के ऊपर क्या विपत्ति पड़ी।

टिप्पणी – अत्याहितम् = महान् अनर्थ या विपत्ति। 'अत्याहितं महाभीतिः कर्म जीवाऽनपेक्षि च' इत्यमरः। अतिशयेन आहितम् इति अति आ धा + क्त कर्मणि, 'दधातेर्हिः' इति सूत्रेण धा इत्यस्य हि आदेशः।

आत्रेयी – न केवलमत्याहितम्, सापवादमपि। (कर्णे) एवमिति।

आत्रेयी – केवल विपत्ति ही नहीं, लोकापवाद भी हो गया है। (कान में) ऐसा-ऐसा।

टिप्पणी – एवम् –'लंका में सीता अकेली रही थीं। अतः उनका चरित्र निर्दोष नहीं कहा जा सकता' इस लोकापवाद के कारण राम के आदेश से लक्ष्मण ने सीता को महावन में लाकर गंगाजी के किनारे छोड़ दिया और स्वयं चले गये-यह बात आत्रेयी ने वासन्ती के कान में कही होगी, ऐसी कल्पना करनी चाहिए।

वासन्ती – हा दारुणो दैवनिर्घातः (इति मूर्च्छति)

वासन्ती – हाय! दुभाग्य ने भयंकर प्रहार किया। (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है।)

टिप्पणी – किसी पुस्तक में 'हा' के स्थान में 'अहह' पाठ है। उसका अर्थ होता है-खेद या आश्चर्य। 'अहहेत्यद्भुते खेदे' इत्यमरः। दैवनिर्घातः-निर् हन् + घञ् भावे निर्घातः, दैवस्य निर्घातः।

आत्रेयी – भद्रे! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

आत्रेयी – कल्याणी! आश्वस्त हों, आश्वस्त हों।

वासन्ती – हा प्रियसखि! ईदृशस्ते निर्माणभागः। हा रामभद्र! अथवा अलं त्वया। आत्रेयि! अथ तस्माद्रण्यात् परित्यज्य निवृत्ते लक्ष्मणे सीतायाः किं वृत्तमिति काचिदस्ति प्रवृत्तिः।

वासन्ती – हाय प्रिय सखि! तुम्हारे जीवन का शेष भाग ऐसा हुआ! हाय रामभद्र! अथवा तुम्हें कुछ कहना व्यर्थ है। आत्रेयी! जब सीता को जंगल में छोड़कर लक्ष्मण लौट गये तब सीता की क्या दशा हुई, इसका कुछ समाचार मालूम है?

टिप्पणी – निर्माणभागः = जीवन का शेष भाग। 'भागो रूपार्धके प्रोक्तो भागधेयैकदेशयोः' इति विश्वः। 'एकदेशांशयोर्भागः' इति त्रिकाण्डशेषः। प्रवृत्तिः = वार्ता, समाचार। 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः।

आत्रेयी – नहि नहि।

आत्रेयी – नहीं, नहीं।

वासन्ती – हा कष्टम्। आर्यारुन्धतीवसिष्ठाधिष्ठितेषु नः कुलेषु। जीवन्तीषु च वृद्धासु राज्ञीषु कथमिदं जातम्?

वासन्ती – हाय कष्ट है। हमारे आत्मीयों के कुल में पूज्य अरुन्धती और वसिष्ठ के रहते एवं वृद्धा महारानियों के जीते यह कैसे हुआ?

टिप्पणी – आर्यारुन्धतीवसिष्ठाधिष्ठितेषु–आर्या चासौ अरुन्धती कर्मधारय स., आर्यारुन्धती च वसिष्ठश्च द्वन्द्व स., आर्यारुन्धतीवसिष्ठाभ्याम् अधिष्ठितानि तृ.त., तेषु।

आत्रेयी – ऋष्यशृङ्गसत्रे गुरुजनस्तदाऽऽसीत्। सम्प्रति परिसमाप्तं तद्द्वादशवार्षिकं सत्रम्। ऋष्यशृङ्गेण च सम्पूज्य विसर्जिता गुरवः। ततो भगवत्यरुन्धती 'नाहं वधूविरहितामयोध्यां गच्छामीत्याह। तदेव राममातृभिरनुमोदितम्। तदनुरोधाद्भगवतो वसिष्ठस्यापि श्रद्धा 'वाल्मीकिवनं गत्वा वत्स्याम' इति।

अनुवाद – आत्रेयी – उस समय (सीता के निर्वासन-काल में) गुरुजन (अरुन्धती, वसिष्ठ आदि) ऋष्यशृंग के यज्ञ में थे। अब यह बारह वर्षों में सम्पन्न होने वाला यज्ञ समाप्त हो गया। ऋष्यशृंग ने गुरुजनों को सम्मानपूर्वक विदा कर दिया। तदनन्तर भगवती अरुन्धती ने कहा–'मैं वधू सीता से रहित अयोध्या में नहीं जाऊँगी।' राम की माताओं ने उन्हीं की बातों का समर्थन किया। उन लोगों का अत्याग्रह देखकर भगवान् वसिष्ठ ने भी इच्छा प्रकट की कि हम लोग वाल्मीकि के तपोवन में जाकर निवास करें।

वासन्ती – अथ स रामभद्रः किमाचारः?

वासन्ती – अब व रामचन्द्र क्या रहे हैं?

टिप्पणी – किमाचारः = कौन-सा आचरण अर्थात् कार्य या अनुष्ठान करने वाले। क आचारो यस्य सः।

आत्रेयी – तेन राज्ञा राजक्रतुरश्वमेधः प्रक्रान्तः।

आत्रेयी – उस राजा ने यज्ञों में श्रेष्ठ अश्वमेध प्रारम्भ किया है।

टिप्पणी – राजक्रतुः = राजयज्ञ या यज्ञश्रेष्ठ। क्रतूनां राजा राजक्रतुः 'राजदन्तादिषु परम्' इससे राजशब्द का पूर्वनिपात हुआ। क्रतु और यज्ञ में अंतर है। क्रतु में पशु का बलिदान करना अनिवार्य होता है, परन्तु यज्ञ में अनिवार्य नहीं होता। अश्वमेधः = मेध्यते हन्यते अस्मिन् इति मेध् + घञ् अधिकरणे = मेधः = यज्ञ, अश्वस्य मेधः।

वासन्ती – अहह धिक्! परिणीतमपि?

वासन्ती – हाय धिक्कार है! विवाह भी कर लिया?

टिप्पणी – विवाह की आशंका इसलिए की कि सपत्नीक को ही यज्ञ करने का अधिकार है। रामचन्द्र जी ने सीता-परित्याग के बाद अश्वमेध आरम्भ किया था। अतः वासन्ती द्वारा दूसरे विवाह का अनुमान किया जाना स्वाभाविक था।

आत्रेयी – शान्तम्। नहि नहि।

आत्रेयी – नहीं-नहीं, ऐसा नहीं है।

वासन्ती – का तर्हि यज्ञे सहधर्मचारिणी?

वासन्ती – तब यज्ञ में सहधर्मिणी पत्नी कौन बनी?

आत्रेयी – हिरण्मयी सीताप्रकृतिर्गृहिणीकृता।

आत्रेयी – सीता की स्वर्ण-प्रतिमा को पक्षी बनाया गया है।

टिप्पणी – हिरण्मयी = सोने की। हिरण्यस्य विकारः इस अर्थ में 'तस्य विकारः' इस सूत्र से मयट् प्रत्यय और निपातनात् यलोप तथा टित्वात् ङीप्। प्रतिकृतिः = प्रतिमा, मूर्ति। कहा भी है– 'यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत्। यवानामिव गोधूमा व्रीहानामिव शालयः' कात्यायन।

वासन्ती – हन्त भोः!

वासन्ती – हाय कष्ट है!

टिप्पणी – हन्त = हर्ष- विषाद-सूचक अव्यय। भोः = सम्बोधनार्थक अव्यय।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥7॥

अन्वय – वज्रादपि कठोराणि कुसुमादपि मृदूनि लोकोत्तराणां चेतांसि विज्ञातुम् कः अर्हति हि॥7॥

अनुवाद – वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल लोकश्रेष्ठ जनों के चित्त को कौन समझ सकता है? अर्थात् कोई भी नहीं॥7॥

टिप्पणी – यहाँ एकधर्मी में कठोरता और मृदुता रूप दो विरुद्ध धर्मो का समावेश होने से विषमालंकार, अप्रस्तुत लोकोत्तरसामान्य से प्रस्तुत रामरूपविशेष की प्रतीति होने के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा और अर्थापत्ति अलंकार है। फिर इन तीनों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार उत्पन्न होता है॥7॥

आत्रेयी – विसृष्टश्च वामदेवानुमन्त्रितो मेध्याश्वः। प्रक्लृप्ताश्च तस्य यथाशास्त्रं रक्षितारः। तेषामधिष्ठाना लक्ष्मणात्मजश्चन्द्रकेतुर्दत्तदिव्यास्त्रसम्प्रदायश्चतुरङ्गसाधनान्वितोऽनुप्रहितः।

अनुवाद – आत्रेयी – वामदेव मुनि द्वारा मंत्र-संस्कार-सम्पन्न यज्ञीय अश्व छोड़ दिया गया है। शास्त्रवचनानुसार उसके रक्षक भी नियुक्त कर दिये गये हैं। उन रक्षकों के नेता लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु, जिन्हें दिव्य अस्त्रों का समूह दिया गया है और जो चतुरंगिणी सेना से युक्त हैं, उस अश्व के पीछे भेजे गये हैं।

टिप्पणी – मेध्याश्वः = यज्ञ में हननीय अश्व। मेधितुं हन्तुं योग्यो मेघ्यः, मेध् + ण्यत्। चतुरङ्गसाधनान्वितः = चतुरंगिणी सेना सहित। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल से सेना के चार अंग माने गये हैं। चतुर्णामङ्गानां समाहारः चतुरङ्गं द्विगुसमास, चतुरङ्गं च तत्साधनं कर्मधारयसमास, तेन अन्वितः तृतीयातत्पुरुष। अनुप्रहितः–अनु-प्र हि + क्त कर्मणि।

वासन्ती – (सहर्षकौतुकास्त्रम्) कुमारलक्ष्मणस्यापि पुत्र इति मातः! जीवामि।

वासन्ती – (हर्ष, कुतूहल और अश्रुपात सहित) मातः! कुमार लक्ष्मण के भी पुत्र हैं, इससे अथात् यह जान कर जीवित हैं।

टिप्पणी – सहर्षकौतुकास्त्रम्–हर्षश्च कौतुकञ्च अस्त्रञ्च इति हर्षकौतुकस्त्राणि द्वन्द्वसमास तैः सह... तत् यथा तथा। वासन्ती को लक्ष्मण का नाम सुनकर हर्ष, उनके पुत्र हुआ और वह भी सेनापति है यह जानकर कुतूहल और फिर सीता का स्मरण हो जाने से अश्रुपात हुआ।

आत्रेयी – अत्रान्ते ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुत्क्षिप्य राजद्वारे सोरस्ताडमब्रह्मण्यमुद्घोषितम्। ततो 'न राजापचारमन्तरेण प्रजानामकालमृत्युः सञ्चरती' त्यात्मदोषं निरूपयति करुणमये रामभद्रे सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत्।

अनुवाद – आत्रेयी–इस बीच एक ब्राह्मण अपने मरे हुए पुत्र को राजभवन के दरवाजे पर फेंक कर छाती पीटते हुए जोर से चिल्लाने लगा कि ब्राह्मण का सर्वनाश हो गया। तदनन्तर 'बिना राजा के दोष के प्रजाओं की अकालमृत्यु नहीं हो सकती' इस प्रकार महादयालु रामभद्र के अपने दोष का निर्णय करने पर उसी क्षण आकाशवाणी हुई–

टिप्पणी – राजापचारम्–अप चर् + घञ् भावे अपचारः = अपराध, राज्ञः अपचारः तम्। इसमें 'अन्तराऽन्तरेण युक्ते' से द्वितीया हुई। निरूपयति–नि रूप् + णिच् स्वार्थे (चुरादि) + शतृ, तस्मिन्। इसमें 'यस्य च भावेन भाव-लक्षणम्' से सप्तमी हुई। राजा के दोष से प्रजाओं में उपद्रव फलता है– 'असाधुशासनाद्राज्ञो महाभीतिरुपप्लव:। प्रवर्तते च नियतमकालमृत्युरीतयः॥' महाभारत।

शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः।
शीर्षच्छेद्यः स ते राम! तं हत्वा जीवय द्विजम्॥8॥

अन्वय – शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तपः तप्यते। राम! स ते शीर्षच्छेद्यः तं हत्वा द्विजं जीवय॥8॥

टिप्पणी – वृषलः = शूद्र। वृषं धर्मे लुनाति इति वृषलः, वृष लू + ड। शूद्र को तपस्या, यज्ञ आदि धर्मों का आचरण न करने से कोई पातक नहीं लगता, बल्कि ऐसा करने से ही वह पापभागी होता है। अतः सब वर्णों के लिए स्वस्वधर्मानुष्ठान ही श्रेयस्कर है। गीता में कहा है–'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।' 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।' मनु ने तो यहाँ तक कहा कि–'न शूद्रे पातकं किञ्चित् न च संस्कारमर्हति। नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात् प्रतिषेधनम्॥' शीर्णच्छेद्यः = शिर काट डालने योग्य। शीर्षे छेद्यः, 'गले बद्धा गौः' की तरह अधिकरण में सप्तमी॥8॥

इत्युपश्रुत्य कृपाणपाणिः पुष्पकमधिरुह्य सर्वा दिशो विदिशश्च शूद्रतापसान्वेषणाय जगत्पतिः सञ्चारं समारब्धवान्।

अनुवाद – यह सुन कर हाथ में तलवार लिये हुए लोकपति रामभद्र ने पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर शूद्र तपस्वी (शंबूक) को ढूँढ़ने के लिए सभी दिशाओं एवं विदिशाओं में घूमना आरम्भ कर दिया है।

वासन्ती – शम्बूको नामाधोमुखो धूमपः शूद्रोऽस्मिन्नेव जनस्थाने तपश्चरति। अपि नाम रामभद्रः पुनरिदं वनमलङ्कुर्यात्?

वासन्ती – शंबूक नामक धूमपायी शूद्र नीचे की ओर मुँह करके इसी जनस्थान में तप कर रहा है। क्या रामभद्र पुनः इस वन को सुशोभित करेंगे?

टिप्पणी – धूमपः = धुआँ पीने वाला। शंबूक केवल यज्ञीय धूम पान करके तप करता था। धूमं पिबति इति धूमपः धूम पा + कः। अपि शब्द प्रश्नार्थक है और नाम शब्द सम्भावनार्थक।

आत्रेयी – भद्रे! गम्यतेऽधुना।

आत्रेयी – भद्रे! अब मैं जाती हूँ।

वासन्ती – आर्ये आत्रेयि! एवमस्तु। कठोरश्च दिवसः।

तथाहि–

वासन्ती – आर्ये आत्रेयि! अच्छा। दिन सूर्य किरणों की प्रखरता के कारण दुःसह हो गया है। देखिये–

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभि
घर्मस्त्रंसितबन्धनैश्च कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।
छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः॥9॥

अन्वय – कूले छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कुलायद्रुमाः कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणोत्कम्पेन सम्पातिभिः च धर्मस्रंसितबन्धनैः कुसुमैः गोदावरीम् अर्चन्ति ॥9 ॥

अनुवाद – (गोदावरी नदी के) तट पर चिड़ियों के घोंसले वाले वृक्ष, जिनकी छालों के अन्दर से भक्ष्य पदार्थ ढूँढ़ने के लिए खोदने वाले पक्षियों की चोंच से कीड़े निकाले जा रहे हैं तथा जिन वृक्षों पर धूप से खिन्न कबूतरों एव मुर्गों का झुंड कलरव कर रहा है, तेज धूप के कारण शिथिल वृन्त (अर्थात् मुक्त-बन्धन) वाले और हाथियों के खुजलाहटभरे कपोलभाग की रगड़ के कम्पन से गिरने वाले पुष्पों से मानो गोदावरी नदी की पूजा कर रहे हैं ॥9 ॥

टिप्पणी – अपस्किरमाण = खाने के लिये चोंच से खोदते हुए। अप कृ + शानच् कर्तरि। यहाँ 'किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वाच्यम्' से आत्मनेपद और 'अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने' से सुट् का आगम हुआ। विष्किर = पक्षी। कुलाय = घोंसला, खोता। 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्' इत्यमरः। कण्डूल = खुजली वाला। कण्डूः अस्ति अस्य इति कण्डूलः सिध्मादित्वाल्लच्। इस श्लोक में इब शब्द का अभाव होने के कारण प्रतीयमाना क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार तथा स्वभावोक्ति अलंकार है। फिर इन दोनों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार हो जाता है। इसमें वृत्त्यनुप्रास नामक शब्दालंकार भी है। यह शार्दूलविक्रीडित छंद है ॥9 ॥

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते) (इसके बाद दोनों घूमकर या कुछ पग चल कर चली गई)

(इति शुद्धविष्कम्भकः।) (शुद्ध विष्कम्भक समाप्त।)

टिप्पणी – विष्कम्भक = अंक के आदि में रखा जाने वाला वह अंश जिसमें भूत तथा भावी घटनाओं का संकेत रहता है। विष्कम्भक दो प्रकार का होता है–शुद्ध और सङ्कीर्ण। जिस विष्कम्भक में एक या एक से अधिक मध्यम श्रेणी के पात्र होते हैं और वे संस्कृत में संभाषण करते हैं, वह शुद्ध विष्कम्भक कहलाता है। जिसमें कुछ मध्यम और कुछ अधम कोटि के पात्र होते हैं और वे संस्कृत एवं प्राकृत दोनों भाषाओं में सम्भाषण करते हैं, वह संकीर्ण विष्कम्भक कहलाता है। यहाँ शुद्ध विष्कम्भक है; क्योंकि इस अंक में वासन्ती और आत्रेयी दोनों मध्यम श्रेणी के पात्र हैं और इन्होंने संस्कृत में सम्भाषण किया है।

(ततः प्रविशति सदयोद्यतखड्गो रामभद्रः)

(तदनन्तर दयापूर्वक तलवार उठाये हुए रामचन्द्र प्रवेश करते हैं।)

रामः–

रे हस्त दक्षिण! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।
रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ॥10 ॥

अन्वय – रे दक्षिण हस्त! द्विजस्य मृतस्य शिशोः जीवातवे शूद्रमुनौ कृपाणं विसृज। (त्वं) निर्भरगर्भखिन्नसीताविवासनपटोः रामस्य बाहुः असि। (अतएव) ते करुणा कुतः? ॥10 ॥

अनुवाद – राम – रे दाहिने हाथ! तू ब्राह्मण के मरे हुए शिशु को जिलाने के लिए शूद्र मुनि के ऊपर तलवार चला। (क्योंकि) तू पूर्ण गर्भ के भार से खिन्न जानकी को निर्वासित करने में कुशल राम का हाथ है। अतः तुझे दया कहाँ से होगी? ॥10 ॥

टिप्पणी – जीवातवे – जीवित करने के लिए। जीवत्यनेन जीव् + आतु = जीवातु। 'जीवातुरस्त्रियां भक्ते जीविते जीवनौषधे' इत्यमरः। यहाँ तादर्थ्य में चतुर्थी हुई। इस श्लोक में करुणा के अभाव के प्रति

सीता-निर्वासन-पटुता हेतु है। अतः पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार हुआ। यह वसन्ततिलका छंद है॥10॥

(कथञ्चित्प्रहृत्य) कृतं रामसदृशं कर्म। अपि जीवेत् स ब्राह्मणपुत्रः?

(कोई प्रहार करके) राम के योग्य कार्य किया। क्या वह ब्राह्मण का पुत्र जीवित होगा?

टिप्पणी – रामसदृश-रामोचित। यहाँ राम अपने को कोसते हैं कि जो निरपराध सीता को निर्वासित कर सकता है, उस अतिनृशंस राम के लिए निरपराध शंबूक की हत्या करना उचित ही है। यहाँ भवभूति ने प्राचीन नाट्याचार्यों के मत के विरुद्ध रंग-मंच पर वध का दृश्य उपस्थित किया है। रंगमंच पर जिन कार्यों का निषेध किया गया है, वे ये हैं-'दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः। विवादो भोजनं शापोत्सर्गौ मृत्यू रतं तथा। दन्तच्छेद्यं नखच्छेद्यमन्यद्व्रीडाकरञ्च यत्। शयनाधरपानादि नगराद्यवरोधनम्। स्नानानुलेपने चैभिर्वर्जितो नातिविस्तरः।'

(प्रविश्य) (प्रवेश कर)

दिव्यपुरुषः – जयतु देवः।

दिव्य पुरुष – महाराज की जय हो।

दत्ताभये त्वयि यमादपि दण्डधारे
सञ्जीवितः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः।
शम्बूक एष शिरसा चरणौ नतस्ते
सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति॥11॥

अन्वय – यमादपि दत्ताभये त्वयि दण्डधारे असौ शिशुः सञ्जीवितः, मम च इयम् ऋद्धिः। एष शम्बूकः शिरसा ते चरणौ नतः, सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति॥11॥

अनुवाद – मृत्यु से भी अभयदान देने वाले आपके दंड धारण करने पर वह शिशु जीवित हो उठा। मेरी भी यह दिव्य-आकृति-लाभ रूप अभ्युन्नति हुई। अतः यह शम्बूक आपके चरणों में शिर झुका कर प्रणाम करता है। क्यों नहीं? सज्जन के संसर्ग से उत्पन्न मृत्यु भी उद्धार करने वाली होती है॥11॥

टिप्पणी – यमात्-इसमें 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' सूत्र से पंचमी हुई। दण्डधारे-दण्डं धारयति इति दण्ड धृ + णिच् + अण् कर्तरि-दण्डधारः, तस्मिन्। निधनानि-नि धा + क्यु भावे। यहाँ दण्ड रूप कारण से समृद्धि रूप विरुद्ध फल की उत्पत्ति होती है। अतः विषमालंकार है और सत्संगजनित मरण द्वारा किये जाने वाले उद्धार रूप सामान्य से ऋद्धि रूप विशेष का समर्थन होता है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार भी है। फिर इन दोनों अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने के कारण संसृष्टि अलंकार उत्पन्न होता है। यह वसन्ततिलका छंद है॥11॥

रामः – द्वयमपि प्रियं नः, तदनुभूयतामुग्रस्य तपसः परिपाकः।

राम – हमें ब्राह्मण-शिशु का पुनरुज्जीवन और तुम्हारी सम्पदा दोनों की बातें प्रिय हैं, अतः उग्र तपस्या का परिणाम प्राप्त करो।

टिप्पणी – द्वयम्-द्वि + तयप् 'संख्याया अवयवे तयप्' इत्यनेन, पुनः तयप् के स्थान में अयच् आदेश 'द्वित्रिभ्यां तयस्याऽयज्वा' इत्यनेन।

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च सम्पदः।
वैराजा नाम ते लोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः॥12॥

अन्वय – यत्र आनन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याः सम्पदश्च ते वैराजा नाम तैजसाः लोकास्ते शिवाः सन्तु ॥12 ॥

अनुवाद – जहाँ आनन्द आत्मानुभवजन्य सुखराशि अथवा ब्रह्मानन्द तथा मोद विविधविषयोपभोगजन्य तृप्ति अथवा नाना प्रकार के भोग मिलते हैं और जहाँ पवित्र विभूतियाँ प्राप्त होती हैं, वे वैराज नामक आलोकमय लोक तुम्हारे लिए शुभ चिरस्थायी हों ॥12 ॥

शम्बूकः – स्वामिन्! युष्मत्प्रसादादेवैष महिमा। किमत्र तपसा? अथवा महदुपकृतं तपसा।

शम्बूक – प्रभो! आप ही की कृपा से मुझे यह महत्त्व मिला है। इसमें तपस्या ने क्या किया? क्योंकि

अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने लोकनाथः शरण्यो
मामन्विष्यन्निह वृषलकं योजनानां शतानि।
क्रान्त्वा प्राप्तः स इह तपसां सम्प्रसादोऽन्यथा तु
क्वायोध्यायाः पुनरुपगमो दण्डकायां वने वः? ॥13 ॥

अन्वय – भुवनेऽन्वेष्टव्यो लोकनाथः शरण्यः त्वम् यत् मां वृषलकम् अन्विष्यन् योजनानां शतानि क्रान्त्वा इह प्राप्तोऽसि स इह तपसां सम्प्रसादः अन्यथा तु वः अयोध्यायाः दण्डकायां वने क्व पुनः उपगमः? ॥13 ॥

अनुवाद – जगत् में अन्वेषण या साक्षात्कार करने योग्य, लोकों के नाथ और रक्षकों में श्रेष्ठ आप जो मुझ अधम शूद्र को ढूँढ़ते हुए सैंकड़ों योजनों को लाँघ कर यहाँ आये हैं, सो वह इस प्रदेश में आपका आना मेरी तपस्याओं का ही फल है; अन्यथा अयोध्या से दण्डकारण्य में आपका आना फिर कहाँ सम्भव था? ॥13 ॥

टिप्पणी – शरण्यः–शरणेषु साधुः श्रेष्ठ इत्यर्थे शरण + यत् 'तत्र साधुः' इत्यनेन। वृषलकम् = निन्दित शूद्र। कुत्सितो वृषलो वृषलकः, तम्। कुत्सार्थे वृषल + कन्। योजनानां शतानि = बहुत योजनों को। यहाँ शत शब्द बहत्ववाचक है। इस छंद में एक ही राम में अन्वेषणकर्मत्व एवम् अन्वेषणकर्तृत्वरूप विरुद्ध धर्मों का संघटन होने से विषमालंकार है। अतिशयोक्ति और काव्यलिंग अलंकार भी इसमें समाविष्ट हैं। यह मन्दाक्रान्ता छंद है ॥13 ॥

रामः – किं नाम दण्डकेयम्? (सर्वतोऽवलोक्य) हा, कथम्–

राम – क्या यह दंडकवन है? (सब और देख कर) हाय, कैसे–

स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणभोगरूक्षाः
स्थाने स्थाने मुखरककुभो झाङ्कृतैर्निर्झराणाम्।
एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्त कान्तारमिश्राः
संदृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः ॥14 ॥

अन्वय – क्वचित् स्निग्धश्यामाः अपरतः भीषणाभोगरूक्षाः स्थाने-स्थाने निर्झराणां झाङ्कृतैः मुखरककुभः तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः परिचितभुवः एते दण्डकारण्यभागाः संदृश्यन्ते ॥14 ॥

अनुवाद – दण्डकारण्य के ये प्रदेश भूभाग कहीं चिकने और श्यामल तथा दूसरी तरफ भयङ्कर विस्तार के कारण रूखे, जगह-जगह पर झरनों के झंकार से मुखरित दिशाओं वाले, तीर्थ, आश्रम, पर्वत, नदी, गड्ढे और दुर्गम मार्ग वाले तथा परिचित भूमि वाले दिखाई दे रहे हैं ॥14 ॥

टिप्पणी – आभोग – परिपूर्णता। 'आभोगः परिपूर्णता' इत्यमरः। ककुम् – दिशा। 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा' इत्यमरः। तीर्थ – ॠषिसेवित जल। 'निपानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ' इत्यमरः। कान्तार – दुर्गम पथ। 'महारण्ये दुर्गपथे कान्तारः पुंनपुंसकम्।' इत्यमरः। दण्डकारण्य – दण्डक नामक वन।

दण्डकाख्यं वनम् मध्य.स.। कहते हैं कि एक बार इक्षवाकुवंशीय राजा दण्डक ने शुक्राचार्य की पुत्री अरजा का शीलभंग कर दिया। जिस कारण शुक्राचार्य के शाप से दण्डक का समूल नाश हो गया और तब स इसका राज्य दण्डकवन के रूप में परिणत हो गया। इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार तथा मन्दाक्रान्ता छंद है ॥14 ॥

शम्बूकः – दण्डकैवैषा। अत्र किल पूर्वं निवसता देवेन–

शम्बूक – यह दंडकवन ही है। यहाँ पहले निवास करते हुए महाराज ने–

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकमणाम्।
त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो रणे हताः॥15॥

अन्वय – भीमकर्मणां रक्षसां चतुर्दशसहस्राणि त्रयः दूषणखरत्रिमूर्धानश्च रणे हताः॥15॥

अनुवाद – भयानक कर्म करने वाली चौदह हजार राक्षसों को तथा उसके नेता दूषण, खर और त्रिशिरा– इन तीनों को युद्ध में मारा था॥15॥

टिप्पणी – त्रिमूर्धानः–यद्यपि त्रयो मूर्धानो यस्य इस विग्रह में 'द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः' सूत्र से समासान्त ष प्रत्यय होने पर 'त्रिमूर्धानः' रूप नहीं हो सकता बल्कि 'त्रिमूर्धाः' रूप होगा, किन्तु 'समासान्तविधिरनित्यः' इस नियम के बल से ष प्रत्यय का अभाव होने पर 'त्रिमूर्धाः' रूप शुद्ध ही है, ऐसा जान लेना चाहिए। अथवा 'त्रिमूर्धाः, नो' ऐसा पदच्छेद करके काकु मानकर अर्थ करना चाहिए– 'क्या आपने चौदह सहस्र राक्षसों को तथा खर, दूषण और त्रिमूर्धा – इन तीनों को रण में मारा था।'

येन सिद्धक्षेत्रेऽस्मिन् मादृशामपि जानपदानामकुतोभयः सञ्चारः संवृत्तः।

जिससे अर्थात् दूषण, खर आदि राक्षसों का वध हो जाने के कारण इस सिद्ध–क्षेत्र में मेरे जैसे ग्रामवासियों का भी सर्वधा भयरहित विचरण सम्पन्न हुआ।

टिप्पणी – सिद्धक्षेत्रे – अणिमा आदि सिद्धि वालों के स्थान में। मादृशाम्–अहमिव दृश्यमानाः मामिव आत्मानं पश्यन्ति इति अस्मद् दश् + कञ् कर्मकर्तरि–मादृशाः, तेषाम्। जानपदानाम्– जनपद–जनपद में निवास करने वालों का। जनपदे भवाः जानपदाः तेषाम्, जनपद + अण्। अकुतोभयः = जहाँ कहीं से भी भय न हो। नास्ति कुतोऽपि भयं यस्मिन् सः, 'मयूरव्यंसकादयश्च' इत्यनेन समासः।

रामः – न केवलं दण्डकैव, जनस्थानमपि?

राम – यह केवल दंडकारण्य ही नहीं, जनस्थान भी है?

शम्बूकः – बाढम्। एतानि खलु सर्वभूतरोमहर्षणान्युन्मत्तचण्डश्वापदकुलसङ्कुलगिरिगह्वराणि जनस्थानपर्यन्तदीर्घारण्यानि दक्षिणां दिशमभिवर्तन्ते। तथाहि–

अनुवाद – शम्बूक – हाँ। ये जनस्थान तक फैले हुए लम्बे वन, जो सभी प्राणियों के लिए रोमांचकारक हैं तथा जिनमें पर्वत की गुफायें उन्मत्त एवं प्रचंड हिंसक जन्तुओं से व्याप्त हैं, दक्षिण दिशा की ओर हैं। जैसा कि–

टिप्पणी – चण्ड – अत्यन्त क्रोधी। 'चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः' इत्यमरः। श्वापद–हिंस्र पशु व्याघ्र आदि। शुनः पदानीव पदानि येषां ते श्वापदाः।

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्रयः ।
सीमानः प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसो यास्वयं
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते॥16॥

अन्वय – सीमान: क्वचित् निष्कूजस्तिमिता: क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वना: स्वच्छासुप्तगभीरभोग-भुजगश्वासप्रदीप्ताग्नय: प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भस: (सन्ति), यासु तृष्यद्भि: प्रतिसूर्यकै: अयम् अजगरस्वेदद्रव: पीयते ॥16 ॥

अनुवाद – वन के सीमा-क्षेत्रों में कहीं पक्षी आदि के भी शब्द न होने के कारण निस्तब्धता छायी हुई है, कहीं जानवरों के भयंकर शब्द हो रहे हैं, कहीं स्वेच्छा से सोये हुए विशालकाय सर्पों की साँस से अग्नि प्रज्वलित हो रही है और कहीं गड्ढों के बीच में जल की अतिशय न्यूनता दिखाई दे रही है, जहाँ प्यासे गिरगिट अजगरों के पसीने का पानी पी रहे हैं॥16 ॥

टिप्पणी – निष्कूज – शब्दशून्य। स्तिमित–निश्चल। गभीरभाग–अपरिमेय शरीर वाले। 'भोग: सुखे घने चाहे: शरीरफणयोरपि' इति विश्व:। 'अहे: शरीरं भोग: स्यात्' इत्यमर:। प्रदर–गड्ढा। 'प्रदर: श्वभ्रमीतयो:' इत्यमर:। विरलस्वल्पाम्भस: – अत्यन्त न्यून जल वाले। 'विरल' की जगह 'विलसत्' पाठ भी कहीं दिखाई देता है। वहाँ प्रकाशमान अर्थ होगा। प्रतिसूर्यक–गिरगिट। 'सरट: कृकलास: स्यात् प्रतिसूर्यशयानकौ' इति हलायुध:। यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है। यह शार्दूलविक्रीडित छंद है॥16 ॥

राम: –

पश्यामि च जनस्थानं भूतपूर्वखरालयम्।
प्रत्यक्षानिव वृत्तान्तान्पूर्वाननुभवामि च।17।

अन्वय – भूतपूर्वखरालयं जनस्थानं पश्यामि च, पूर्वान् वृत्तान्तान् प्रत्यक्षान् इव अनुभवामि च ॥17 ॥

अनुवाद – राम – मैं पहले के खर राक्षस के निवास स्थान को देख रहा हूँ और पूर्वकालिक वृत्तान्तों का प्रत्यक्ष की तरह अनुभव भी कर रहा हूँ॥17 ॥

टिप्पणी – भूतपूर्व = पहले का। पूर्वं भूतो भूतपूर्व:, 'सुप्सुपा' इति समास:। 'भूतपूर्वे चरट्' इति निर्देशाद्भूतशब्दस्य पूर्वनिपात:। इस श्लोक में क्रियासमुच्चय तथा भाविक अलंकारों में अंगागिभाव संबंध के कारण संकर अलंकार है। भाविक अलंकार का लक्षण साहित्यदर्पण में इस प्रकार है–'अद्भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याथ भविष्यत:। यत्प्रत्यक्षायमाणत्वं तद्भाविकमुदाहृतम्॥' यहाँ भी अतीत शूर्पणखा आदि के वृत्तान्तों का प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर की तरह निर्देश होने के कारण भाविक अलंकार है॥17 ॥

(सर्वतोऽवलोक्य) प्रियारामा हि वैदेह्यासीत्। एतानि नाम कान्ताराणि। किमत: परं भयानक स्यात्? (सास्रम्)

(सब ओर देखकर) जानकी को वन प्यारा था। ये महारण्य हैं। इससे बढ़कर भयंकर वस्तु क्या होगी? अर्थात् जिन वनों में सीता के साथ आमोद-प्रमोदपूर्वक भ्रमण किया था, वहीं आज बिना सीता के भ्रमण कर रहा हूँ, इससे बढ़कर दु:ख की बात क्या होगी? (आँखों में आँसू भर कर)

टिप्पणी – प्रियारामा – आरमति यस्मिन् इति आ रम् + घञ् अधिकरणे = आराम:, प्रिय: = प्रीतिकर: आरामो = वनं यस्या: सा। यहाँ आरामपद वनमात्र का उपलक्षक है। कान्तार–महावन। 'कान्तारोऽस्त्री महारण्ये विले दुर्गमवर्त्मनि' इत्यमर:।

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु।
इतीवारमतेहासौ स्नेहस्तस्या: स तादृश: ॥18 ॥

अन्वय – त्वया सह मधुगन्धिषु वनेषु निवत्स्यामि इति इव असौ इह अरमत। तादृश: तस्या: स: स्नेह: ॥18 ॥

अनुवाद – आपके साथ पुष्प-रसों की गंध वाले वनों में निवास करूँगी किन्तु आपके बिना अयोध्या में भी रहना नहीं चाहूँगी–इस प्रकार कहती हुई सीता यहाँ रमण करती थीं। क्योंकि वैसा उनका वह प्रेम था जिससे वे मेरे साथ जंगल में भी मंगल मनाया करती थीं ॥18॥

टिप्पणी – मधुगन्धिषु – मधुनः पुष्परसस्य गन्धः मधुगन्धः, सः एषु अस्ति इति मधुगन्धीनि, तेषु।

न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥19॥

अन्वय – यो जनो यस्य प्रियः (सः) किञ्चित् न कुर्वाणोऽपि सौख्यैर्दुःखानि अपोहति, हि तत् तस्य किमपि द्रव्यम् ॥19॥

अनुवाद – जो व्यक्ति जिसका प्रिय है, वह उसके लिए कुछ न करते हुए भी अवलोकन, सम्भाषण आदि जन्य सुखों द्वारा उसके दुःखों को दूर करता है, क्योंकि वह प्रिय पात्र उस प्रेमी के लिए अनिर्वचनीय अमूल्य धन होता है जिसके लाभमात्र से दुःखों का नाश होता है। सीता भी मेरी ऐसी ही प्रियपात्र थीं ॥19॥

टिप्पणी – सौख्यैः–सुखमेव इति सुख + ष्यञ् स्वार्थे = सौख्यम्। किमपि–यहाँ अपि शब्द अनिर्वचनीयता का अर्थ देता है। तुलनीय–'स्फुरतु हृदये कोऽपि पुरुषः', 'किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयेथे'। इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार की स्थिति परस्पर सापेक्ष होने के कारण संकर अलंकार है ॥19॥

शम्बूकः – तदलमेभिर्दुरासदैः। अथैतानि मदकलमयूरकण्ठकोमलच्छविभिरवकीर्णानि पर्यन्तैरविरलनिविष्टनीलबहुलच्छायातरुषण्डमण्डितान्यसम्भ्रान्तविविधमृगयूथानि पश्यतु महानुभावः प्रशान्तगम्भीराणि मध्यमारण्यकानि।

अनुवाद – शम्बूकः – तब इन दुर्गम वनों को देखने की आवश्यकता नहीं है। भगवन् आप इन प्रशान्त एवं गम्भीर मध्यवर्ती वनों को दखें जो हर्ष से अव्यक्त मधुर शब्द करते हुए मयूरों के गले की भाँति स्निग्ध कान्ति वाले निकटवर्ती प्रदेशों से व्याप्त हैं, सघनता से अवस्थित श्यामल तथा प्रचुर छाया वाले वृक्ष-समूहों से शोभासम्पन्न हैं और निर्भयतापूर्वक विचरण करने वाले अनेक प्रकार के मृग-समूहों से पूर्ण हैं।

टिप्पणी – दुरासदैः = दुर्गम। दुःखेन आसद्यते चक्षुषा गृह्यते इति दुरासदानि तैः, दूर्-आ सद् + खल् 'ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राऽकृच्छ्रार्थेषु खल्' इत्यनेन। छायातरवः–छायाप्रधानाः तरवः, 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्' इत्यनेन मध्यमपदलोपी समासः।

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत्-
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज -
स्खलनमुखरभूरिस्त्रोतसो निर्झरिण्यः ॥20॥

अन्वय – इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत्प्रसवसुर भिशीतस्वच्छतोयाः फलभरपरिणामा-श्यामजम्बूनिकुञ्जस्खलनमुखरभूरिस्त्रोतसोनिर्झरिण्यो वहन्ति ॥20॥

अनुवाद – यहाँ नदियाँ बहती हैं, जिनके शीतल और निर्मल जल मदमत्त पक्षियों से व्याप्त वेतसलताओं के पुष्पों से महक रहे हैं और जो फल-समूह के पक जाने के कारण काले दिखने वाले सघन जंबू वृक्षों से टकरा कर शब्दायमान होने वाले अनेक सोतों से युक्त हैं ॥20॥

टिप्पणी – निर्झरिण्यः – नदियाँ। 'कूलङ्कप्रा निर्झरिणी रोधोवक्रा सरस्वती' इत्यमरः। वहन्ति– बहती हैं। यद्यपि वह् धातु सकर्मक हैं; किन्तु यहाँ 'धातोरर्थान्तरे वृत्तेर्धात्वर्थेनोपसंग्रहात्। प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका किया।' इस नियम के बल से अर्थान्तरवृत्तिता केकारण अकर्मकहै। इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार है। यह मालिनी छंद है॥20॥

अपि च,

और भी,

दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना-
मनुरसितगुरूणि स्त्यानमम्बूकृतानि।
शिशिरकटुकषायः स्त्यायते शल्लकीना-
मिभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः॥21॥

अन्वय – अत्र कुहरभाजा भल्लूकयूनाम् अनुरसितगुरूणि अम्बूकृतानि स्त्यान दधति। शल्लकीनां शिशिरकटुकषायः इभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः स्त्यायते॥21॥

अनुवाद – यहाँ गुफाओं में रहने वाले जवान रीछों के थूकने के शब्द प्रतिध्वनि से फैलकर वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं और शल्लकी लताओं के पर्वों के हाथियों द्वारा कुचले एवम् इधर-उधर फेंके जाने पर उनके शीतल, तीक्ष्ण तथा कसैले रस की गंध बढ़ रही है॥21॥

टिप्पणी – अम्बूकृतानि–थुत्कारात्मक शब्द। 'अम्बूकृतं सनिष्ठीवम्' इत्यमरः। अनम्बु अम्बु कृतानि इति अम्बु + च्वि कृ + क्त कर्मणि। शल्लकीनाम् = गजभक्ष्या लता। 'गन्धिनी गजभक्ष्या तु सुवहा सुरभी रसा। महेरुणा कन्दुरुकी शल्लकी ह्लादिनीति च॥' इत्यमरः। यहाँ थुत्कार की वृद्धि के प्रति प्रतिध्वनिगुरुत्व हेतु है। अतः पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है।

रामः – (सबाष्पस्तम्भम्) भद्र! शिवास्ते पन्थानो देवयानाः। प्रलीयस्व पुण्येभ्यो लोकेभ्यः।

राम – (आँसू रोक कर) सौम्य! तुम्हारे देवयान नामक मार्ग मंगलमय हों। पवित्र लोकों का अनुभव करने के लिए तत्पर हो जाओ।

टिप्पणी – सबाष्पस्तम्भम्–बाष्पस्य स्तम्भः निरोधः तेन सह। यहाँ आँसू गले में है न कि आँखों में। तुलना कीजिये – 'कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्'– अभिज्ञानशाकुन्तल। देवयानः–देवताओं क मार्ग, देवयान नामक मार्ग। इस मार्ग से जाने वाले को ब्रह्म की प्राप्ति होती है–'अग्निर्ज्योतिविरहः शुल्कः षण्मासा उत्तरायणम्। तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।' गीता। लोकेभ्यः–लोको में जाने के लिए। 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' इससे चतुर्थी हुई। 'देवयानं प्रतिपद्यस्व' इस पाठभेद में 'विमान को प्राप्त करो' यह अर्थ होगा।

शम्बूकः – यावत्पुराणब्रह्मर्षिमगस्त्यमभिवाद्य शाश्वतं पदमनुप्रविशामि। (इति निष्क्रान्तः।)

शम्बूक – पुराने ब्रह्मर्षि अगस्त्य को प्रणाम कर सनातन ब्रह्म लोक में प्रवेश करता हूँ। (यह कहकर चला गया)

टिप्पणी – यावत् = यह शब्द अवधारणार्थक अव्यय है। अतः 'अभिवाद्य यावत्' इसका अर्थ करना चाहिये–'प्रणाम करके ही'। शाश्वत–नित्य। पद–स्थान। ब्रह्मलोक को नित्य माना गया है, वहाँ से पतन नहीं होता। जैसा कि देवीपुराण में कहा है–'सत्यस्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्भववासिनाम्। ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणम्॥'

रामः—

एतत् पुनर्वनमहो कथमद्य दृष्टं
यस्मिन्नभूम चिरमेव पुरा वसन्तः।
आरण्यकाश्च गृहिणश्च रताः स्वधर्मे
सांसारिकेषु च सुखेषु वयं रसज्ञाः॥22॥

अन्वय – अहो! अद्य एतत् वनं पुनः कथं दृष्टं, यस्मिन्। पुरा चिरमेव वसन्तः आरण्यकाश्च गृहिणश्च वयं स्वधर्मे रताः, सांसारिकेषु सुखेषु रसज्ञाश्च अभूम॥22॥

अनुवाद – राम – प्रसन्नता की बात है! आज इस वन को फिर कैसे देखा? जहाँ चिरकाल तक वास करते हुए हम लोगों ने वानप्रस्थ एवं गृहस्थ दोनों रूपों में स्व-स्व-धर्मपरायण होकर सांसारिक सुखों का आनन्द लिया था॥22॥

टिप्पणी – आरण्यकाः-अरण्ये वसन्ति इति अरण्य + वुञ् शेषे = आण्यकाः = यतिनः। सांसारिकेषु-संसारे भवानि इति संसार + ठञ् (अध्यात्मादित्वात्) = सांसारिकाणि, तेषु। यहाँ वनवास रूप कार्य करते हुए राम आदि द्वारा गृहस्थ-धर्मपालन आदि कार्य के दैवात् सम्पन्न होने से विशेषालंकार है। यह वसन्ततिलका छंद है॥22॥

एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा-
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
आमञ्जुवञ्जुललतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीपनिचुलानि सरित्तटानि॥23॥

अन्वय – विरुवन्मयूरा एते त एव गिरयः, मत्तहरिणानि तानि एव वनस्थलानि, आमञ्जुवञ्जुललतानि नीरन्ध्रनीपनिचुलानि अमूनि तानि च सरित्तटानि (सन्ति)॥23॥

अनुवाद – ये वे ही पर्वत हैं, जिन पर मयूर शब्द कर रहे हैं। ये वे ही वनस्थल हैं, जहाँ मत्त मृग विचर रहे हैं और ये वे ही नदी-तट हैं, जिन पर अतिशय मनोहर अशोक वृक्ष, लतायें, घने कदम्ब तथा वेतसलतिकायें शोभित हो रही हैं॥23॥

टिप्पणी – वञ्जुल – अशोक। परन्तु यह कई वृक्षों का नाम है। यथा – 'वञ्जुलः पुंसि तिनिशे वेतसाऽशोकयोरपि।' इति मेदिनी। निचुल – स्थल पर उगने वाली वेतसलता। 'वाणीरे कविभेदे स्यान्निचुलः स्थलवेतसे' इति शब्दार्णवः। इस श्लोक में तुल्ययोगिता अलंकार है। यह भी वसन्ततिलका छंद है॥23॥

मेघमालेव यश्चायमारादपि विभाव्यते।
गिरिः प्रस्रवणः सोऽयमत्र गोदावरी नदी॥24॥

अन्वय – अयं यः आरात् अपि मेघमाला इव विभाव्यते, सः अयम् प्रस्रवणः गिरिः, अत्र गोदावरी नदी॥24॥

अनुवाद – यह जो दूर से भी मेघ-माला की तरह प्रतीत हो रहा है, वह प्रस्रवण नामक पर्वत है। यहाँ इसकी तलहटी में गोदावरी नदी प्रवाहित रही है॥24॥

टिप्पणी – आरात्-दूर से। 'आराद्दूरसमीपयोः' इत्यमरः। अत्र-अधिकरणे सप्तमी। यहाँ आधार 'गंगायां घोषः' की तरह सामीप्य को सूचित करता है। यहाँ उपमा अलंकार स्पष्ट ही है॥24॥

अस्यैवासीन्महति शिखरे गृध्रराजस्य वास
स्तस्याधस्ताद्वयमपि रतास्तेषु पर्णोटजेषु।
गोदावर्याः पयसि विततानोकहश्यामलश्री-
रन्तः कूजन्मुखरशकुनो यत्र रम्यो वनान्तः ॥25॥

अन्वय – अस्य एव महति शिखरे गृध्रराजस्य वासः आसीत्। तस्य अधस्तात् वयम् अपि तेषु पर्णोटजेषु रताः। यत्र गोदावर्याः पयसिः विततानोकहश्यामलश्रीः मुखरशकुनः अन्तःकूजन् (इव) रम्यः वनान्तः (अस्ति) ॥25॥

अनुवाद – इसी प्रस्रवण गिरि के अति ऊँची चोटी पर गृध्रराज जटायु का निवास-स्थान था। उसके नीचे हम लोग भी उन पर्णकुटियों में आसक्त होकर रहते थे, जहाँ गोदावरी के जल में फैले हुए वृक्षों के कारण श्यामल कान्ति वाला, शब्दायमान पक्षियों वाला और अतएव मानो भीतर शब्द करने वाला मनोहर वनप्रान्त शोभित हो रहा है॥25॥

टिप्पणी – वासः-उष्यते अस्मिन् इति वस् + घञ् अधिकरणे। अधस्तात्-अधरस्मिन् इति अध + अस्ताति, 'अस्ताति च' इति सूत्रेण अधरस्य अधादेशः। रताः-रम् + क्त कर्तरि वर्तमाने। रममाणा इत्यर्थः। रस्य अधादेशः। रताः-रम् + क्त कर्तरि वर्तमाने। रममाणा इत्यर्थः। अनोकह = वृक्ष। 'अनोकहः कुटः सालः पलाशी द्रुद्रमागमाः' इत्यमरः। अनसः शकटस्य अकं गतिं हन्ति इति अनोकहः 'अन्येष्विपि दृश्यते' इति डप्रत्ययः। कहीं 'विनतश्यामलानोकहश्रीः' पाठ है। उसका अर्थ होगा-'फलों के भार से झुके हुए श्यामल वृक्षों की शोभा से सम्पन्न'। वनान्त = वनस्वरूप या वनप्रान्त। यहाँ 'अन्त' शब्द स्वरूप या प्रान्त का बोधक है। 'अन्तः स्वरूपे निकटे प्रान्ते निश्चयनाशयोः।' इति हैमः। इस श्लोक में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है, चूंकि वन का कूजना असंभव है। अतः 'कूजन्' की जगह 'कूजन्निव' अर्थ करना होगा। यह मन्दाक्रान्ता छंद है॥25॥

अत्रैव सा पञ्चवटी, यत्र निवासेन विविधविस्रम्भातिप्रसङ्गसाक्षिणः प्रदेशाः, प्रियाया प्रियसखी च वासन्ती नाम वनदेवता। किमिदमापतितमद्य रामस्य? सम्प्रति हि-

अनुवाद – यहीं वह पंचवटी है, जहाँ हमारे विश्वासपूर्वक किये गये अनेक प्रकार के विलासों के साक्षात् द्रष्टा ये प्रदेश हैं और यहीं प्रियतमा सीता की प्यारी सहेली वासन्ती नामक वनदेवी थी। आज राम को यह क्या आ पड़ा या राम के सामने यह क्या उपस्थित हो गया? अर्थात् प्रियतमा के साथ जिन चीजों को आनन्दपूर्वक देखा था, वही आज उनके बिना अकेले देखने में पीड़ाकारक प्रतीत हो रही हैं।

टिप्पणी – विस्रम्भ = विश्वास। 'समौ विस्रम्भविश्वासौ' इत्यमरः। साक्षी-'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' इति इनिप्रत्ययेन निपातनात् सिद्धम्।

चिरोद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः
कुतश्चित्संवेगान्निहित इव शल्यस्य शकलः।
व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः
पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव॥26॥

अन्वय – चिरोद्वेगारम्भी प्रसृतः तीव्रो विषरस इव, कुतश्चित् संवेगात् निहितः शल्यस्य शकल इव, हृन्मर्मणि रूढग्रन्थिः स्फुटितो व्रण इव, पुराभूतः शोको नूतन इव पुनः मां विकलयति॥26॥

अनुवाद – बहुत समय तक उद्वेग उत्पन्न करने वाले सर्वत्र फैले हुए दारुण विषरस की तरह, कहीं से अत्यन्त वेगपूर्वक (आकर हृदय में) घुसे हुए शंकु के टुकड़े की तरह और हृदय के मर्मस्थान में उत्पन्न संधि जोड़ वाले फूटे हुए फोड़े की तरह पुराना शोक मानो नया होकर फिर मुझे व्याकुल कर रहा है॥26॥

टिप्पणी – शल्य = शंकु। 'वा पुंसि शल्यं शङ्कुर्ना' इत्यमरः। विकलयति–विगता कला अस्य इति विकलः, विकलं करोति इति विकल + णिच् (नामधातु) + लट्–तिप्। इस श्लोक में चार क्रियोत्प्रेक्षा अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने के कारण संसृष्टि अलंकार है। यह शिखरिणी छंद है॥26॥

तथाविधानपि तावत्पूर्वसुहृदो भूमिभागान् पश्यामि। (निरूप्य) अनवस्थितो भूतसन्निवेशः। तथा हि–

अनुवाद – वैसे (शोककारक) होत हुए भी पहले के बंधुवत् आचरण करने वाले (इन) भू खंडों को तब तक देखता हूँ। (अवलोकन कर) (यहाँ की) वस्तुओं की स्थिति में परिवर्तन हो गया है। जैसे कि–

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति॥27॥

अन्वय – यत्र पुरा सरितां स्रोतः तत्र अधुना पुलिनम्, क्षितिरुहां घनविरलभावः विपर्यासं यातः। बहोः कलात् दृष्टम् इदं वनम् अपरमिव मन्ये, शैलानां निवेशः इदं तत् इति बुद्धिं द्रढयति॥27॥

अनुवाद – पहल जहाँ नदियों का प्रवाह था, वहाँ इस समय बालुओं का तट बना हुआ है। वन जहाँ सघन थे वहाँ विरल और जहाँ विरल थे वहाँ सघन हो गये हैं। चिरकाल के उपरान्त देखा गया यह वन दूसरे वन की तरह लग रहा है। परन्तु पर्वतों की स्थिति 'यह वही वन है' इस निश्चयात्मक ज्ञान को दृढ़ कर रही है अर्थात् नदी, वृक्ष आदि के अन्यथा स्थित होने पर भी पूर्वदृष्ट पर्वतों को ज्यों के त्यों देख कर 'यह वही वन है' ऐसा मैं समझ रहा हूँ॥27॥

टिप्पणी – क्षितिरुहाम्–क्षितौ रोहन्ति इति क्षिति रुह् + क्विप् कर्तरि = क्षितिरुहः, तेषाम्। द्रढयति–दृढं करोति इति दृढ + णिच् (नामधातु) + लट्–तिप्, दृढ इत्यस्य द्रढादेशः। यहाँ दूसरे वन की तरह ज्ञान होने के प्रति पूर्वार्ध के दो वाक्य हेतु हैं, अतः वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है और 'परमिव' से उत्प्रेक्षा अलंकार है। फिर इन दोनों अंगांगिभाव सम्बन्ध होने के कारण सकर अलंकार हो जाता है॥27॥

हन्त हन्त! परिहरन्तमपि मां पञ्चवटी स्नेहाद्बलादाकर्षतीव। (सकरुणम्)।

हाय, हाय! परित्याग करते हुए भी मुझको पञ्चवटी मानों स्नेह से बलपूर्वक खींच रही है। (करुणा के साथ)।

टिप्पणी – हन्त हन्त – यहाँ अतिशय खेद प्रकट करने के लिये वीप्सा में द्विरुक्ति हुई है॥ परिहरन्तमपि = छोड़ते हुए भी अर्थात् पंचवटी छोड़कर जाते हुए भी।

यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे
यत्सम्बन्धिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयत।

एकः सम्प्रति नाशितप्रियतमस्तामेव रामः कथं
पापः पंचवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसम्भाव्य वा ॥28 ॥

अन्वय – यस्यां यथा स्वे गृहे मया तया सह ते दिवसा नीताः, दीर्घाभिः यत्सम्बन्धिकथाभिः एव सततम् आस्थीयत। सम्प्रति नाशितप्रियतमः एकः पापः रामः तामेव पंचवटीं कथं विलोकयतु वा असम्भाव्य गच्छतु? ॥28 ॥

अनुवाद – जिस पंचवटी में अपने घर की तरह मैंने सीता के साथ वे वनवासकालीक दिन बिताये और अयोध्या में जिस पंचवटी के विषय में सदा लम्बे वार्तालाप करके ही अवस्थान किया, उसी पंचवटी को इस समय प्रियतमा पत्नी का नाश करने वाला अकेला पापी राम कैसे देखे या उसका अनादर करके कैसे जाय? ॥28 ॥

टिप्पणी – यत्सम्बन्धिकथाभिः – यस्याः सम्बन्धः यत्सम्बन्धः, स अस्ति आसु इति यत्सम्बन्ध + इनि = यत्सम्बन्धिन्यः, तादृश्यः कथाः कर्मधारय समासः, ताभिः करणे तृतीया। यहाँ राम के पापी होने में पत्नी का विनाशकर हेतु है, अतः काव्यलिंग अलंकार है और 'यथा स्वे गृहे' इसमें उपमा अलंकार है। फिर इन दोनों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने के कारण संसृष्टि अलंकार उत्पन्न होता है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छंद है ॥28 ॥

(प्रविश्य) (प्रवेश कर)

शम्बूकः – जयतु देवः। भगवानगस्त्यो मत्तः श्रुतसन्निधानस्त्वामाह–'परिकल्पितावरणमङ्गला प्रतीक्षते वत्सला लोपामुद्रा, सर्वे च महर्षयः। तदेहि। सम्भावयाऽस्मान्। अथ प्रजविना पुष्पकेण स्वदेशमुपगत्याश्वमेधसज्जो भव' इति।

अनुवाद – शम्बूक – महाराज की जय हो। भगवान अगस्त्य ने मुझसे आपका निकट आगमन सुनकर आपसे कहा है–'स्नेहशीला लोपामुद्रा आरती आदि की तैयारी करके आपकी प्रतीक्षा कर रही है और सकल महर्षिगण भी प्रतीक्षा में है। इसलिए पधारिये, हम लोगों को कृतार्थ कीजिये। अनन्तर आप अत्यन्त वेगशाली पुष्पक विमान से अपने देश पहुँच कर अश्वमेधयज्ञ के अनुष्ठान में तत्पर हो जाइये।

रामः – यथाज्ञापयति भगवान्।

राम – भगवान् की जैसी आज्ञा।

शम्बूकः – इत इतो देवः।

शम्बूक – महाराज! इधर से पधारें, इधर से।

रामः– (पुष्पकं प्रवर्तयन्) भगवति पंचवटि! गुरुजनादेशोपरोधात्क्षणं क्षम्यतामतिक्रमो रामस्य।

राम – (पुष्पक विमान को चलाते हुए) देवि पंचवटि! गुरुजन की आज्ञा के अनुरोध से क्षणभर के लिये राम का अतिक्रमण छोड़कर जाना क्षमा करो।

शम्बूकः– देव! पश्य–

शम्बूक – महाराज! देखें–

गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघुत्कारवत्कीचक ।
स्तम्बाडम्बरमूकमौकलिकुलः क्रौञ्चाभिधोऽयं गिरिः।
एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै–
रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः ॥29 ॥

अन्वय – गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाधुत्कारवत्कीचकस्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चाभिधः अयं गिरिः। एतस्मिन् प्रचलतां प्रचलाकिनां कूजितैः उद्वेजिताः कुम्भीनसाः पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु उद्वेल्लन्ति ॥29 ॥

अनुवाद – यह क्रौंच नामक पर्वत है। इस पर गुञ्जायमान कुंजकुटीरों में रहने वाले उल्लुओं के घू-घू शब्द मिश्रित बाँसों के गुच्छों के ऊँचे शब्दों से डर कर कौए चुपचाप बैठे हुए हैं और इतस्ततः भ्रमणशील मयूरों के केका-रवों (अव्यक्त शब्दों) से घबड़ाये हुए विषैले साँप पुराने चंदनवृक्षों के तनों पर इधर-उधर रेंग रहे हैं ॥29 ॥

टिप्पणी – कुञ्ज = लता आदि से घिरा या ढकज्ञा हुआ स्थान। 'निकुञ्ज-कुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे' इत्यमरः। कुटीर = छोटी कुटया। 'अल्पा कुटी कुटीरः यात्' इत्यमरः। कुटी + र 'कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः' इत्यनेन। कौशिकघटा = उल्लुओं का झुंड। 'महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः' इत्यमरः। घुत्कारवत् = घू-घू शब्द वाले। कीचक = वह बाँस जो वायु के सम्पर्क से शब्द उत्पन्न करता हो। 'कीचका' वेणवस्ते स्युर्ये स्वनन्तयनिलोद्धताः' इत्यमरः। आडम्बर = शब्द। 'आडम्बरस्तु दर्पे स्यात् शब्दे तूर्यस्वनेऽपि च' इति रत्नकोशः। मौकुलि = कौआ। 'मौकुलिः काकः' इति हेमचन्द्रः। प्रचलाकिनाम् = मोरों का। 'प्रचलाकिसितापाङ्गशिखाबलगतव्रता' इति त्रिकाण्डशेषः। रोहिणतरु = चंदनवृक्ष। 'रोहिणश्चन्दनद्रुमः' इति हारावली। कुम्भीनसाः = भयंकर साँप। 'कुम्भीनसः क्रूरसर्पे स्त्रियां लवणमातरि।' इति मेदिनी। उद्वेल्लन्ति = इधर-उधर चलायमान हो रहे हैं। कारण यह है कि पुराने चंदन के वृक्ष में बड़ी सुगंधि होती है, जिससे साँप उसे छोड़ना नहीं चाहते हैं, पर मोर के डर से भागना भी चाहते हैं। उत्पूर्वक 'वेल्ल् चलने' धातु के लट् लकार-प्रथमपुरुष-बहुवचन का यह रूप है।

इस श्लोक में मुख्यरूप से स्वभावोक्ति अलंकार है, किन्तु विशेषोक्ति एवं रूपकअलंकार भी हैं तथा इन तीनों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार हो जाता है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छंद है ॥29 ॥

अपि च,

और भी,

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः।
अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलै -
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः ॥30 ॥

अन्वय – कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः त एते दाक्षिणाः क्षोणीभृतः। अन्योऽन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलैः उत्तालाः त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः ॥30 ॥

अनुवाद – ये वे दक्षिण दिशा के पर्वत हैं, जिनकी गुफाओं में गोदावरी के जल कल-कल शब्द कर रहे हैं तथा जिनकी चोटियाँ अपने अग्रभाग पर बादलों के ठहरने के कारण नील वर्ण की दिख रही हैं; और ये वे अगाध जल वाली पवित्र नदियों के संगम हैं, जो पारस्परिक आघातों से अत्यंत चंचलतापूर्वक उठती हुई महातरंगों के कोलाहल के कारण भयावह दिखाई दे रहे हैं ॥30 ॥

टिप्पणी – अन्योऽन्यप्रतिघात-प्रति हन् + घञ् भावे = प्रतिघातः, अन्यस्य अन्यस्य प्रतिघातः इति अन्योऽन्यस्य प्रतिघातः = अन्योऽन्यप्रतिघातः 'कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्' इति वार्तिकात् सिद्धम्। उत्तालाः = भयंकर। 'उत्ताल उत्कटे श्रेष्ठे विकराले प्लवङ्गमे' इति मेदिनी। उद्गतास्तालात् उत्तालाः। सरित्सङ्गमाः = नदियों के सङ्गम। यहाँ 'कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते' इस न्याय से संयुक्त नदियाँ, ऐसा अर्थ समझना चाहिये। इस श्लोक में शिखरों के अपने वर्ण का

परित्याग कर मेघों के श्यामतागुण ग्रहण करने के कारण तद्गुण अलंकार है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छंद है ॥30 ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।) (इसके बाद सब चले जाते हैं।)

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते पञ्चवटीप्रवेशो नाम द्वितीयोऽङ्कः ॥2 ॥

महाकवि भवभूतिरचित उत्तररामचरित नाटक में 'पंचवटीप्रवेश' नामक दूसरा अंक समाप्त ॥2 ॥

2.4 पारिभाषिक शब्दावली

नान्दी – नन्दयति प्रसादयति सामाजिकानां मनांसि इति नान्दी। अथवा नन्दन्ति प्रसीदन्ति देवता अस्यां सा नान्दी। जो देवता को प्रशन करें वह नान्दी है।

सूत्र – नाटकीय वस्तु की 'सूत्र' संज्ञा है

सूत्रधार – नाटक का प्रबन्धक सूत्रधार कहलाता है

पदवाक्यप्रमाणज्ञ-पद-व्याकरणशास्त्र, वाक्य-मीमांसाशास्त्र एवं प्रमाण-प्रत्यक्ष आदि प्रमाण अर्थात् न्यायशास्त्र के ज्ञ अर्थात् विशारद।

प्रयोग - का अर्थ है - अभिनय।

प्रस्तावना : प्रस्तावयति प्रतिपाद्य विषयमुत्थापयति या वाक्यावली सा। वह वाक्यावली जो विषय को स्थापित करती है

स्वातन्त्र्यम् - स्वम् आत्मा तन्त्रं प्रधानं यस्य स स्वतन्त्रः, तस्य भावः कर्म वा स्वातन्त्र्यम्, स्वतन्त्र + ष्यञ्। जिसकी आत्मा ही शासन है वह

2.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोधगम्य प्रश्न

अधोलिखित श्लोकों का ससन्दर्भ अनुवाद करते हुए तत्सम्बन्धी व्याकरणात्मक टिप्पणी प्रस्तुत कीजिये–

1. विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत–
   ......येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ॥(1-9)
2. अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना
   ......रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥ (1-28)
3. विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
   ......विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च समीलयति च ॥ (1-35)
4. अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्–
   .....भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥ (1-39)
5. प्रियप्रायावृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
   .....रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥ (2-2)
6. वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
   .....प्रभवति शुचिर्विम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः ॥ (2-4)
7. स्निग्धश्यामा क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षाः।
   .....सन्दृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः ॥ (2-14)

8. पुरा यत्र स्रोत: पुलिनमधुना तत्र सरितां
.....निवेश: शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति॥ (2-27)

9. एते ते कुहरेषु गद्गद्नदद्गोदावरीवारयो
.....रुत्तालास्त इमे गभीरपयस: पुण्या:सरित्सङ्गमा:॥ (2-30)

2.6 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने दृश्य काव्य की प्रभावोत्पादकता को समझा । उत्तररामचरितम् नाटक के आदर्श पात्रों के अनुकरणीय व्यक्तित्व को हृदयङ्गम किया । उत्तररामचरितम् नाटक के आदर्श पात्रों के व्यक्तित्व जीवन को उत्कृष्ट बनाना की कला का ज्ञान हुआ । संस्कृत भाषा के साथ स्त्रीपात्रों के संवादों में प्रयुक्त प्राकृत भाषा का भी परिज्ञान किया । उत्तररामचरितम् में करुण रस को अङ्गीरस क्यों माना जाता है ? इस तथ्य पर विचार किया ।

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास,पं. बलदेव उपाध्याय,शारदा प्रकाशन, वाराणसी, 1995.
2. संस्कृत सुकवि समीक्षा,पं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1963.
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास,प्रो. शिवबालक द्विवेदी, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर, 1988.
4. उत्तररामचरितम्ता,रिणीश झा, रामनारायण बेनीप्रसाद प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006.
5. उत्तररामचरितम्,'इन्दुमती' कपिलदेवगिरि, चौखम्बा पकाशन वाराणसी, 1987.
6. उत्तररामचरितम्, ब्रह्मानन्द शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ, 2008.
7. उत्तररामचरित की शास्त्रीय समीक्षा,सत्यनारायण चौधरी, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1987.

इकाई - 3

उत्तररामचरितम् - तृतीय एवं चतुर्थ अंक

इकाई की रुपरेखा

3.0 उद्देश्य

'उत्तररामचरितम्' नाटक के तृतीय एवं चतुर्थ अङ्क के अध्ययन से काव्य के अन्तर्गत दृश्य काव्य की प्रभावोत्पादकता को समझ कर प्रकृत नाटक के आदर्श पात्रों के अनुकरणीय व्यक्तित्व को हृदयङ्गम करके उनका अनुगामी होकर जीवन को उत्कृष्ट बनाना संस्कृत भाषा के साथ स्त्रीपात्रों के संवादों में प्रयुक्त प्राकृत भाषा का भी परिज्ञान करना एवं करुण रस को अङ्गीरस मानने के कारणों पर सर्वविध चिन्तन करना।

3.1 प्रस्तावना

यहाँ 'उत्तररामचरितम्' के मूल कथानक को ध्यान में रखकर उसमें चमत्कृति उत्पन्न करने की दृष्टि से भवभूति ने जो परिवर्तन, परिवर्धन एवं कतिपय काल्पनिक पात्रों की मूर्तरूप दिया है उनका प्रत्येक दृष्टि से आकलन करते हुए नाटक की परिणति को प्रस्तुत किया गया है।

3.2 महाकवि श्रीभवभूतिप्रणीतम् उत्तररामचरितम् तृतीयोऽङ्कः (ततः प्रविशतिनदीद्वयम्)

एका - सखि मुरले! किमसि सम्भ्रान्तेव?

मुरला - सखि तमसे! प्रेषितास्मि भगवतोऽगत्स्यस्य पत्न्या लोपामुद्रया सरिद्वरां गोदावरीमभिधातुम् 'जानास्येव यथा वधूपरित्यागात्प्रभृति' -

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।।1।।

अन्वय - गभीरत्वात्, अनिर्भिन्नः अन्तर्गूढघनव्यथः, रामस्य, करुणः, रसः, पुटपाकप्रतीकाशः (अस्ति)।।1।।

तेन च तथाविधेष्टजनकष्टविनिपातजन्मना प्रकृष्टगद्गदेन दीर्घशोकसन्तानेन सम्प्रति परिक्षीणो रामभद्रः। तमवलोक्य कम्पितमिव कुसुमसमबन्धनं मे हृदयम्। अधुना च रामभद्रेण प्रतिनिवर्तमानेन नियतमेव पञ्चवटीवने वधूसहनिवासविस्रम्भसाक्षिणः प्रदेशा द्रष्टव्याः। तत्र च निसर्गधीरस्याप्येवं

विधायामवस्थायामतिगम्भीरा-भोगशोकक्षोभसंवेगात्पदे पदे महाप्रमादनि शोकस्थानानि शङ्कनीयानि। तद्भगवति गोदावरि! त्वया तत्रभवत्या सावधानया भवितव्यम्।

वीचीवातः सीकरक्षोदशीतैराकर्षद्भिः पद्मकिञ्जल्कगन्धान्।
मोहे मोहे रामभद्रस्य जीवं स्वैरं स्वैरं प्रेरितैस्तर्पयेति।।2।।

अन्वय : सीकरक्षोदशीतैः पद्मकिञ्जल्कगन्धान् आकर्षद्भिः, स्वैरं स्वैरं प्रैरितैः वीचीवातैः रामभद्रस्य मोह-मोहे जीवं तर्पय इति।।2।।

अनुवाद -

(तदनन्तर दो नदियों - 'तमसा' और 'मुरला' का प्रवेश होता है।) एक (तमसा) - सखि मुरले! घबराई हुई-सी क्यों हो?

मुरला - सखि तमसे! मुझे भगवान् अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने नदियों में श्रेष्ठ गोदावरी से यह कहने के लए भेजा है - ''तुम जानतो हो कि वधू (सीता) के परित्याग (के समय) से लेकर -''

(श्लोकार्थ) गम्भीरता के कारण (दूसरों के लिये) राम का अव्यक्त 'करुण रस' (उस) 'पुटपाक' के समान है, जिसमें अन्दर ही अन्दर तीव्र वेदना छिपी रहती है। आशय यह है कि राम गम्भीर हैं, इस कारण यद्यपि उनके हृदय में सीता-परित्याग की एक गूढ़ व्यथा सदैव रहती है तथापि वे उसे किसी के सामने प्रकट नहीं होने देते। 'पुटपाक' के समान ही उनके हृदय में एक वेदना सदा खटकती रहती है।

इस कारण प्रियतमा (सीता) पर आयी हुई उस घोर विपत्ति से उत्पन्न, अत्यन्त विह्वल बनाने वाले लम्बे शोक से अब रामभद्र बहुत कृशकाय हो गये हैं। उनको देखकर पुरुष के समान (कोमल) बन्ध वाला मेरा हृदय काँप-सा उठा है। इस समय रामभद्र लौटते हुए 'पञ्चवटी' में सीता के साथ अपने स्वच्छन्द विहारों के साक्षी प्रदेशों को अवश्य ही देखेङ्गे ऐसी दशा में बड़े भारी शोकावेग के कारण पग-पग पर असावधानताजन्य मूर्छा (आदि अनेक) अनर्थ सम्भव हैं। अतः भगवति गोदावरि! आपको सावधान रहना चाहिये।

(श्लोकार्थ) पूर्व-परिचित प्रदेशों को देखने से बार-बार मूर्च्छित रामभद्र को (गोदावरी) जल की छोटी-छोटी बूँदों से शीतल, मन्द-मन्द बहने वाले तथा 'कमल-केसर' का गन्ध लेकर उड़ने से सुरक्षित अपनी लहरों के समीर से प्रकृतिस्थ रखना।।2।।

टिप्पणी -

(1) अनिर्भिन्नो रसः - इस श्लोक में पुटपाक की तुलना से श्रीराम के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का स्पष्ट बोध हो जाता है। यहाँ उनकी गम्भीरता और भावुकता दोनों ही स्पष्ट हो रही है। ''**पुटपाक**'' - शब्द यहाँ आयुर्वेद का पारिभाषिक शब्द है। वैद्य लोग एक मिट्टी के पात्र में औषधि रख कर दूसरे पात्र से ढक देते हैं। उसके बाद उस मिट्टी का लेप कर आँच में रख देते हैं, जिससे अन्दर ही अन्दर औषधि खदक-खदक कर पक जाती है। वैधक की इस प्रक्रिया को ''पुटपाक'' कहा जाता है। यही स्थिति श्रीराम की है। सीताजी का वियोग उन्हें भीतर ही भीतर दुःखी कर रहा है। वे और किसी को अपना दुःख सुना नहीं सकते क्योंकि वे गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति हैं। **प्रतीकाशः** तुल्यः। साधारण समानश्च स्युरुत्तरपदे त्वमी। निभसंकाश-श्लोकनीकाशप्रतीकारोपमादयः इत्यमरः।

कोष :- 'सीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः' 'किञ्जल्कः केसरोऽस्त्रियाम्' मन्द स्वच्छन्दयो स्वैरम् इति चामरः।

तमसा -उचितमेव दाक्षिण्यं स्नेहस्य। सञ्जीवनोपायस्तु मूलत एव रामभद्रस्य सन्निहितः।

मुरला - कथमिव।

तमसा – तत्सर्वं श्रूयताम्। पुरा किल वाल्मीकितपोवनोपकण्ठात् परित्यज्य निवृत्ते लक्ष्मणे सीतादेवी प्राप्तप्रसववेदनमतिदुःखसंवेगादात्मानं गङ्गाप्रवाहे निक्षिप्तवती। तदैव तत्र दारकद्वयं च प्रसूता भगवतीभ्यां पृथ्वीभागीरथीभ्यामप्युभाभ्यामभ्युपपन्ना रसातलं च नीता। स्तन्यत्यागात्परेण दारकद्वयं च तस्य प्राचेतसस्य महर्षेर्गङ्गादेव्या समर्पितं स्वयम्।

मुरला – (सविस्मयम्।)

ईदृशानां विपाकोऽपि, जायते परमाद्भुतः।
यत्रोपकरणी भावमायात्येवंविधो जनः।।3।।

अन्वय – ईदृशानां, विपाकः, अपि, परमाद्भुतः, जायते, यत्र एवंविधः, जनः, उपकारणीभावम्, आयाति।।3।।

अनुवाद –

तमसा – (लोपामुद्रा का यह उदार) व्यवहार स्नेह के अनुरूप ही है। (किन्तु) राम के होश में लाने का मूल उपाय (सीता) तो समीप ही है।

मुरला – कैसे?

तमसा – वह सब कुछ सुनिये। (कुछ समय) पहले वाल्मीकि-आश्रम के पास से, सीता को छोड़कर लक्ष्मण के लौट जाने पर सीता देवी ने प्रसव-वेदना से अत्यन्त दुःखित होकर अपने को गङ्गा के प्रवाह में फेंक दिया। तभी उन्होंने वहाँ दो बालकों को जन्म दिया और पृथ्वी तथा भागीरथी इन दोनों ने अनुग्रह करके उनको रसातल पहुँचा दिया। माता का दूध छोड़ देने के बाद, गङ्गादेवी ने उन दोनों बालकों को स्वयं महर्षि वाल्मीकि को समर्पित कर दिया।

मुरला – (आश्चर्य सहित)–

(श्लोकार्थ) – ऐसे (सीता-राम-सदृश) महानुभावों का विषय परिणाम (विपत्ति भी) बड़ा विचित्र होता है जहाँ कि ऐसे (अलौकिक) गङ्गा आदि अलौकिक शक्ति भी सहायक होते हैं आशय यह है कि महानुभावों की विपदवस्था भी बड़ी विचित्र होती है। उनकी सहायता करने के लिए अलौकिक विभूतियाँ स्वतः आ जाती है। सीता गङ्गा जी में कूदी थीं डूबने के लिए परन्तु वहाँ उनके पुत्र उत्पन्न हो गये और गङ्गा एवं पृथ्वी ने स्वयं उनकी रक्षा भी की। यह विचित्र परिणाम नहीं तो और क्या है?।।3।।

टिप्पणी –

दाक्षिण्यम् – दक्षिणस्य भावो दाक्षिण्यम्। दक्षिण + ष्यञ्। 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' (पा. 5।1।112) इति ष्यञ्। ''दक्षिणे सरलोदारौ'' इत्यमरः। **प्रसूता** – प्र + सू + क्त कर्त्तरि। ''आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च'' (पा. 3। 4। 71) **रसातलम्** – रसायाः पृथिव्यास्तलम्। तल सात हैं – अतल वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल तथा पाताल। भूर्भमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा ''अधः स्वरूपयोरस्त्री तलम्'' इति चामरः। **स्तन्यत्यागात्** – अन्यादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते इति पञ्चमी। **परेण** – इत्थम्भूत लक्षणे (पा. 2। 3। 21) **प्राचेतसस्य** – प्रचेतस् + अण् – प्रचेतसः ''कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव'' इति वचनात् सम्प्रदानार्थे षष्ठी। **विपाकः** = वि + पच् + भावे कर्मणि वा। **उपकरणीभावः** उपकरण + च्वि + भू + घञ् भावे।

तमसा – इदानीं तु शम्बूकवृत्तान्तेनानेन सम्भावितजनस्थानं रामभद्रं सरयूमुखादुपश्रुत्य भगवती भागीरथी, यदेव लोपामुद्रया स्नेहादभिशङ्कितं तदेवाभिशङ्क्य सीतासमेता, केनचिदिव गृहाचारव्यपदेशेन गोदावरीमुपागता।

मुरला – सुष्ठु चिन्तितं भगवत्या भागीरथ्या। 'राजधानीस्थितस्यास्य खलु तैश्च तैश्च जगतामाभ्युदयिकैः कार्यैर्व्यापृतस्य रामभद्रस्य नियताश्चित्तविक्षेपाः। अव्यग्रस्य पुनरस्य शोकमात्रद्वितीयस्य पञ्चवटीप्रवेशो महाननर्थः इति। तत् कथं सीतया रामभद्रोऽयमाश्वासनीयः स्यात्?'

तमसा – उक्तमत्र भगवत्या भागीरथ्या – 'वत्से देवयजनसम्भवे सीते! अद्य खल्वायुष्मतोः कुशलवयोर्द्वादशस्य जन्मवत्सरस्य सङ्ख्यामङ्गलग्रन्थिरभिवर्तते। तदात्मनः पुराणश्वशुरमेतावतो मानवस्य राजर्षिवंशस्य प्रसवितारं सवितारमपहतपाप्मानं देवं स्वहस्तापचितैः पुष्पैरुपतिष्ठस्व। न त्वामवनिपृष्ठ-वर्तिनीमस्मत्प्रभावाद्वनदेवता अपि द्रक्ष्यन्ति किमुत मर्त्याः' इति। अहमप्याज्ञापिता ''तमसे! त्वयि प्रकृष्टप्रेमैव वधूर्जानकी। अतस्त्वमेवास्याः प्रत्यनन्तरीभव'' इति। साऽहमधुना यथाऽदिष्टमनुतिष्ठामि।

मुरला – अहमप्येनं वृत्तान्तं भगवत्यै लोपामुद्रायै निवेदयामि। रामभद्रोऽप्यागत एवेति तर्कयामि।

तमसा – तदियं गोदावरीह्रदान्निर्गत्य –

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं, दधति विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणीविरहव्यथेव वनमेति जानकी।।4।।

अन्वय – परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं, विलोलकबरीकम्, आननम्, दधती, जानकी, करुणस्य मूर्तिः, अथवा, शरीरिण विरहव्यथा, इव, वनम्, एति।।4।।

तमसा – अब शम्बूक के वृत्तान्त से, जन्मस्थान में रामभद्र के आने की सम्भावना को सरयू के मुख से सुनकर भगवती भागीरथी, जिस बात की लोपामुद्रा ने स्नेह से शङ्का की थी, उसी को शङ्का कर सीता क साथ किसी गृह कार्य के बहाने से गोदावरी के पास आई हैं।

मुरला – भगवती भागीरथी ने बहुत ठीक सोचा। राजधानी में रहते हुए, तो लोक की उन्नति के कार्यों में व्यस्त रहने के कारण रामभद्र का ध्यान बंटा रहता था, परन्तु आज (किसी कार्य में) व्यग्र न रहने के कारण केवल शोक को ही साथ लेकर राम का अकेले ही पञ्चवटी में प्रवेश करना बड़ा अनर्थकारी है। तो (बताओ) सीता के द्वारा रामभद्र को आश्वासन कैसे दिया जा सकेगा?

तमसा – भगवती भागीरथी ने (सीता से) कह ही दिया है कि 'यज्ञभूमि से उत्पन्न बेटी सीते! आज चिरायु कुश और लव की बारहवीं वर्षगाँठ है। अतः (इस शुभ अवसर पर) अपने पुराण श्वसुर, इतने विशाल, मनु से सम्बन्धित राजर्षि वंश के उत्पादक, पाप विनाशक भगवान् सूर्य की अपने हाथों से चुने हुए पुष्पां से पूजा करो। पृथ्वी पर रहती हुई तुमको मेरे प्रभाव से वन-देवता भी नहीं देख सकते, मनुष्यों की तो बात ही क्या है?' और मुझे (भी) यह आज्ञा दी है कि तुमसे! वधू जानकी को तुममें प्रगाढ़ प्रेम है ही। अतः तुम ही इनके साथ रहना। अब मैं (उनकी) आज्ञानुसार कार्य करती हूँ।

मुरला – मैं भी इस समाचार को भगवती लोपामुद्रा से निवेदन करती हूँ रामभद्र भी आ गये है- मैं ऐसा समझती हूँ।

तमसा – लो, यह गोदावरी के अगाध जल से निकलकर –

(श्लोकार्थ) (विरह-वियोग के कारण) पीले और कृश कपोलों से सुन्दर तथा (इधर-उधर) बिखरे हुए केशों से युक्त मुख को धारण करती हुई जानकी करुण रस की मूर्ति अथवा शरीरिणी विरह-व्यथा सी वन में आ रही है।

टिप्पणी –

सरयूमुखात् – 'आख्यातोपयोगे' (पा. 1।4 ।26) इति पञ्चमी। **आभ्युदायिकैः** – अभि + उद् + इ + अच् भावे अभ्युदयः – उन्नतिः । अभ्युदये नियुक्त आभ्युदयिकस्तैः। अभ्युदय + ठक्। 'तत्र नियुक्त'

(पा. 4। 4। 69)। 'हेतौ' (पा. 2। 3। 3) इति तृतीया। **नियता:** - नि + यम् + क्त कर्मणि। **अव्यग्रस्य** - न व्यग्रोऽग:। नञ्। **शोकमात्रद्वितीयस्य** - शोक एव शोकमात्रम् मयूरव्यंसकादित्वात्समास:। शोकमात्रं द्वितीयं यस्य तस्य। **द्वादशस्य जन्मवत्सरस्य संख्यामङ्गलग्रन्थि:** - द्वादशसंवत्सरस्य। द्वादशस्य = द्वौ च दश च द्वादश, 'द्व्यष्टन: संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्यो' (पा. 6। 3। 47) इत्यात्वम्। द्वादशानां पूरणो द्वादशस्तस्य। 'तस्य पूरणे डट्' (पा. 5। 2। 48) इति डट्।

मुरला - इयं हि सा?

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनं,
हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोक:।
ग्लपयति परिपाण्डु: क्षाममस्या: शरीरं,
शरदिज इव धर्म: केतकीगर्भपत्रम्।।5।।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते।)

इति शुद्ध विष्कम्भक:

अन्वय - हृदय-कमलशोषी दारुण:, दीर्घशोक:, बन्धनाद् विप्रलूनं, मुग्धं किसलयमिव, पारिमाण्डु, क्षामम्, अस्या:, शरीरं, शरदिज:, धर्म:, केतकीगर्भपत्रम्, इव ग्लपयति।।5।।

अनुवाद -

मुरला - यह वह (सीता) है?

हृदय कमल को सुखाने वाला अति कठिन दीर्घकालीन शोक इसके डाल से टूटे हुए कोमल किसलय के समान दुर्बल तथा पीले शरीर को उसी प्रकार सुखा रहा है, जिस प्रकार कि शरद्-ऋतु की कड़ी धूप केवड़े के भीतरी कोमल पत्ते को सुखा देती हैं।

(घूमकर चली जाती है।)
शुद्ध विष्कम्भक।

टिप्पणी -

किसलयमिव.... पत्रम् - इस श्लोक में विरहिणी सीता का बहुत ही हृदयस्पर्शी चित्र खींचा गया है। **हृदयकमलशोषी** - श्री शारदारञ्जन रे ने इसे 1 'दीर्घलोक' और 2. 'घर्म' - दोनों क पक्ष में लगाया है। 1. हृदयं कुसुममिव अथवा हृदयमेव कुसुमम् (मयूरव्यंसकादय: इति रूपकसमास:) तत् शोषयतीति हृदयकमलशोषी।

2. हृदये कुसुमम् (सुप्सुपा) अथवा हृदयस्थितं कुसुमम्। (शाकपार्थिवादित्त्वान्मध्यपदलोपिसमास:) तच्छोषयतीति हृदयकुसुमशोषी (धर्मपक्ष में)।

हृदयकुसुम + शुष् + णिच् + णिनी कर्त्तरि ताच्छील्ये ।

ग्लपयति - ग्लै + णिच् + लट्, + तिप्। 'ग्लास्नावनुवमां' इति विकल्पने अत्वम्। (5) क्षामम् - क्षै + क्त 'क्षायो म:' ति क्तस्य मकारत्वम्। **शरदिज:** - शरदि जात इति शरदिज: 'सप्तम्यां जनेर्ड: (पा. 3। 2। 97)' इति डप्रत्यय:। शरद् +जन् + ड कर्त्तरि। 'प्रावृट्शरत्कालदिव्यां (पा. 6। 3। 15)' इत्यलुक्समास:। **इति शुद्धविष्कम्भक।**

(नेपथ्ये)

(जात!) जात!

(तत: प्रविशति पुष्पावचयव्यग्रा सकरुणौत्सुक्यमाकर्णयन्ती सीता)।

सीता – अहो जानामि ''प्रियसखी वासन्ती व्याहरतीति।'')

(पुनर्नेपथ्ये।)

सीतादेव्या स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै-
रग्रे लोलः करिकलभको यः पुरा वर्धितोऽभूत्।

सीता – किं तस्य?

(पुनर्नेपथ्ये।)

वध्वा सार्धं पयसि विरहन् सोऽयमन्येन दर्पा-
दुद्दामेन द्विरदपतिना सन्निपत्याभियुक्तः।।6।।

अन्वय – पुरा, अग्रे, लोलः, यः, करिकलभकः, सीतादेव्या, स्वकरकलितैः, सल्लकीपल्लवाग्रैः, वर्धितोऽभूत् (इति पूर्वार्धस्यान्वयः। उत्तरार्धस्य त्वेवम्) सोऽयं वध्वा सार्धं पयसि, विहरन्, अन्येन, उद्दामेन, द्विरदपतिना, दर्पात् सन्निपत्य, अभियुक्तः।।6।।

सीता – आर्यपुत्र! परित्रायस्व परित्रायस्व मम पुत्रकम्। हा धिक् हा धिक्। तान्येव चिर परिचितान्यक्षराणि पञ्चवटीदर्शनेन मां मन्दभागिनीमनुबध्नन्ति। हा आर्यपुत्र! (इति मूर्च्छति)

(प्रविश्य)

तमसा – समाश्वसिहि समाश्वसिहि

(नेपथ्य में)

अनुवाद –

पुत्र! पुत्र!

(तदनन्तर पुष्प चुनने में व्यग्र करुण और उत्कण्ठा के साथ सुनती हुई सीता प्रवेश करती हैं।)

सीता – ओह! मैं समझती हूँ कि मेरी प्रिय सखी वासन्ती बोल रही है।

(पुनः नेपथ्य में)

(श्लोकार्थ) पहिले सीता देवी ने जिस चञ्चल हाथी के बच्चे को अपने हाथ से 'सल्लकी' लता के कोमल पत्ते दे-देकर हृष्ट-पुष्ट किया था –

सीता – उसका क्या (हुआ)?

(पुनः नेपथ्य में)

(आज) वह अपनी पत्नी के साथ जल में विहार करता हुआ किसी दूसरे गर्वीले गजराज से बलपूर्वक दबाया जा रहा है।।6।।

सीता – (घबराई हुई कुछ कदम चलकर) आर्यपुत्र? मेरे पुत्र को बचाओ! बचाओ! हाय, हाय! पञ्चवटी देखने से वही चिरपरिचित (आर्यपुत्र ये) अक्षर मुझ मन्दभागिनी का अनुसरण कर रहे हैं (मेरे मुख से निकल रहे हैं।) हाँ, आर्यपुत्र! (मूर्च्छित हो जाती है।)

(प्रवेश कर)

तमसा – धैर्य धारण करो! धैर्य धारण करो!

टिप्पणी –

करिकलभकः यद्यपि 'कलभः' करिशावकः (अमर.) – इस कोष के अनुसार 'कलभ' शब्द का अर्थ ही हाथी का बच्चा है और इस प्रकार 'करि' शब्द का प्रयोग 'अधिकपदत्व' दोष की शङ्का करता है तथापि 'विशिष्टवाचकपदानां' सति विशेषणपदसमभिव्याहारे विशेष्य– मात्रपरत्वं करिकलभादिशब्दवत् इस वामनसूत्र के आधार पर 'करभ' का अर्थ केवल 'शावक (बच्चा)' ही गृहीत होगा। करभ + कन् अनुकम्पायाम् = करभकः। (4) वर्द्धितः– वृध् + णिच् + क्त। पौषितः। (5) दर्पात् – पाठा., 'वेगात्' = जवात् (तेजी से) (6) **उद्दामेन द्विरदपतिना** – उद्दामो बन्धरहिते स्वतन्त्रे च प्रचेतसि – इत्यमरः। ''चण्ड उद्दाम उद्धटः'' इति शब्दार्णवः। द्वौ रदौ (दन्तौ) यस्य सः द्विरदः द्विरदानां पतिर्द्विरदपतिस्तेन द्विरदपतिना। **सन्निपत्य** – सम् + नि + पत् + (कत्वा) ल्यप्। विक्लवस्य भावो वैक्लव्यम्। विक्लवो विह्वलः स्यात् –इत्यमरः। पुत्रकम्– पुत्र + कन् अनुकम्पायाम्। ''पुत्रकः कृत्रिमे पुत्रे'' = इति संसारावर्त्तः।

(नेपथ्ये)

विमानराज! अत्रैव स्थीयताम्।

सीता – अहो, जलभरभरितमेघमन्थरस्तनितगम्भीरमांसलः कुतो नु भारतीनिर्घोषो भ्रियमाणकर्णविवरा मामपि मन्दभागिनीं झटित्युत्सुकयति?

तमसा – (सस्मितास्रम्) अयि वत्से!

अपरिस्फुटनिक्वाणे, कुतस्त्येपि त्वमीदृशी।
स्तनयित्नोर्मयूरीव, चकितोत्कण्ठितं स्थिता।। 7।।

अन्वय –स्तनयित्नोः (अपरिस्फुटनिक्वाणे) मयूरी इव, त्वं, कुतस्त्ये, अपरिस्फुटनिक्वाणे अपि, ईदृशी, चकितोत्कण्ठितं स्थिता।।7।।

सीता – भगवति! किं भणस्यपरिस्फुटेति! स्वरसंयोगेन प्रत्यभिजानामि, नन्वार्यपुत्रैणैवैतद्व्याहृतम्।

तमसा – श्रूयते– ''तपस्यतः कल शूद्रस्य दण्डधारणार्थमेक्ष्वाको राजा दण्डकारण्यमागतः'' इति।

सीता – दिष्ट्या अपरिहीनराजधर्मः खलु स राजा।

(नेपथ्ये में)

हिन्दी –

विमानराज! यहीं रुक जाओ।

सीता – (घबराहट और प्रसन्नता से) अहा! जल के भार से परिपूर्ण मेघ के मन्द–मन्द गर्जन के समान गम्भीर और प्रभावशाली वाणी की ध्वनि (आवाज) कहाँ से आकर मेरे कर्ण–कुहरों को भरती हुई मुझ मन्द–भागिनी को सहसा उत्सुक कर रही है?

तमसा – (मुस्कराहट और आँसुओं के साथ) आर्य वत्से!

जैसे मेघ की गड़गड़ाहट में मयूरी चकित और उत्कण्ठित हो जाती है, वैसे ही कहीं से आते हुए इस अस्पष्ट शब्द को सुनकर तुम चकित और उत्कण्ठित हो रही हो।।17।।

सीता – भगवति! क्या कहती हो कि 'अस्पष्ट शब्द है'? कण्ठ–स्वर से मैं पहचानती हूँ कि यह निश्चय ही आर्यपुत्र की ही आवाज है।

तमसा – सुना जाता है कि तपस्या करते हुए शूद्र तापस को दण्ड देने के लिए वे इक्ष्वाकुवंशीय 'राजा' दण्डकारण्य में आये हैं।

सीता – सौभाग्य से वे 'राज' धर्महीन नहीं है। (अब भी उन्हें अपने धर्म का ज्ञान है, यह बड़े हर्ष का विषय है!)

टिप्पणी –

जलभरभरित – जलभर + भर + इतच्। **ऐक्ष्वाकः** – इक्ष्वाकौः गोत्रापत्यं पुमान् ऐक्ष्वाकः। ''दाण्डिनायन....'' (पा., 6। 4। 174) इति टिलोपः। **अपरिहीन** राजधर्मः अपरिहीनो राजधर्मो यस्य सः।

(नेपथ्ये)

यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बान्धवो मे,
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।
एतानि तानि बहुकन्दरनिर्झराणि,
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि।।8।।

अन्वय – यत्र, द्रुमाः, मृगाः अपि मे बान्धवः, प्रियासहचरः, यानि चिरम्, अध्यवात्सम्, एतानि, बहुकन्दरनिर्झराणि, गोदावरीपरिसरस्य, गिरेः, तानि, तटानि (सन्ति)।।8।।

(नेपथ्य में)

जहाँ वृक्ष और मृग भी मेरे बन्धु थे और जिनमें मैंने प्रियतमा के साथ बहुत दिनों तक निवास किया था, बहुत-सी गुफाओं और झरनों से युक्तों गोदावरी के समीप वे ही (प्रस्रवण) पर्वत के प्रदेश हैं।

टिप्पणी –

(1) यानि अध्यवात्सम् – यहाँ अधिपूर्वक वस् धातु के आधार पर 'यानि तटानि' की कर्मसंज्ञा हो गई है – 'उपान्वध्याङ्वसः' (पा. 1। 4। 48) नियम के अनुसार। (2) बहुकन्दरनिर्झराणि – पाठा. 'बहुनिर्झरकन्दराणि' इति 'दरी से कन्दरो वा स्त्री देवखातविले गुहा' इति चामरः। (3) गोदावरीपरिसरस्य – गोदावरी परिसरे यस्य, तस्य। परि + सृ + घ संज्ञायाम् = परिसरः। (4) तटानि – घनश्यामपण्डित ने इसे प्रामादिक मानते हुए लिखा है – 'तटानीति प्रमादः, तटो भृगुः इत्यमरसिंहेनाभिधानात्। अत एव 'तीरे तटोऽस्त्री पुस्येव भृर्गो इति शब्दमाला।''

सीता – दिष्ट्या कथं प्रभातचन्द्रमण्डलापाण्डुपरिक्षामदुर्बलेनाकारेण निजसौम्यगम्भीरानुभावमात्रप्रत्यभिज्ञेय आर्यपुत्र एव भवति? भगवति तमसे! धारय माम्।

तमसा – वत्से! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि।

(नेपथ्ये)

अनेन पञ्चवटीदर्शनेन –

अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः।
उत्पीड इव धूमस्य, मोहः प्रागावृणोति माम्।।9।।

अन्वय – अन्तर्लीनस्य, अद्य, उद्दामं ज्वलिष्यतः दुःखाग्नेः, धूमस्य, उत्पीड इदं, मोहः, मां, प्राक्, आवृणोति।।9।।

हा प्रिये जानकि!

तमसा – (स्वगतम्) इदं तावदाशङ्कितं गुरुजनेन।

सीता – (समाश्वस्य) हा, कथमेतत्?

(पुनर्नेपथ्ये)

हा देवि दण्डकारण्यवासप्रियसखि विदेहराजपुत्रि! (इति मूर्च्छति।)

सीता - इति पादयोः पतति। हा धिक् हा धिक्। मां मन्दभागिनीं व्याहृत्यामीलितनेत्रनीलोत्पलो मूर्च्छित एव। हा, कथं धरणीपृष्ठे निरुद्धनिः श्वासनिःसहं विपर्यस्तः। भगवति तमसे! परित्रायस्व, परित्रायस्व। जीवयार्यपुत्रम्।

तमसा -

त्वमेव ननु कल्याणि! सञ्जीवय जगत्पतिम्।
प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते, तत्रैष निरतो जनः।।10।।

सीता - (इति ससंभ्रमं निष्क्रान्ता।) यद्भवतु तद्भवतु। यथा भगवत्याज्ञापयति।

अनुवाद -

सीता क्या, सौभाग्य से, प्रातःकालीन चन्द्र-मण्डल के समान श्वेत (कान्तिहीन), क्षीण, दुर्बल आकृति वाले तथा अपने शान्त और गम्भीर प्रभाव-मात्र से ही पहचानने योग्य आर्यपुत्र ही है? (आशय यह है कि दुर्बलता आदि अनेक कारणों से बिल्कुल बदले हुए आकार से इनको नहीं पहचाना जा सकता, केवल अपने स्वाभाविक गम्भीर प्रभाव से ही ये पहचान में आते हैं।)

भगवति तमसे! मुझे संभालो!

(तमसा से लिपटकर बेहोश हो जाती हैं।)

तमसा - वत्से! धैर्य धारण करो! धैर्य धारण करो!

(नेपथ्य में)

इस पञ्चवटी को देखने से -

(श्लोकार्थ) अन्दर ही अन्दर छिपी हुई तथा आज भड़ककर जलने वाली दुःखाग्नि के धूम-पिण्ड की भाँति मोह (मूर्छा) पहले (ही) मुझे घेर रहा है।।9।।

हा! प्रिय जानकि!

तमसा - (स्वयं ही) गुरुजनों ने इसी बात की शङ्का की थी।

सीता - (प्रकृतिस्थ होकर) हा! यह क्या है?

(पुनः नेपथ्य में)

हा! देवि! दण्डकारण्य के निवास-काल की प्रियसखि! जनकनन्दिनी!

(मूर्च्छित हो जाते हैं)

सीता - हाय! हाय! मुझे मन्दभागिनी का नाम लेकर नीलकमलसदृश नेत्र बन्दकर आर्यपुत्र मूर्च्छित ही हो गये? हाय, श्वास रुकने से शक्ति-हीन होकर पृथ्वी पर कैसे गिर पड़े हैं! भगवति तपसे! रक्षा करो! आर्यपुत्र का जीवित कर दो!

तमसा - कल्याणि! तुम ही अपने कर-स्पर्श जगत्पति राम को चैतन्य करो! क्योंकि तुम्हारे हाथ का स्पर्श बड़ा प्रिय है और ये उसी के अभ्यस्त हैं।।10।।

सीता - चाहे जो हो! (अब तो) जो भगवती की आज्ञा है (उसका पालन करती हूँ।)

(घबराई हुई चली जाती है)

निजसौम्यगम्भीरानुभावमात्रप्रत्यभिज्ञेय – निजः सौम्यः गम्भीरश्च अनुभाव एवं अनुभावमात्रम् तेन प्रत्यभिज्ञेयः। **अन्तर्लीनस्य दुःखाग्ने.......** – भवभूति भावों की अभिव्यक्ति करने में अत्यन्त निपुण हैं। इस श्लोक में किंकर्तव्यविमूढ़ चित्त की पीड़ा का क्या ही मनोहर चित्रण किया गया है। 'दुःखाग्ने' में ''दुःखमग्निरिव'' यह उपमितसमास होने के कारण 'लुप्तोपमा' माननी चाहिये, 'निरङ्गरूपक' नहीं।

सीता – जाने पुनः प्रत्यागतमिव जीवितं त्रैलोक्यस्य।

रामः – हन्त भोः, किमेतत्?

आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां?
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः।
आतप्तजीवितमनः परितर्पणोऽयं,
सञ्जीवनौषधिरसो हृदि नु प्रसिक्तः? ।।11।।

अन्वय – हृदि, हरिचन्दनपल्लवानाम्, आश्च्योतनं नु? निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजः सेकः, नु? आतप्तजीवितमनः परितर्पणः, अयम्, सञ्जीवनौषधिरसः प्रसक्तः नु?।।11।।

अपि च –

स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एव,
सञ्जीवनश्च मनसः परितोषणश्च।
सन्तापजां सपदि यः परिहृत्य मूर्च्छा-
मानन्देनेन जडतां पुनरातनोति।।12।।

अन्वय – पुरा परिचितः, सञ्जीवनः, मनसः, परितोषणश्च, नियतं, स एवं स्पर्शः, यः, सन्तापजां, मूर्च्छा, परिहृत्य, सपदि, आनन्दनेन, पुनः जडताम् आतनोति।।12।।

तदनन्तर भूमि पर पड़े, रोती हुई सीता से स्पर्श किये जाते तथा आह्लादपूर्वक श्वास लेते हुए श्रीराम का प्रवेश होता है।

सीता – (कुछ हर्ष के साथ) मैं समझती हूँ कि तीनों लोकों का जीवन फिर से लौट आया है। अर्थात् जगत्पति राम के जीवित होने पर संसार हो जी गया।

राम – आश्चर्य! यह क्या है?

(श्लोकार्थ) क्या मेरे हृदय पर यह हरिचन्दन के नवपल्लवों का रस वह रहा ह? अथवा चन्द्रमा के किरणरूपी अङ्कुरों को निचोड़ कर उनके रस से किया गया सेक है? अथवा मेरे सन्तप्त मन और प्राण को तृप्त करने वाला यह 'सञ्जीवन' – औषधि का रस ही (किसी ने) विशेष रूप से सींच दिया है? (यह क्या है, मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ।) ।।11।।

और भी –

(श्लोकार्थ) सञ्जीवन का हेतु और मन तृप्त करने वाला यह पूर्व-परिचित स्पर्श निश्चय ही, वहीं है जो कि सन्ताप से उत्पन्न मूर्छा को दूर कर आनन्द प्रदान करने से पुनः (किसी अनवर्चनीय) जड़ता को फैला रहा है।।12।।

सीता –(घबराहट और करुणा के साथ पास जाकर) इस समय मेरे लिए इतना ही बहुत है।

टिप्पणी –

साहलादोच्छ्वासः – आह्लादेन सहितः साह्लादः उच्छ्वासो यस्य स। **जीवितं त्रैलोक्यस्य** – कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीराम पर ही तीनों लोकों का जीवन आधारित है।

घनश्याम पण्डित ने श्रीराम और त्रैलोक्य का अद्वैत सिद्ध करते हुए लिखा है – ''एतेन रामस्य त्रैलोक्यस्य च एकार्थवर्णनादद्वैतमेव प्रामाणिकमिति कविना सिद्धान्तमार्गो दर्शित इति बोध्यम्। अतएव 'हरिरेव जगज्जगदेव हरिः' इति, 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' इति, 'भूतानि विष्णुर्भुवनानि विष्णुः' इति प्राञ्चः।''

''रसाविर्भूतय यत्स्यादङ्गुलीभिः प्रपीडनमत्।
तदाश्च्योतनमाश्च्योतश्चोतनं-इति च द्विरूपः।।''

हरिचन्दनपल्लवानाम् – हरिचन्दन पाँच देवतरुओं में से अन्यतम है अथवा 'गोशीर्ष नामक चन्दनवृक्ष'।

''पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः।
सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरचिन्दनम्।।''

''तैलपणिकगोशीर्षे हरिचन्दनमस्त्रियाम्।।'' – इति चामरः।।

.....करकन्दलः – किरणसमष्टिः। ''कन्दे गोले समष्टौ च कन्दलः'' इति संसारावर्त्तः। (6) आतप्तजीवितमन्ः परितर्पणोऽयम् – पाठा. 1. आतप्तजीव/जीवित–मन। पुनः। तरोः परितर्पणो में।

रामः – (उपविश्य) न खलु वत्सलया देव्याभ्युपपन्नोऽस्मि?

सीता – हा धिक् हा धिक्। किमित्यार्यपुत्रो मा मार्गिष्यति?

रामः – भवतु, पश्यामि।

सीता – भगवति तमसे! अपसरावस्तावत्। मां प्रेक्ष्यानभ्यनुज्ञातेन सन्निधानेन राजाऽधिकं कोपिष्यति।

तमसा – अयि वत्से! भगीरथीप्रसादाद्वनदेवतानामप्यदृश्यासि संवृत्ता।

सीता – अस्ति खल्वेतत्!

रामः – हा प्रिये जानकि!

सीता – (समन्युगद्गदम्) आर्यपुत्र! असदृशं खल्वेतदस्य वृत्तान्तस्य। भगवति! किमिति वज्रमयी जन्मान्तरेष्वपि पुनरप्यसम्भावितदुर्लभदर्शनस्य मामेव मन्दभागिनीमुद्दिश्यैवं वात्सलस्यैवं वादिन आर्यपुत्रस्योपरि निरनुक्रोशा भविष्यामि? अहमेवैतस्य हृदयं जानामि, ममाप्येषः।

रामः – (सर्वतोऽवलोक्य सनिर्वेदम्) हा, न किंचिदत्र।

सीता – भगवती! निष्कारणपरित्यागिनोऽप्येतस्य दर्शनेनैव्रविधेन कीदृशी मे हृदयावस्था! इति न जानामि, न जानामि।

तमसा – जानामि वत्से! जानामि।

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशा–
द्वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढकरुणं,
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव।।13।।

अन्वय – तव हृदयम्, अस्मिन् क्षणे, नैराश्यात्, तटस्थम् इव अपि च विप्रियवशात्, कलुषम् (इव), दीर्घे, अस्मिन, वियोगे, झटिति घटनात्, स्तम्भितम् (इव), सौजन्यात् प्रसन्नम् (इव), दयितकरुणैः गाढकरुणम्, प्रेम्णा द्रवीभूतम् इव (अस्ति)।।13।।

अनुवाद –

राम – (बैठकर) कहीं मैं स्नेहमयी देवी (सीता) के द्वारा अनुगृहीत नहीं किया गया हूँ?

सीता – हाय! हाय! क्या आर्यपुत्र मुझे ढूढेंगे?

राम – अस्तु, देखता हूँ।

सीता – भगवति, तमसे! तब तक हम (यहाँ से) दूर हट जायें। (अन्यथा) मुझको बिना आज्ञा के यहाँ उपस्थित देखकर 'राजा' अधिक क्रोध करेंगे।

तमसा – वत्से! तुम तो गङ्गा की कृपा से वन-देवताओं के लिए भी अदर्शनीय हो गई हो। अर्थात् तुम्हें गङ्गा जी के प्रसाद से देवता भी नहीं देख सकते, मनुष्यों की तो बात ही क्या है? अतः निश्चिन्त रहो, तुमको रामचन्द्रजी नहीं देख पायेंगे।

सीता – क्या ऐसा ही है?

राम – हा! प्रिये! जानकि!

सीता – (प्रणय-कोप से गद्‌गद् स्वर में) आर्यपुत्र! यह इस वृत्तान्त के अनुरूप नहीं है। मेरा परित्याग करके अब 'प्रिये!' सम्बोधन करना उचित नहीं है। (रोती हुई) देवि! दूसरे जन्म में भी मुझे जिनके दर्शनों की सम्भावना नहीं थी जिनका दर्शन मेरे लिए सर्वथा दुर्लभ था, आज मुझ मन्दभागिनी को याद कर स्नेह से ऐसा कहने वाले आर्यपुत्र पर वज्रमयी मैं कैसे कठोर हो सकूंगी? मैं ही इनका हृदय जानती हूँ और ये मेरा!

राम – (चारों ओर देखकर, खेदसहित) हा! यहाँ कुछ भी नहीं है!

सीता – भगवति! अकारण ही (मेरा) परित्याग करने वाले इन को भी इस अवस्था मं देखकर, न जाने मेरा हृदय कैसा हो रहा है। यह मैं नहीं जानती।

तमसा – जानती हूँ पुत्री! (मैं) जानती हूँ।

(श्लोकार्थ) पुत्री! इस समय तुम्हारा हृदय (पुनः राम से मिलने की) निराशा से उदासीन, अकारण परित्याग करने (के क्रोध) से कलुषित, इस दीर्घ वियोग में अकस्मात् मिल जाने के कारण स्तब्ध सा हो रहा है।।13।।

टिप्पणी –

तटस्थ....क्षण इव – 1. पाठा., '**....घटनात्स्तम्भितमिव**' के स्थान पर '**घटनोत्तम्भितमिव**' 2. उत्प्रेक्षा और विरोध अलङ्कार। 3. शिखरिणी छन्द 4. माधुर्य गुण। 5. वैदर्भी रीति।

राम – देवि!

प्रसाद इव मूर्तस्ते, स्पर्शः स्नेहार्द्रशीतलः।
अद्याप्यानन्दयति मां, त्वं पुनः, क्वासि नन्दिनि? ।।14।।

अनुवाद –

राम – देवि!

(श्लोकार्थ) स्नेह से आर्द्र तथा शीतल तुम्हारा स्पर्श मूर्तिमान् प्रसाद की भाँति मुझे अब भी आनन्द प्रदान कर रहा है। किन्तु आनन्ददायिनि! तुम कहाँ हो?।।14।।

सीता – एते खल्वगाधमानसदर्शितस्नेहसम्भारा आनन्दनिष्यन्दिनः सुधामया आर्यपुत्रस्योल्लापाः। जाने, प्रत्यनेन निष्कारणपरित्यागशल्यितोऽपि बहुमतो मम जन्मलाभः।

रामः – अथवा कुतः प्रियतमा? नूनं सङ्कल्पाभ्यासपाटवोपादान एष भ्रमो रामभद्रस्य।

(नेपथ्ये)

अहो, महान् प्रमादः! (सीतादेव्याः स्वकरकलितैः इत्यर्थ पठ्यते।)

रामः – (सकरुणौत्सुक्यम्) किं तस्य?

(पुनर्नेपथ्ये)('वध्वा सार्धम् इत्युत्तरार्ध पठ्यते।')

सीता – क इदानीमभियुज्यते?

रामः – क्वासौ दुरात्मा? यः प्रियायाः पुत्रं वधूद्वितीयमभिभवति।

(प्रविश्य)

वासन्ती – (सम्भ्रान्ता।) देव! त्वर्यताम्।

सीता – हा, कथं मे प्रियसखी वासन्ती?

रामः – कथं देव्याः प्रियसखी वासन्ती?

वासन्ती –देव! त्वर्यतां त्वर्यताम्। इतो जटायुशिखरस्य दक्षिणेन सीतातीर्थेन गोदावरीमवतीर्य सम्भावयतु देव्याः पुत्रकं देवः।

सीता – हा तात जटायो! शून्यं त्वया विनेदं जनस्थानम्।

रामः – अहह! हृदयमर्मच्छिदः खल्वमी कथोद्घाताः।

वासन्ती – इत इतो देवः।

सीता – भगवति! सत्यमेव वनदेवतापि मां न पश्यति।

तमसा – अयि वत्से! सर्वदेवताभ्यः प्रकृष्टतममैश्वर्यं मन्दाकिन्याः। तत्किमिति विशङ्कसे?

सीता – इति परिक्रामति। ततोऽनुसरावः।

रामः – (परिक्रम्य) भगवति गोदावरि! नमस्ते।

वासन्ती – (निरूप्य) देव! मोदस्व विजयिना वधूद्वितीयन देव्याः पुत्रकेण।

रामः – विजयतामायुष्मान्।

सीता – अहो! ईदृशो मे पुत्रकः संवृतः?

अनुवाद –

सीता – आर्यपुत्र के ये गम्भीर हृदय से प्रेम प्रदर्शित करने वाले तथा आनन्द बरसाने वाले सुधामय प्रलाप हैं। मैं तो (इन वचनों के) विश्वास में यह समझती हूँ कि अकारण परित्याग के शल्य से सिद्ध होने पर भी मेरा जनम सफल है।

राम – अथवा (यहाँ) प्रियतमा कहाँ से आई? निश्चय ही निरन्तर सीता–विषयक चिन्तन के अभ्यास से उत्पन्न यह राम का भ्रम है।

(नेपथ्य में)

ओह! महान् प्रमाद! महान् प्रमाद! (''सीता दव्या'' इत्यादि (3।6) श्लोक का पूर्वार्द्ध (वासन्ती के द्वारा) पढ़ा जाता है।)

राम – (करुणा और उत्कण्ठा के साथ) उसका क्या?

(पुनः नेपथ्य में)

(वध्वा सार्धम् – इत्यादि उत्तरार्द्ध पढ़ा जाता है।)

सीता – उससे इस समय कौन लड़ रहा है?

राम – यह दुरात्मा कहाँ है जो कि प्रिया (सीता) के सपत्नीक पुत्र पर आक्रमण कर रहा है?(उठ जाते है?)

(प्रवेशकर)

वासन्ती – (घबराई हुई) महाराज शीघ्रता कीजिये।

सीता – हा, क्या, मेरी प्रियसखि वासन्ती है?

वासन्ती – महाराज! शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता कीजिये। यहाँ से 'जटायु शिखर' के दायीं ओर 'सीता–तीर्थ' से गोदावरी में उतर कर आप देवी (सीता) के पुत्र को बचाइये।

सीता – हा! तात जटायु! तुम्हारे बिना यह जनस्थान शून्य है।

राम – आह। ये अतीत काल बातें हृदय–विदारक हैं।

वासन्तो – महाराज इधर से, इधर से।

सीता – भगवति! समचमुच वनदेवी भी मुझे नहीं, देख रही हैं।

तमसा – बेटी! गङ्गा जी का प्रभाव सब देवताओं से बढ़ा हुआ है। फिर किस लिए शङ्का कर रही हो? (घूमती है।)

सीता – तब हम इनका अनुसरण करें।

राम – (घूमकर) भगवति? गोदावरी! नमस्ते।

वासन्ती – (देखकर) महाराज! (सीता) के विजयी, सपत्नीक पुत्र (के दर्शन) से आप प्रसन्न हों।

राम – आयुष्मान् विजयी हो।

सीता – ओह! मेरा पुत्र ऐसा (इतना बड़ा) हो गया है।

टिप्पणी –

अगाधमानसदर्शितास्नेहसम्भाराः = अगाधः मानसे दर्शितः स्नेहसम्भारः येषु ते। पाठा., ''**अगाधदर्शितस्नेहसम्भाराः**'' अगाधश्च दर्शितश्च स्नेहसम्भारः येषु ते। सम्भारः = सम् + भृ + घञ् भावे। **निष्कारणपरित्यागशल्यितः** शल्य + इतच् = शल्यितः 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' (पा. 5।2।36) विजयतामायुष्मान् –''विपराभ्या जेः'' इत्यात्मनेपदत्त्वम्।

राम – हा देवि! दिष्ट्या वर्धसे।

येनोद्गच्छद्विसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण,
व्याकृष्टस्ते सुतनु! लवलीपल्लवः कर्णमूलात्।
सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता,
यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः।।15।।

अन्वय – हे सुतनु! उद्गच्छद्विसकिसलस्निग्धदन्ताङ्कुरेण, येन, ते कर्णमूलात् लवलोपल्लवः, याकृष्टः, सोऽयम्, तव पुत्रः, मदमुचां, वारणानां, विजेता (सन्), तस्य वयसि, यत् कल्याणं, तस्य भाजनं जातः।। 15।।

सीता – अवियुक्त इदानीं दीर्घायुरनया सौम्यदर्शनया भवतु।

हिन्दी –

राम – हा देवि! सौभाग्य से बढ़ रही हो।

(श्लोकार्थ) शोभने! जो (पहले) अपने उगते हुए मृणाल–किसलय के समान स्निग्ध दाँत से तुम्हारे कर्णमूल से 'लवली' – लता का पता खींच लिया करता था, वहाँ तुम्हारा पुत्र अब मद–मत्त मतङ्गों का विजेता होकर, युवावस्था का जो सुख होता है, उसका भाजन बन रहा है।।15।।

सीता – अब यह दीर्घायु अपनी इस प्रियदर्शना पत्नी साथ रहे।

टिप्पणी –

उद्गच्छद्विसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण – उद्गच्छत् विसकिसलय तत् स्निग्धः दन्ताङ्कुरो यस्य तेन। अथवा ''उद्गच्छत् उदयच्च तत् बिसं तदेव किसलयं तद्वत् स्निग्धो मसृणः दन्ताङ्कुरः यस्य तेन।'' **कर्णमूलात्** – पाठा. ''कर्णपूरात्'' **व्याकृष्टः** वि +आ + कृष् + क्त। **भाजनम्**– भाजन शब्द नित्यनपुसंक है।

रामः – सखी वासन्ति! पश्य पश्य। कान्तानुवृत्तिचातुर्यमपि शिक्षितं वत्सेन।

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु संपादिताः,
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन–
र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम्।।16।।

अन्वय – यत्, स्नेहात्, लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु, पुष्यत्पुष्कर वासितस्य पयसः, गण्डूषसंक्रान्तयः सम्पादिताः, शीकरिणा करेण, कामं, सेकः, विहितः पुनः, विरामे, अनरालनानालन–लिनीपत्रातपत्रम् धृतम्।।16।।

हिन्दी –

राम – सखि! वासन्ति! देखो, देखो! प्रियतमा को प्रसन्न करने की कला भी पुत्र ने सीख ली है।

(श्लोकार्थ) (पहले तो इसने) लीलापूर्वक उखाड़े गये मृणालदण्ड के ग्रासों की समाप्ति पर, विकसित कमलों से सुवासित जल को (अपने) मुख में भर कर (अपनी प्रियतमा के मुख में) छोड़ा। तदनन्तर जलपूर्ण सूंड से उसको पूर्ण रूप से सिक्त भी किया और अन्त में, बड़े स्नेह से एक सोधी नाल वाले कमल के पत्ते के छत्र को उसके ऊपर तान दिया।16।।

टिप्पणी –

कान्तानुवृत्तिचातुर्यम् – सम्भवतः श्रीरामजी को यह दृश्य देखने से अपना भी स्मरण हो आया था। देखिये सीता का यह कथन – पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृततालवृन्तापत्रम् आत्मनः दक्षिणारण्यपथिकत्वम्। **लीलोत्खात....** लीलया उत्खानि मृणालकाण्डानि तेषां कवलाः, तेषां छेदेषु (समाप्तिष)। विद्यासागर ने छेद का अर्थ 'खण्ड' (अंश) लिया है –

''कवलच्छेदेषु आसांशेषु'' छेदो विभजने भङ्गव्ययोः = इति मुकुटः।

सम्पादिताः – पाठा., 'सम्पातिताः'। **पुष्यत्पुष्करवासितस्य** – पाठा., ''पुष्पयत्...।'' पुष्यत् पुष्करं (पद्मं) तेन वासितस्य। अथवा पुष्यत् पुष्करं (करिहस्ताग्रं) तस्मिन् वासितस्य। **अनरालनाल....** – अनरालं (अवक्रं) नालं (कमलदण्डः) यस्य तत् नलिनीपत्रम् तदेवात्पत्रम् (छत्रं) तत्।

सीता – भगवति तमसे! अयं तावदोदृशो जातः। तौ पुनर्न जानाम्येतावता कालेन कुशलवौ कीदृशौ संवृत्ताविति?

तमसा – यादृशोऽयं, तादृशौ तावपि।

सीता – ईदृश्यस्मि मन्दभागिनी, यस्याः न केवलमार्यपुत्रविरहः पुत्रविरहोऽपि।

तमसा– भवितव्यतेयमीदृशी।

सीता – किं वा मया प्रसूतया? येनैतादृशं मम पुत्रकयोरीषद्विरलधवलदशनकुड्मलोज्ज्वलमनुबुद्ध-मुग्धकाकलीविहसित नित्योज्ज्वलं मुखपुण्डरीकयुगलं च परिचुम्बितमार्यपुत्रेण।

तमसा – अस्तु देवताप्रसादात्।

सीता – भगवति तमसे! एतेनापत्यसंस्मणेनोच्छ्वसितप्रस्नुतस्तनी इदानीं वत्सयोः पितुः सन्नितानेन क्षणमात्रं संसारिणी संवृत्तास्मि।

तमसा – किमत्रोच्यते? प्रसवः खलु प्रकृष्टपर्यन्तः स्नेहस्य। परं चैतदन्योन्यसंश्लेषणं पित्रो।

अन्तःकरणतत्त्वस्य, दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते।।17।।

अन्वय – दम्पत्योः, अन्तःकरणतत्त्वस्य स्नेहसंश्रयात्, अयमेव, एकः, आनन्दग्रन्थिः, 'अपत्यम्' इति पठ्यते।।17।।

अनुवाद –

सीता – भगवति तमसे! यह तो ऐसा (इतना बड़ा) हो गया है, और न जाने, इतने दिनों में वे कुश और लव (कितने बड़े) हो गये होंगे!

तमसा – जैसा यह है, वैसे ही वे भी (होंगे)।

सीता – मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ जिसे न केवल पति का ही वियोग है अपितु पुत्रों का भी वियोग है।

तमसा – यह अवितव्यता ही ऐसी है।

सीता – मेरे पुत्र उत्पन्न करने से क्या लाभ है। जिससे मेरे पुत्रों के छीदे-छीदे, श्वेत कलिकाओं के सदृश दाँतों से उज्ज्वल निरन्तर, मनोहर और कल हास्य से युक्तमुख-कमल को आर्यपुत्र ने नहीं चूमा।

तमसा – देवताओं की कृपा से ऐसी ही हो!

सीता – भगवति तमसे! इस सन्तान-स्मरण से मेरे फड़कते हुए स्तनों से दूध बहने लगा है और इस समय बालकों के पिता (राम) के सान्निध्य से क्षणभर के लिए मैं संसारिणी हो गई हूँ।

तमसा – इस विषय में क्या कहना है? सन्तान 'स्नेह की चरमसीमा' है और माता-पिता के हृदय को बांधने वाली ग्रन्थि है।

(श्लोकार्थ) स्नेह का आश्रय ग्रहण करने से दम्पत्ति के अन्तःकरण में रहने वाले 'आनन्द' (नामक तत्त्व) की एकमात्र ग्रन्थि को (ही) 'सन्तान' कहते हैं। (अर्थात् पति-पत्नी के स्नेह-युक्त हृदयों को एक बन्धन में बाँधने वाली ग्रन्थि तथा हृदय में बिखरे हुए प्रेमकणों के मूर्त रूप को ही 'सन्तान' कहते हैं।)।।17।।

टिप्पणी –

भवितव्यता – भू + तव्य कर्तरि बाहुलकात् = भवितव्यम्। तस्य भावः भवितव्यता। भवितव्य + तल्।
ईषद्विरलधवलदशनकुड्मलोज्जवलम् – पाठा. 'ईषद्विरलकोमलघवल-दशनोज्ज्वलकपालेम्।' ईषद् विरलैः धवलैः दशनैरेव कुड्मलैरुज्जवलम्। पाठा. ''ईषद्विरलाः कोमलाः धवलाश्च दशनास्तेः उज्जवलौः कपोलौ यस्य।'' घाटे शास्त्री इस प्रकार विग्रह करते हैं – ''....दशनाश्च उज्ज्वलौ

कपोलौ च यस्मिन् तत्।" **अनुबद्धमुग्धकाकलीविहसितम्**- अनुबद्धे मुग्धे काकलीविहसिते यस्मिन् तत्। अथवा अनुबद्धं काकलीविहसिंत यस्मिन्।"काकली तु कले सूक्ष्मे ध्वनौ" - इत्यमरः।

वासन्ती - इतोऽपि देव पश्यतु।

अनुदिवसमवर्धयत्प्रिया ते,
यमचिरनिर्गतमुग्धलोलवर्हम्।
मणिमुकुट इवोच्छिखः कदम्बे,
नदति स एष वधूसखः शिखण्डी।।18।।

अन्वय - अचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम्, यं, ते प्रिया अनुदिवसम्, अवर्धयत्, स एष, शिखण्डी, वधूसखः (सन्) कदम्बे, उच्छिखः, मणिमुकुटः, इव नदति।।18।।

सीता - एष सः?

रामः - मोदस्व वत्स! वयमद्य वर्धामहे।

सीता - एवं भवतु।

अनुवाद -

वासन्ती - महाराज! इधर भी दृष्टिपात करे -

(श्लोकार्थ) नये निकले हुए सुन्दर और चञ्चल पंखों वाले जिस मयूर को आपकी प्रिय (सीता) ने प्रतिदिन पाला था, वह अब कदम्ब के वृक्ष पर अपनी पत्नी के साथ ऊँची कलङ्गी से युक्त अथवा - ऊपर को फैलने वाली किरणों से युक्त। होकर कूक रहा है।।18।।

टिप्पणो -

(1) अनुदिवसम् - दिवस दिवसे- इति अनुदिवसम्। अव्ययं विभक्ति इति अव्ययीभावः। प्रथम तथा द्वितीय पंक्ति का पाठान्तर यह भी मिलता है -

"अतरुणमदताण्डवोत्सवान्तेष्वयमचिरोद्गतमुग्धलोहबर्हः।"

(2) अचिरनिर्गतलोलमुग्धबर्हम् - अचिरं निर्गतं मुग्धं (मनोहरं) लोलं (चञ्चलं) वर्हं यस्य तम्। पिच्छबर्हे नपुंसकम् - इत्यमर (3) उच्छिखः उद्गता शिखा यस्य सः। (4) वधूसखः वध्वाः सखा वधूसखः।'राजाह:सखिभ्यष्टच्' (पा. 5।4।9।1) इति टच्।

रामः -

भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः,
प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या।
करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं,
सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि।।19।।

हन्त, तिर्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुन्धन्ते।

कतिपयकुसुमोद्गमः कदम्बः,
प्रियतमया परिवर्धितोऽयमासीत्।

सीता - (सुष्ठु प्रत्यभिज्ञातमार्यपुत्रेण)।

रामः -

स्मरति गिरिमयूर एष देव्याः,
स्वजन इवात्र यतः प्रमोदमेति।।20।।

वासन्ती – अत्र तावदासनपरिग्रहं करोतु देवः।

(राम उपविशति)

अन्वय – भ्रमिषु, कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः, प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैः, मण्डयन्त्या, मुग्धया, करकिसलयतालैः, नर्त्यमानं, त्वां सुतमिव, वत्सलेन मनसा, स्मरामि।।19।।

अनुवाद –

राम – **(श्लोकार्थ)** (मयूर! तुम्हारे) चक्कर लगा-लगा कर घूमने पर, अन्दर ही अन्दर घूमने वाले नेत्रों के चञ्चल एवं सविलास भौहों के नृत्यों से ही विभूषित करती हुई उस मुग्धा के द्वारा कर-पल्लवों की तालियों से नचाये जाते हुए तुम्हारा पुत्र की भाँति, मैं स्नेहपूर्ण मन से स्मरण करता हूँ।।19।।

आशय यह है कि मयूर! जब प्रियतमा के कर किसलयों द्वारा ताल देकर तुम्हे नचाया करती थी तब तुम जैसे-जैसे चारों ओर गोलाकर घूमते थे, वैसे ही वैसे उसके नेत्र भी अन्दर ही अन्दर घूमते थे। भाहों के इस निपुण नृत्य से उनकी बड़ी शोभा होती थी। आज उन बातों को याद कर प्रेमपूर्ण मन में पुत्र की भाँति मैं तुम्हारा स्मरण करता हूँ।)

वाह! पशु-पक्षी भी परिचय का ध्यान रखते हैं!

(श्लोकार्थ) 'प्रियतमा ने कुछ कलियों से युक्त जिस कदम्ब को (जलदानादि से) बड़ा किया था....।'

सीता – (आँखों से आँसू भरकर) आर्यपुत्र ने बहुत ठीक पहचाना।

राम – .....(उस पर बैठकर) यह पहाड़ी मोर देवी को याद कर रहा है, क्योंकि इस पर यह स्वजन की भाँति आनन्द प्राप्त कर रहा है।

वासन्ती – महाराज! तब तक यहाँ आसन ग्रहण कीजिये। (राम बैठ जाते हैं।)

टिप्पणी –

(1) किरकिसलयतालैः करौ किसलये इव तयोः नालाः तैः।

(2) देव्याः स्मरति– 'अधीगर्थदयेषां कर्मणि' (पा. 2।3 ।52) इति षष्ठी।

वासन्ती –

नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति,
कान्तासखस्य शयनीयशिलातलं ते।
अत्र स्थिता तृणमदाद्वनगोचरेभ्यः,
सीता ततो हरिणकैर्न विमुच्यते स्म।। 21।।

अन्वय – कान्तासखस्य ते नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यर्ति, शिलातलम् (अस्ति) अत्र स्थिता, सीताः, वनगोचरेभ्यः, तृणम्, अदात्, ततः, हरिणकैः, न विमुच्यते स्म।।21।।

रामः – इदमशक्यं द्रष्टुम्। (इत्यन्यतो रुदन्नुपविशति।)

अनुवाद –

वासन्ती – **(श्लोकार्थ)** सघन और छोटे-छोटे केलों के वन के बीच में यह आपके साथ विश्राम करने के लिए शिला-तल था। इस पर बैठी हुई सीता वन में विचरण करने वाले मृगों को कोमल तिनके दिया करती थी, इसी से उसे मृग नहीं छोड़ते थे।।21।।

राम – इसे (तो) देखना (ही) असम्भव है! क्योंकि यह उन कष्टप्रद घड़ियों का स्मरण करा कर मेरे हृदय में वेदना उत्पन्न कर रहा है। (रोते हुए दूसरी ओर बैठ जाते हैं।)

टिप्पणो –

(1) नीरन्ध्र....वर्ति – पाठा., 'एतत्तदेव कदलीवनमध्यवर्त्ति।' नीरन्ध्राः (निर्गतं रन्ध्रं याभ्यस्ताः) बालकदल्यः तासां वनं तस्य मध्ये वर्त्तते इति।

(2) विमुच्यते स्म – 'लट् स्मे' (पा., 3।2।118) इति लट्।

सीता – सखि वासन्ति! किं त्वया कृतमार्यपुत्रस्य मम चैतद्दर्शयन्त्या? हा धिक्! हा धिक्! स एवार्यपुत्रः, तदेव पञ्चवटीवनम्, सैव प्रियसखी वासन्ती, तं एव विविधविस्रम्भसाक्षिणो गोदावरीकाननोद्देशाः, त एव जातिनिर्विशेषा मृग-पक्षिणः पादपाश्च। मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति। ईदृशो जीवलोकस्य परिणामः संवृत्तः।

वासन्ती – सखि सीते! कथं न पश्यसि रामभद्रस्यावस्थाम्?

नवकुवलयस्निग्धैरंगैर्ददन्नयनोत्सवं,
सततमपि नः स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव सः।
विकलकरणः पाण्डुच्छायः, शुचा परिदुर्बलः,
कथमपि स, इत्युनेतव्यस्तथापि दृशोः प्रियः।।22।।

सीता – सखि! पश्यामि।

तमसा – पश्यन्ती प्रियं भूयाः।

अन्वय – नवकुवलस्निग्धैः, अङ्गैः, नयनोत्सवं ददत्, सततम्, अपि, नः, स्वेच्दादृश्यः, स, नवः-नवः, एव (आसीत् परं सम्प्रति तु)शुचा विकलकरणः, पाण्डुच्छायः, परिदुर्बलः, ''स, इति'' कथमपि, उन्नेतव्यः, तथापि, दृशोः, प्रियः।।22।।

हिन्दी –

सीता – सखि वासन्ति! आर्यपुत्र को और मुझे यह (स्थान) दिखाकर तुमने यह क्या कर डाला? हाय! हाय! यह वही आर्यपुत्र हैं, वही पञ्चवटी-वन है, वही प्रियसखी वासन्ती है, वही (हमारे) विश्वस्त विहारों के साक्षी गोदावरी के वन प्रदेश हैं और ये वही सुत-निर्विशेष पशु (मृग) पक्षी तथा वृक्ष भी है, परन्तु मुझे अभागिनी के लिए तो यह सब दिखलाई देता हुआ भी कुछ नहीं है। (मेरे लिए) संसार का ऐसा (दयनीय) परिणाम हो गया।

वासन्ती – सखि सीते! रामभद्र की अवस्था क्यों नहीं देखती?

(श्लोकार्थ) जो राम (पहले) नये नीले कमल के समान स्निग्ध अङ्गों से हमारे नेत्रों को आनन्द देते हुए सदैव अपनी रुचि के अनुरूप हमको नवीन ही नवीन प्रतीत होते थे, वे ही आज शोक से दुर्बल, विकलेन्द्रिय तथा पीले पड़े गये हैं, और बड़ी कठिनता से- ''ये वे ही है'' इस प्रकार पहचाने जाते हैं, फिर भी (ये) लोचनरमणीय हैं।।22।।

सीता – सखि! देख रही हूँ।

वासन्ती – चिरकाल तक प्रिय को (यों ही) देखती रहो!

टिप्पणी –

सीता – इति पश्यन्ती स्थिता। हा दैव! एष मया विना अहमप्येतेन विनेति केन सम्भावितमासीत्? तन्मुहूर्तमात्रं जन्मान्तरादपि दुर्लभलब्धदर्शनं वाष्पसलिलान्तरेषु पश्यामि तावद्वत्सलमार्यपुत्रम्।

तमसा – (परिष्वज्य सास्रम्।)

विलुलितमतिपूरैर्वाष्पमानन्दशोक-
प्रभवमवसृजन्ती पक्ष्मलोत्तानदीर्घा।
स्नपयति हृदयेशः स्नेहनिष्यन्दिनी ते,
धवलमधुरमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः।।23।।

अन्वय – अतिपूरैः, विलुलितम, आनन्दशोकप्रभवं वाष्पम् अवसृजन्ती, पक्ष्मलोत्तानदीर्घा, धवलमधुरमुग्धा, दुग्धकुल्या इव ते दृष्टिः स्नेहनिष्यन्दिनी (सती) हृदयेशं, स्नपयति।।23।।

सीता – हा दैव! ये ''मेरे बिना और मैं इनके बिना रहूँगी'' यह किसे सम्भावना थी? अतः मैं जन्मान्तर में भी दुर्लभ-दर्शन प्रिय आर्यपुत्र को आँसू न गिरने के समय देखती हूँ। (यदि आँसू आ गये तो दुर्लभ दर्शन आर्यपुत्र दिखाई न दे सकेंगे। अतः उन्हें रोककर मैं पतिदेव का दर्शन करती हूँ।)

(ऐसा कहकर देखती हुई खड़ी रहती हैं।)

तमसा – (लिपट कर रोती हुई)।

पूरे वेग से, आनन्द और शोक से उत्पन्न आँसू बरसाती हुई, सघन पलकों से दीर्घ, स्नेह बरसाने वाली तुम्हारी धवल, मधुर (प्रिय) तथा मनोहारिणी दृष्टि दुग्ध की 'कुल्या' (कृत्रिम नदी, नहर आदि) की भाँति प्राणेश्वर (राम) को स्नान करा रही है।।23।।

वासन्ती –

ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः,
स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रयान्तु वनानिलाः।
कलमविरलं रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः,
पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः।।24।।

अन्वय – मधुश्च्युतः, तरवः, पुष्पैः, फलैः, च अघ्य, ददतु। स्फुटितकमला मोदप्रायाः, वनानिलाः, वान्तु। रज्यत्कण्ठाः, शकुन्तयः अविरलं, कलं, क्वणन्तु। अयं, देवः, रामः, स्वयं पुनः, इदं वनम, आगतः।।24।।

रामः – एहि सखि वासन्ति! नन्वितः स्थीयताम्।

वासन्ति – (उपविश्य सास्रम्।) महाराज! अपि कुशलं क्मारलक्ष्मणस्य?

रामः – (अनाकर्णनमभिनीय)

करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पै-
स्तरुशकुनिकुरङ्गामैथिली यानपुष्यत्।
भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि,
द्रव इव हृदयस्य प्रस्रवोद्भेदयोग्यः।।25।।

अन्वय : मैथिली, करकमलवितीर्णै, अम्बुनीवारशष्पैः, यान्, तरुशकुनिकुरङ्गान, अपुष्यत नेषु दष्टेषु, प्रस्रवोद्भेदयोग्यः, मम, हृदयस्य, द्रव इव, कोऽपि, विकारः, भवति।।25।।

वासन्ती – महाराज! ननु पृच्छामि, कुशलं कुमारलक्ष्मणस्येति?

रामः – (आत्मगतम्) अये! महाराजेति निष्प्रणयमामन्त्रणपदम्। सौमित्रिमात्रके वाष्पस्खलिताक्षरः कुशलप्रश्नः। तथा मन्ये विदितसीतावृत्तान्तेयमिति। (प्रकाशम्) आः कुशलं कुमारलक्ष्मणस्य।

अनुवाद –

(श्लोकार्थ) वासन्ती क्योंकि भगवान् राम पुनः स्वयं इस वन में पधारे हैं, अतः इनका स्वागत करने के लिये मकरन्द बरसाने वाले वृक्ष फल और फूलों से अर्घ्य दें। विकसित कमलों का सौरभ लेकर वन का समीर बहे! और पक्षीगण सुरीले कण्ठ से निरन्तर कूजन करें।।24।।

राम – आओ, सखि वासन्ती! इधर बैठो।

वासन्ती – (बैठकर, आँसू भरकर) महाराज 'कुमार लक्ष्मण' सकुशल तो हैं?

अपने कर कमलों से जल, नीवार तथा (मृदु) घास देकर मैथिली ने जिन वृक्ष, पक्षी तथा मृगों को पाला था, आज उन्हें देखने पर मेरे हृदय में, झरने के फूटने के समान कोई द्रवित करने वाला विकार उत्पन्न हो रहा है। (जिस प्रकार झरना बड़े वेग से झरता है, उसी प्रकार मेरा हृदय भी पिघलकर वह सा रहा है।)।।25।।

वासन्ती – मैं पूछती हूँ कि 'कुमार लक्ष्मण' सकुशल तो हैं?

राम – (स्वयं ही) अरे, महाराज! यह स्नेह-हीन सम्बोधन है और आँसुओं के कारण अस्पष्ट अक्षरों से (गद्‌गद् स्वर से) केवल लक्ष्मण के सम्बन्ध में ही कुशल प्रश्न किया गया है, इससे मैं अनुमान करता हूँ कि यह सीता के समाचार से परिचित है (प्रकाश में) हाँ, कुमार लक्ष्मण सकुशल हैं।

वासन्ती – (रुदती) अयि देव! किं परं, दारुणं खल्वसि।

सीता – सखि वासन्ति! किं त्वमेवंवादिनी भवसि? पूजार्हः सर्वस्यार्यपुत्रः विशेषतो मम प्रियसख्याः।

वासन्ती –

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं,
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां,
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण।।26।।

(इति मुह्यति)

अन्वय : त्वं जीवितं त्वं मे द्वितीयं, हृदयम्, त्वं नयनयोः कौमुदी, त्वम् अङ्गे अमृतम् असि, इत्यादिभिः प्रियशतैः, मुग्धाम्, अनुरुध्य ताम् एवं अथवा शान्तम्, अतः परेण किम्?।।26।।

अनुवाद –

वासन्ती – (रोती हुई) देव! क्या कहूँ? आप (अत्यन्त) कठोर है।

सीता – सखि वासन्ति! तू ऐसा क्यों कह रही है? आर्यपुत्र सबके पूज्य हैं, विशेषकर मेरी प्रिय सखी के।

वासन्ती –

(श्लोकार्थ) "तुम (मेरी) प्राण हो, तुम मेरा दूसरा हृदय हो, तुम मेरे नेत्रों के लिए कौमुदी हो और तुम मेरे अङ्गों में अमृत हो!" इत्यादि सैंकड़ों चाटुकारिता पूर्ण वाक्यों से उस भोली-भाली को बहकाकर आपने उसी को....। अथवा रहने दो इससे आगे कहने से क्या लाभ? (मूर्छित हो जाती है)।।26।।

तमसा – स्थान व वाक्यनिवृत्तिर्मोहश्च।

रामः – सखि! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

वासन्ती – (समाश्वस्य) तत्किमिदमकार्यमनुष्ठितं देवेन?

सीता – सखि वासन्ति! विरम, विरम।

रामः – लोको न मृष्यतीति।

वासन्ती – कस्य हेतोः?

रामः – स एव जानाति किमपि।

तमसा – चिरादपालम्भः।

वासन्ती –

अयि कठोर! यशः किल ते प्रियं,
किमयशो ननु घोरमतः परम्?
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः,
कथय नाथ! कथं बत मन्यसे? ।।27।।

अन्वय – अयि, कठोर! यशः, ते, प्रियं किल, ननु अतः परं, घोरं, अयशः, किम्? हरिणीदृशः, विपिने, किम, अभवत्? नाथ! कथय, कथं, मन्यसे? बत।।27।।

सीता – सखि वासन्ति! त्वमेव दारुणा कठोरा च। यैवं प्रलपन्तं प्रलापयसि।

तमसा – प्रणय एवं व्याहरित शोकश्च।

त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टे-
स्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः।
ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा,
क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता।।28।।

अन्वय – त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेः परिस्फुटितगर्भभराऽलसायाः तस्याः, मृदुबालमृणालकल्पा, ज्योत्स्नामयी इव अङ्गलतिका, क्रव्याद्भिः, नियतं, विलुप्ता।।28।।

सीता – आर्यपुत्र! ध्रिये एषा ध्रिये।

रामः – हा प्रिये जानकि! क्वासि?

सीता – हा धिक् हा धिक्! अन्य इवार्यपुत्रः। प्रमुक्तकण्ठं प्ररुदितो भवति।

तमसा – वत्से! साम्प्रतिकमेवैतत्। कर्तव्यानि खलु दुःखितैर्दुःखनिर्धारणानि।

पूरोत्पीडे त टाकस्य, परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं, प्रलापैरेव धार्यते।।29।।

विशेषतो रामभद्रस्य बहुप्रकारकष्टो जीवलोकः।

इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा,
प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मो ग्लपयति।
स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्यसुलभ-
स्तदद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम्।।30।।

अन्वय – अभियुक्तेन मनसा, इदं विश्वं, विधिवत् पाल्यं, धर्म, कुसुमम्, इव, प्रियाशोकः, जीवं गल्पयति, स्वयं त्यांग कृत्वा, विलपनविनोदः, अपि, असुलभः तत्, अद्यापि, उच्छ्वासः, भवति, ननु, रुदितम्, लाभः, हि।।30।।

अनुवाद –

तमसा - उचित स्थान पर वाक्य समाप्ति और मूर्छा हुई।

राम - सखि! धैर्य धारण करो! धैर्य धारण करो।

वासन्ती - (आश्वस्त होकर) तो आपने ऐसा अनर्थ क्यों कर डाला?

सीता- सखि, वासन्ति! बस कर, रहने दे।

राम - लोक सहन नहीं करता (इसलिए कर डाला)।

वासन्ती - किस लिए?

राम - जो कुछ भी हो, वही जानता है।

तमसा - (लोक के प्रति) यह उपन्यास बड़े विलम्ब से है। अर्थात् यदि ऐसा पहले सोचा होगा तो सीता-निर्वासन की बारी ही न आती। परन्तु अब तो समय बीत चुका है, अतः इसका कोई महत्व नहीं है।

वासन्ती -

(श्लोकार्थ) कठोरहृदयम राम! आपको यश बहुत प्रिय है, परन्तु इससे अधिक कठोर अपयश और क्या होगा? कि आपने निरपराध सीता का परित्याग कर दिया। उस मृगनयनी (सीता) का वन में क्या हुआ? नाथ! कहिये न।।27।।

सीता - सखि, वासन्ति! तू ही दारुण और कठोर है जो इस प्रकार प्रलाप करते हुए (आर्यपुत्र) को और अधिक प्रलाप करवा रही है।

तमसा - प्रणय और शोक ही ऐसा कहला रहा है।

राम - सखि! इसमें सोचना ही क्या है?

(श्लोकार्थ) एक वर्ष के त्रस्त मृग-छौने के समान चञ्चल नेत्रों वाली तथा फड़कते हुए गर्भ के भार से आलस्य-युक्त (सीता की) चन्द्रिकामयी, मृणालोपम कोमल काया, निश्चय ही, मांसाहारी जीवों ने नष्ट कर दी (होगी।)।।28।।

सीता - हाय! हाय! साधारण मनुष्य की भाँति आर्यपुत्र मुक्तकण्ठ से रो रहे हैं।

तमसा - वत्से! यह उचित ही है। दुखियों को अपने दुःखों का निश्चय करना ही चाहिये।

(श्लोकार्थ) तालाब में अधिक पानी भर जाने पर (नालियों के द्वारा) उसे निकाल देना ही उसकी प्रतिक्रिया होती है। (इसी प्रकार) शोक से क्षुब्ध हृदय रो-धोकर ही शान्त किया जा सकता है। (अधिक शोक में एक बार अच्छी तरह रो लेने पर जी हल्का हो जाता है।)।।29।।

विशेषकर रामचन्द्र के लिए संसार विविध कष्टमय है! क्योंकि

(श्लोकार्थ) (पहले तो इन्हें) यथाविधि सावधान चित्त से इस विश्व का पालन करना पड़ता है, (उस पर भी) प्रिया का शोक - जैसे (कड़ी) धूप पुष्प को सुखा देती है- वैसे ही इनके जीवन को सुखा रहा है। स्वयं (पत्नी का) परित्याग कर (इन्हें) रोकर मन बहला लेना भी सर्वथा दुर्लभ हैं। इतने पर भी इनके प्राण अब तक (बचे हुए) है (ऐसी दशा में जीवन-धारणार्थ) रोना महान् लाभकारी है।।30।।

टिप्पणी -

कस्य हेतोः - ''षष्ठी हेतुप्रयोगे'' (पा. 2।3।26) इति हेतुशब्दप्रयोगे हेतौ द्योत्ये षष्ठी। **(2) स एव जानाति किमपि** - श्रीरामचन्द्रजी हृदय दुखाने वाली बात नहीं कहना चाहते अथवा लज्जावश 'किमपि' यह गोल-मोल पद कहा है। (3) **चिरादुपालम्भः** - पाठा., **'उचितस्तदुपालम्भः'**।

2. पूरोत्पीडे – पूरस्योत्पीडे इति पूर + उत् + पीड् + धञ् भावे पूरोत्पीड:। उत्पीडे = समूहे, उत्पीडने वा। 'पुरो जल प्रवाहे स्याद्व्रणसंशुद्धि खाद्ययो: इति मेदिनी।' **3. तटाकस्य** – पाठा., '**तडागस्य**' एवं तडाकस्य **4. परीवाह:** परिवाह्यते अनेनेति परोवाह:। 'उपसर्गस्य घञ्मनुष्ये बहुलम्' (पा., 6। 122) इति विकल्पेन दीर्घ:। जलोच्छ्वासा: परीवाहा: इत्यमर:। (क्षीरस्वामी ने इस पर लिखा है : जलं प्रवृद्धमुच्छ्वसिति परिवहति यैनिर्गममार्गस्ते परिवाहा:, यल्लक्ष्यम् – 'उपार्जितानामर्थानां त्याग हि रक्षणम्।' तटाकोरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्।

11. विशेषतो रामभद्रस्य बहुप्रकारकष्टो जीवलोक: पाठा. विशेषतो रामभद्रस्य यस्य बहु (तर) प्रकारकष्टो जीवलोक:। (12)

2. विधिवदभियुक्तेन मनसा – क्षत्रिय का सर्वप्रमुख कर्तव्य प्रजापालन ही है, अत: यहाँ 'अभियुक्त' शब्द दिया गया है। कहा भी है –

''प्रधानं क्षत्रिये कर्मप्रजानां परिपालनम्'' (याज्ञवल्क्य. 1। 119)

राम: – कष्टं भो:? कष्टम्!

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद्द्विधा तु न भिद्यते,
वहति विकल: कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाह: करोति न भस्मसा-
त्प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्।।31।।

अन्वय – हृदयं, शोकोद्वेगात्, दलति, द्विधा तु न भिद्यते। विकल: काय:, मोहं वहति, चेतनां (तु) न मुञ्चति। अन्तर्दाह: तनूं ज्वलयति, भस्मसात् (तु) न करोति। मर्मच्छेदी विधि:, प्रहरति, जीवितं (तु) न कृन्तति।।31।।

हे भगवन्त: पौरजानपदा:!

न किल भवतां देव्या: स्थानं गृहेऽभिमतं तत-
स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता।
चिरपरिचितास्ते ते भावास्तथा द्रवयन्ति मा-
मिदमशरणैरद्यास्माभि: प्रसीदत रुद्यते।।32।।

अन्वय – देव्या: गृहे स्थानं, भवतां न अभिमतम्,तत: तृणम् इव शून्ये वने त्यक्ता, न च अनुशोचिता अपि, चिरपरिचिता: ते ते भावा:, मां तथा द्रवयन्ति, अद्य अशरणै: अस्माभि: इदं रुद्यते प्रसीदत।।

अनुवाद –

राम – कष्ट! (अतिशय) कष्ट!

(श्लोकार्थ) मेरा हृदय शोकावेग से विदीर्ण हो रहा है, परन्तु दो टुकड़ों में विभक्त नहीं होता (टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाता।) शोकाकुल शरीर मोह धारण कर रहा है, परन्तु चेतना को नहीं छोड़ना। अन्तर्दाह शरीर को चला रहा है, परन्तु भस्मसात् नहीं करता। और यह मर्म-स्थलों पर आघात करने वाला भाग्य प्रहार (तो) करता है, परन्तु जीवन को नष्ट नहीं करता! (इस प्रकार मैं बड़े भारी कष्ट को अनुभव कर रहा हूँ)।।31।।

सम्मान्य नागरिकों और जनपदवासियों!

(श्लोकार्थ) सीता का मेरे घर में रखना आप लोगों को अभीष्ट न था, अत: मैंने उसे तिनके के भाँति शून्य वन में छोडऋ दिया और उसके लिये कोई भी शोक नहीं किया। परन्तु आज वे चिर-परिचित

भाव मुझे द्रवित कर रहे हैं, अतः मैँ अशरण होकर रो रहा हूँ। आप लोग क्षमा करें! आज यहाँ उन चिर–परिचित स्थानों को देखकर मेरे हृदय का बाँध टूट गया है जिससे कि मैं विवश होकर रो रहा हूँ। इसके लिए आप लोग, कृपा कर, मुझे क्षमा कर दीजियेगा अथवा 'प्रसीदत' व्यङ्ग्य के रूप में भी हो सकता है।।32।।

टिप्पणी –

1. शोकोद्वेगात् पाठा., **'गाढोद्वेगात्'** तथा **गोढोद्वेगम्**। उद् + विज् + घञ् = उद्वेगः 2. भिद्यते भिद् + लट् ते कर्मकर्त्तरि। **3. ज्वलयति** – ज्वल + णिच् + ति। **भस्मसात्करोति** – साकल्येन भस्म इति भस्म + साति + कृ ति। 'विभाषा साति कार्त्स्न्ये' (पा. 5।4।52)। त्रिपुरारि ने इस पर टिप्पणी दी है – अन्तरेव हि दलने यादृशी व्यथा स्यात्तादृशी व्यथा हृदि वर्त्तते...। यदि मोहः कथमेवं जानासीत्यत्रोत्तरम्। चेतनां.... तु न मुञ्चत्येवेत्याशयः। तथान्तर्दाहः स्मरपवनसंधुक्षित–शोकानलरूपस्तनं दहति। तर्हि 'दह् भस्मीकरणे' इति धात्वर्थात्किमिति भस्मरूपता न दृश्यते इत्यत्र भस्मसान्न करोतीत्युत्तरम्।

1. अभिमतम् अभि + मन + क्त कर्मणि वर्तमाने।

2. भ्रमयति – भ्रम + णिच् + ति, मित्वाद् ह्रस्व

वासन्ती – (स्वगतम्) अतिगभीरमवपूरणं मन्युभारस्य। (प्रकाशम्) देव! अतिक्रान्ते धैर्यमवलम्ब्यताम्।

रामः – किमुच्यते, धैर्यमिति?

देव्या शून्यस्य जगतो, द्वादशः परिवत्सरः।
प्रणष्टमिव नामापि, न च रामो न जीवति?।।33।।

अन्वय – देव्याः शून्यस्य जगतो द्वादशः, परिवत्सरः (वर्तते), नामापि प्रणष्टमिव (जातम्), रामश्च न जीवति (इति) न ।।33।।

अनुवाद –

वासन्ती – (स्वयं ही) शोक–भार बहुत बढ़ गया है। (प्रकाश में) महाराज! बीती हुई बातों पर धैर्य धारण कीजिये।

राम – क्या कहती हो? (धैर्य धारण करूँ?)

(श्लोकार्थ) देवी (सीता) से शून्य हुए आज संसार का बारहवाँ वर्ष है। (इस बीच में) उनका नाम भी नष्ट (सा) हो गया है, फिर भी क्या राम जीवित नहीं है?।।33।।

टिप्पणी –

(1) अतिगभीरमापूरणं मन्युभारस्य – पाठा., 1 अतिगभीरमवपूरणं शोकसागरस्य, 2. अतिगम्भीरमापूरणं मन्युसम्भारस्य।

1. प्रणष्टमिव नामापि – पाठा. 1. 'लुप्तं सीतेति नामापि', 2. 'न च सीतेति नामापि'। 2. न च रामो न जीवति – जहाँ दो 'न' का प्रयोग हो वहाँ, 'स्वीकारोक्ति' ही होती है। 'सम्भाव्यनिषेधनिवर्त्तने द्वौ' प्रतिषधौ (वामन काव्यालङ्कारसूत्र, 5।1।9)।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब मैं बारह वर्ष सीता के दारुण वियोग में काट चुका हूँ तो इससे अधिक धैर्य और क्या होगा?

सीता – अपह्रिये च मोहितेव एतैरार्यपुत्रस्य प्रियवचनैः।

तमसा – एवमेव वत्से!

नैताः प्रियतमा वाचः, स्नेहार्द्राः, शोकदारुणाः।
एतास्ता मधुनो धाराः, श्च्योतन्ति सविषास्त्वयि।।34।।

अन्वय – एताः वाचः प्रियतमाः स्नेहार्द्राः, शोकदारुणाः, न (अपितु), एताः ताः सविषाः, मधुनः, धाराः, त्वयि श्च्योतन्ति।।34।।

अनुवाद –

सीता – मैं आर्यपुत्र के इन प्रिय वचनों से मोहित-सी हो सुध-बुध खो रही हूँ।

तमसा – ऐसा ही है पुत्री!

(श्लोकार्थ) ये स्नेह-सिक्त, शोक से दारुण प्रिय वचन नहीं है अपितु ये वे विषययुक्त मधु की धारायें है, जो तुम्हारे ऊपर पड़ रही हैं।।34।।

टिप्पणी –

1. यहाँ अपह्नुति अलङ्कार है।

2. श्रीराम के वचन में दो गुण है – 'स्नेहार्द्रता' और 'शोकदारुणता।' उन्हीं के आधार पर क्रमशः मधु की धारा में 'मधुत्व' और 'सविषता' का प्रतिपादन किया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ये श्रीराम की बातें पहले बड़ी प्यारी और स्नेह-सिक्त लग रहीं हैं किन्तु बाद में कष्टप्रद हैं उसी प्रकार जिस प्रकार कि विषमिश्रित मधु की धारा।

राम – अयि वासन्ति! मया खलु –

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं, प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दन्तः।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशंकुर्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः?।।35।।

अन्वय – यथा अन्तः प्रत्युप्तं, तिरश्चीनम्, अलातशल्यं, सविषः, दन्तश्च, तथैव, तीव्रः, मर्माणि कृन्तन् अपि, हृदि शोक-शंकुः, किं न सोढः? ।।35।।

सीता – एवमपि मन्दभागिन्यहं या पुनरायासकारिणी आर्यपुत्रस्य।

रामः – एवमतिगूढस्तम्भितान्तःकरणस्यापि मम संस्तुतवस्तुदर्शना- दद्यायमावेगः। तथा हि –

वेलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थं,
यो यो यत्नः कथमपि समाधीयते तं तमन्तः।।
भित्वा भित्वा प्रसरति बलात्कोऽपि चेतोविकार-
स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः ।।36।।

अन्वय – वेलोल्लोलक्षुभि करुणोज्जृभणस्तम्भनार्थ, यः यः यत्नः कथमपि समाधीयते तं ते कोऽपि चेतोविकारः अप्रतिहतरयः तोयस्य ओघः, सैकतं सेतुमिव अन्तः, बलात्, भित्वा-भित्वा, प्रसरति।।36।।

सीता – आर्यपुत्रस्यैतेन दुर्वारदारुणारम्भेणः दुःखसंयागेन परिमुषितनिजदुःखं प्रमुक्तजीवितं मे ह्रदयं स्फुटति।

वासन्ती – (स्वगतम्) कष्टमत्यासक्तो देवः। तदाक्षिपामि तावत्। (प्रकाशम्) चिरपरिचितानिदानीं जनस्थानभोगानवलोकनेन मानयतु दवः।

रामः – एवमस्तु (इत्युत्थाय परिक्रामति)

अनुवाद –

राम - वासन्ती!

(श्लोकार्थ) जिस प्रकार हृदय में तिरछा धंसा हुआ, तपाने से लाल शल्य (कील) और विषैला दाँत दारुण यन्त्रणा उत्पन्न करता है वैसे ही इस असह्य तथा मर्म-स्थलों को विदीर्ण करने वाले, हृदय में गड़े हुए शोकशल्य को क्या मैंने नहीं सहा?।।35।।

सीता - मैं ऐसी अभागिन हूँ जो कि आर्यपुत्र को फिर से दुःख दे रही हूँ!

राम - इस प्रकार अत्यन्त गम्भीरता से अन्तःकरण को रोकने पर भी, चिर-परिचित पदार्थों को देखने से आज मुझे वह शोकावेग हो गया! जैसा कि -

(श्लोकार्थ) मर्यादा का अतिक्रमण करके क्षुब्ध होने वाले शोक की वृद्धि को रोकने के लिए मैं जैसे-जैसे जो-जो यत्न करता हूँ उस उसको बीच ही में रोककर कोई चित्त का विकार जैसे अबाध जल के वेग रेतीले पुल को तोड़कर फैल जाता है, वैसे ही बढ़ रहा है।।36।।

सीता - आर्यपुत्र के दुर्वार (न रोके जाने वाले) दारुण शोक से अपना दुःख भूलकर मेरा हृदय निर्जीव होकर फटा (सा) जा रहा है।

वासन्ती - (स्वयं ही) खेद है! देव (राम) बहुत शोकाकुल हो गये हैं। इसलिए इनका ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट करती हूँ। (प्रकाश में) अब आप इन चिर-परिचित दण्डकारण्य प्रदेशों को देखकर (इन्हें) सम्मानित करें।

राम - ऐसा ही सही। (उठकर घूमते हैं।)

टिप्पणी -

(1) तिरश्चीनम् -तिर्यगेव तिरश्चीनम्। तिर्यच् + ख। ''विभाषाञ्चेर-दिक्स्त्रियाम्'' (पा. 5। 4। 8)। 'तिर्यक् तिरोऽर्थ वक्रे च विहङ्गादौत्वनव्ययम्' - इत्यमरः। (2) **अलातशल्यम्** - अलातरूपं शल्यम्। ''अङ्गारोऽलातमुल्मुकम्'' - इत्यमरः शाकपार्थिवादित्वान्मध्यमपदलोपिसमासः।

(4) **प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दन्तः** - 1. पाठा., ...सविषश्च दंशः। 2. प्रत्युप्तम = प्रति + वप् + क्त। 3. यहाँ 'च' का प्रयोग 'वा' के अर्थ में हुआ है। ''च पादपूरणे पक्षान्तरे हेतौ विनिश्चये'' - इति त्रिकाण्डशेषः।

सीता - संदीपन एव दुःखस्य प्रियसंख्या विनोदनोपाय इति तर्कयामि।

बासन्तो - देव देव!

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः,
सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद्गोदावरीसैकते।
आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया,
कातर्यादरविन्दकुङ्मलनिभो मुग्धः प्रणामाञ्जलिः।।37।।

अन्वय - अस्मिन्नेव, लतागृहे, त्वं, तन्मार्गदत्तेक्षणः, अभवः, साहसैः, कृतकौतुका, गोदावरी सैकते, चिरमभूत्। आयान्त्या, त्या, त्वां परिदुर्मनायितम्, इव वीक्ष्य, कातर्यात् अरविन्दकुङ्मलनिभः, प्रणामाञ्जलिः, बद्धः।।37।।

सीता - दारुणासि वासन्ति! दारुणासि। या एतैर्हृदयमर्मोद्घाटितशल्यसंघट्टनैः पुनः पुनरपि मां मन्दभागिनीमार्यपुत्रं च स्मरयसि।

अनुवाद -

सीता - मैं समझती हूँ कि (आर्यपुत्र के) दु:ख को और बढ़ाना ही प्रिय सखी वासन्ती के विनोद का साधन है।

वासन्ती - देव! देव!

(श्लोकार्थ) (देखिये) यह वही लता-गृह है, जहाँ आप मार्ग की ओर आँखें लगाकर सीता की प्रतीक्षा कर रहे थे, परन्तु उन्हें गोदावरी के रेतीले तट पर हंसों से खेलते हुए देर हो गई थी। जब कुछ देर बाद, लौटकर आती हुई उन्होंने आपको कुछ खिन्न सा देखा तो कातरता से कमल-कलिकाओं के समान सुन्दर अङ्गुलियों को जोडकर (देरी के लिए क्षमा माँगते हुए) आपको दूर से ही प्रणामाञ्जलि समर्पित की थी। ।।37।।

सीता - सखि वासन्ती! तू बड़ी कठोर है जो हृदय के मर्मस्थल में उद्घाटित शोकशल्य को बारम्बार हिला हिलाकर मुझे और आर्यपुत्र को स्मरण करा रही है। बार-बार पुराने प्रसङ्गों को उभार उभार कर हम दोनों को दु:खाभिभूत कर रही है।

टिप्पणी -

1. तन्मार्गदत्तेक्षण: - तस्या: मार्गस्तन्मार्ग:, तस्मिन् दत्तम् ईक्षण येन स:। 2. कृतकौतुका - पाठा., 'स्थिरकौतुका'। 3. गोदावरीसैकते - गादावर्या: सकते। सैकतम् =सिकता + देशे लुबिलचौ च (पा. 5। 2। 105)।

राम: - अयि चण्डि जानकि! इतस्ततो दृश्यसे, नानुकम्पसे।

हा हा देवि स्फुटति हृदयं, ध्वंसते देहबन्ध:,
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा,
विष्वङ्मोह: स्थगयति कथं मन्दभाग्य: करोमि?।।38।।

अन्वय - हा हा देवि! हृदयं स्फुटति, देहबन्ध: ध्वंसते, जगत् शून्यं मन्ये, अन्त: अविरलज्वालम्, ज्वालामि, सीदन् विधुर:, अन्तरात्मा, अन्धे तमसि मज्जति इव, मोह:, विष्वक् स्थगयति, मन्दभाग्य: कथं करोमि? ।।38।।

(इति मूर्च्छति)

सीता - हा धिक् हा धिक्! पुनरपि मूढ आर्यपुत्र:!

वासन्ती - देव! समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

सीता - आर्यपुत्र! मां मन्दभागिनीमुद्दिश्य सकलजीवलोकमाङ्गलिकजन्मलाभस्य ते वारंवारं संशयितजीवितदारुणो दशपरिणाम इति हा हतास्मि।

तमसा - वत्से! समाश्वसिहि। पुनस्ते पाणिस्पर्शो रामभद्रस्य जीवनोपाय:।

वासन्ती - कथमद्यापि नोच्छ्वसिति? हा प्रियसखि सीते! क्वासि? सम्भावयात्मनो जीवितेश्वरम्।

(सीता ससम्भ्रमुपसृत्य हृदि ललाटे च स्पृशति।)

अनुवाद -

राम - हे सीते! इधर-उधर दिखाई (तो)दे रही हो मुझ पर दया नहीं करती?

(श्लाकार्थ) हा, देवि! (तुम्हारे वियोग में मेरा) हृदय फटा जा रहा है! देह के बन्धन ढीले पड़ रहे हैं। मैं संसार को शून्य समझ रहा हूँ। मैं भीतर ही भीतर लगातार जला जा रहा हूँ। मेरी व्याकुल अन्तरात्मा

गाढ़े अन्धकार में धंसी जा रही ह! मुझे मोह चारों ओर से घेर रहा है! हा! मैं भाग्यहीन (अब) क्या करूँ?।।38।।

सीता – हाय! हाय! आर्यपुत्र फिर मूर्छित हो गये!

वासन्ती – महाराज धैर्य धारण कीजिये! धैर्य धारण कीजिये।

सीता – आर्यपुत्र मुझ मन्दभागिनी को लक्ष्य कर, समस्त संसार के कल्याण के लिये जन्म लेने वाले आपका, जीवन को संशय में डाल देने वाला विषय परिणाम हो रहा! हाय! मैं हतप्राय हो रही हूँ। (मूर्च्छित हो जाती है।)

तमसा – वत्से! आश्वस्त हो! आश्वस्त हो! पुनः तुम्हारे हाथ का स्पर्श रामभद्र के जीवन का उपाय है।

वासन्ती – क्या अब भी सचेत नहीं हो रहे हैं? हा! प्रियसखि, सीते! तुम कहाँ हो? अपने प्राणेश्वर को संभालो!

(सीता घबराहट से पास जाकर हृदय और ललाट पर स्पर्श करती है।)

वासन्ती – दिष्ट्या प्रत्यापन्नचेतनो रामभद्रः।

रामः –

आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपैरन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून्।
संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मादानन्दादपरमिवादधाति मोहम्।।39।।

अन्वय –अमृतमयैः, प्रलेपैः अन्तर्वा वहिरपि वा शरीरधात्न्, आलिम्पन्नि जीवयन्, अकस्मात्, संस्पर्शः, पुनरपि, आनन्दात् अपरं, मोहम् आदधाति इव।।39।।

(सानन्दं निमीलिताक्ष एव) सखि, वासन्ति! दिष्ट्या वर्धसे।

वासन्ती – कथमिव?

रामः – सखि! किमन्यत्? पुनरपि प्राप्ता जानकी।

वासन्ती – अयि देव रामभद्र! क्व सा?

रामः – (स्पर्शसुखमभिनीय) पश्य, नन्वियं पुरत एव।

वासन्ती – अयि देव रामभद्र! किमिति मर्मच्छेददारुणैरतिप्रलापैः प्रियसखीविपत्तिदुःखदग्धामपि मां पुनः पुनर्मन्दभाग्यां दहसि?

सीता –अपसर्तुमिच्छामि। एष पुनः चिरप्रणयसम्भरसौम्यशीतलेन आर्यपुत्रस्पर्शेन दीर्घदारुणमपि झटिति सन्तापमुल्लाधयता वज्रलेपोपनद्ध इव पर्यस्तव्यापार आसञ्जित इव मेऽग्रहस्तः।

अनुवाद –

वासन्ती – सौभाग्य से रामभ्रद पुनः सचेत हो गये हैं।

राम – **(श्लोकार्थ)** अन्दर और बाहर (शरीर के भीतर और बाहर की) धातुओं पर अमृतमय लेप करना तथा मुझको जीवित-सा बनाता हुआ यह स्पर्श सहसा आनन्द के कारण पनः मोह उत्पन्न कर रहा है।।39।।

(आनन्द से आँखें बन्द करके) सखि वासन्ति! सौभाग्य से बढ़ रही हो!

वासन्ती – कैसे?

राम – वासन्ती! सखि और क्या? जानकी पुनः मिल गयी है।

राम – (स्पर्श-सुख का अभिनय कर) देखो न, यह सामने ही है।

वासन्ती – देव, रामभद्र! इन मर्म-विदारक अत्यन्त दारुण विलापों से सखी (सीता) के दुःख से दग्ध मुझ मन्दभागिनी को और क्यों दग्ध कर रहे!

सीता – मैं दूर हटना चाहती हूँ, क्योंकि, बहुत दिनों से सञ्चित प्रेम से आनन्द-दायक तथा शीतल, आर्यपुत्र के लम्बे एवं दारुण शोक को दूर करने वाले स्पर्श से वज्र के लेप से जकड़ा हुआ सा निश्चेष्ट होकर मेरे हाथ का अग्रभाग चिपक-सा गया है।

टिप्पणी –

(1) शरीरधातून् – शरीर में सप्त धातुयें कहीं गयी है- 1. रस, 2. रुधिर, 3. माँस मेद, 5. अस्थि, 6. मज्जा एवं 7. शुक्र। ''रसासृङ् मांसमेदोऽस्थितमज्जा शुक्राणि धातवः: (वाग्भट)।'' (2) अमृतमयैः – अमृतस्य विकारैः। अमृत + मयट्। (3) आनन्दात् – ''ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च'' – इति पञ्चमी अथवा 'हेतौ' पञ्चमी। (4) अपरविधं मोहं तनोति – अपरा विधा यस्य तम् अपरविधम्।

रामः – सखि! कुतः प्रलापः?

गृहीता यः पूर्वं परिणयविधौ कङ्कणधरः,
सुधासूतेः पादैरमृतशिशिरैर्यः परिचितः।

सीता – आर्यपुत्र! स एवेदानीमसि त्वम्?

रामः –

स एवायं तस्यास्तदितरकरौपम्यसुभगो,
मया लब्धः पाणिर्ललितलवलीकन्दलनिभः।।40।।

अन्वय : पूर्वं परिणयविधौ कङ्कणधरो यो गृहीतः, सुधासूतेः, अमृतशिशरैः पादैः यः परिचितः, (सीताया आर्यपुत्र! स एवेदानीमसि त्वम्)? इति कथनानन्तरं रामः उत्तरार्द्ध पठति, तस्य चान्वय इत्यम् ललित-लवली-कन्दलनिभः, तदितरकरौपम्य सुलभः, स, एवायं, तस्याः, पाणिः, मया लब्धः।

(इति गृह्णाति।)

सीता – हा धिक् हा धिक्! आर्यपुत्रस्पर्शमोहितायाः प्रमादो मे संवृत्तः।

रामः – सखि वासन्ति! आनन्दमीलितः प्रियास्पर्शसाध्वसने परवानस्मि। तत्त्वमपि धारय माम्।

वासन्ती – कष्टमुन्माद एव।

(सीता ससम्भ्रमं हस्तमाक्षिप्यापसर्पति।)

अनुवाद –

राम – सखि! प्रलाप का क्या काम?

(श्लोकार्थ) ''जिसे (मैंने) पहिले पाणिग्रहण संस्कार में कङ्कण धारण किये हुए पकड़ा था और जो कि चन्द्रमा की अमृतमय किरणों से परिचित था'' –

सीता – आर्यपुत्र! क्या आप अब भी वहीं है? (मेरा परित्याग करने के अनन्तर भी मुझे चाहते हैं?) अथवा आप अब भी वहीं हैं, जिनको मैंने विवाह के समय कङ्कण-धारण किए हुए वरण किया था और जो चन्द्र-किरणों के समान प्रियदर्शन थे।

राम – ''उससे (पकड़े हुए से अतिरिक्त दूसरे हाथ के समान शोभा वाले 'लवली' लता क अङ्कुर के समान यह हाथ मैंने पा लिया है।)''

आशय यह है कि रामचन्द्र जी ने विवाह के समय जो हाथ पकड़ा था उसकी उपमा उनके (सीता जी के) ही दूसरे हाथ से ही हो सकती थी और किसी से नहीं। 'तदितरकरौपम्यासुभगः' का अभिप्राय यही है। ।।40।। (पकड़ लेते हैं।)

सीता – हाय! हाय! आर्यपुत्र के स्पर्श से मोहित मुझसे प्रमाद हो गया है!

राम – सखि वासन्ति! (मन में) प्रिया-स्पर्श के आनन्द से उत्पन्न आन्दोलन हल-चल मचने के कारण मैं परवश हो रहा हूँ। अतः तुम मुझे संभालो!

वासन्ती – दुःख है! यह उन्माद ही है। उन्माद के कारण ही ये ऐसा कर रहे हैं।

(सीता शीघ्रता से हाथ खींचकर दूर हट जाती है।)

टिप्पणी –

(1) सुधासूते....परिचित – पाठा., 'चिरं स्वेच्छास्पर्शैरमृतशिशरैः'..... सुधायाः (अमृतस्य) सूतिः (उत्पत्तिः) यस्मात्सः सुधासूतिः तस्य। चन्द्रमा के लिए प्रयुक्त होता है।

''सूर्यरश्मिः सुषुम्नो यस्तर्पितस्तेन चन्द्रमाः।''
कृष्णपक्षेऽमरैः शश्वत्पीयते वै सुधामयः। (विष्णुपुराण, 2।11।22)

(2) आर्यपुत्र! स एवेदानीमसि त्वम् – इस वाक्य में बहुत नाटकीयता है। भवभूति ने पद्यों के मध्य में अनेक स्थानों पर गद्य का प्रयोग करके विच्छिति उत्पन्न की है।

राम – धिक् प्रमादः!

करपल्लवः स तस्याः, सहसैवः, जडो जडात्परिभ्रष्टः।
परिकम्पिनः प्रकम्पी, करान्मम स्विद्यतः स्विद्यन्।।41।।

अन्वय : जडः, प्रकम्पी, स्विद्यन्, तस्याः, स, करपल्लवः, जडात्, परिकम्पिनः। स्विद्यतः, मम करात्, सहसा, एव, परिभ्रष्टः ।।41।।

सीता – हा धिक् हा धिक्! अद्याप्यनुबद्धबहुघूर्णमानवेदनं न संस्थापयाम्यात्मानम्।

तमसा – (सस्नेहकौतुकस्मितं निर्वर्ण्य)

सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी, जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा।
मरुन्नवाम्भः परिधूतसिक्ता, कदम्बयष्टिः स्फुटकारकेव।।42।।

अन्वयः – वत्सा, प्रियस्पर्शसुखेन मरुन्नवाम्भःपरिधूतसिक्ता, स्फुटकोरका, कदम्बयष्टिरिव सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताऽङ्गी जाता।।42।।

सीता – अवशेनैतेनात्मना लज्जापितास्सि भगवत्या तमसया। किमिति किलैषा मंस्यत एष परित्याग एषाऽभिषङ्ग इति।

रामः – (सर्वतोऽलोक्य) हा कथं नास्त्येव? नन्दकरुणे वैदेहि!

सीता – अकरुणास्मि, यैवंविधं त्वां पश्यन्नेव जीवामि।

रामः – क्वासि प्रिये? देवि! प्रसीद प्रसीद। मामेवंविधं न परित्यक्तुमर्हसि।

सीता – अयि आर्यपुत्र! विप्रतीपमिव।

वासन्ती – देव! प्रसीद प्रसीद। स्वेनैव लोकोत्तरेण धैर्येण संस्तम्भयातिभूमिगतमात्मानम्। कुत्र मे प्रियसखी?

रामः – व्यक्तं नास्त्येव। कथमन्यथा वासन्त्यपि न पश्येत? अपि खलु स्वप्न एष स्यात्? न चास्मि सुप्तः। कुतो रामस्य निद्रा? सर्वथापि स एवैष भगवाननेकवारपरिकल्पितो सुप्तः। कुतो रामस्य निद्रा? सर्वथापि स एवैष भगवाननेकवारपरिकल्पितो विप्रलम्भः पुनः पुनरनुबध्नाति माम्।

सीता – मयैव दारुणया विप्रलब्ध आर्यपुत्रः।

अनुवाद –

राम – ओह! प्रमाद!

(श्लोकार्थ) सीता का जड़, कम्पित तथा पसीने वाला हाथ मेरे जड़ कम्पित तथा पसीना आये हुए हाथ से अचानक ही छूट गया है।।41।।

सीता – हाय! हाय! बहुत अधिक बार-बार उत्पन्न होने वाली निरन्तर वेदना के कारण मैं अपने को अब तक नहीं सम्भाल पा रही हूँ।

तमसा – (स्नेह, कौतूहल और मुस्कराहट के साथ देखकर)

(श्लोकार्थ) वत्से (सीता) प्रिय (राम) के स्पर्श-सुख से, वायु से कंपाई तथा वर्षा के जल से खींची हुई कदम्ब की विकसित डाल के समान, स्वेद से रोमाञ्चित और कम्पित हो गई है।।42।।

राम – (चारों ओर देखकर) हाय! क्या है ही नहीं? हे अकरुणवैदेहि!

सीता – सचमुच ''अकरुणा'' ही हूँ जो कि इस प्रकार (दुःखित) आपको देखती हुई भी जी रही हूँ।

राम – प्रिये! कहाँ हो? देवि! प्रसन्न हो! प्रसन्न हो! मुझे इस अवस्था में छोड़ना उचित नहीं है।

सीता – आर्यपुत्र! आप उल्टी ही बात कर रहे है! (आपने ही मेरा परित्याग किया ह, मैं कैसे कर सकती हूँ!)

वासन्ती – महाराज! प्रसन्न हो! प्रसन्न हो! (शोक ही) सीमा का अतिक्रमण कर दूर पहुँचे, हुए स्वयं को आपने लोकोत्तर धैर्य से ही संभालिये! मेरी प्रिय सखी यहाँ है ही कहाँ?

राम – सचमुच है ही नहीं! अन्यथा क्या वासन्ती भी न देखती? कदाचित् यह स्वप्न हो? परन्तु मैं सोया नहीं हूँ। राम को नींद कहाँ? निस्सन्देह अनेक बार कल्पित सर्वशक्तिशाली विरह ही मेरा बार-बार अनुसरण कर रहा है। (मुझको सीता का भ्रम करा कर बार-बार वञ्चना दे रहा है।)

सीता – (और किसी ने नहीं), कठोरहृदया मैंने ही आर्यपुत्र को वञ्चना दे रखा है।

वासन्ती – देव! पश्य पश्य।

पौलस्त्यस्य जटायुषा विघटितः कार्ष्णायसोऽयं रथ-
स्ते चैते पुरतः पिशाचवन्दनाः कङ्कालशेषाः खराः।
खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिरितः सीतां चलन्ती वह-
न्नन्तर्व्यापृतविद्युदम्बुद इव द्यामभ्युदस्थादरिः।।43।।

अन्वय – अयं, जटायुषा, विघटित, पौलस्त्यस्य, कार्ष्णायसो, रथः, एते, ते पुरतः, कङ्कालशेषाः पिशाचवदनाः खराः, इनः खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिः अरिः, चलन्तीं सीतां, वहन्, अन्तर्व्यापृतविद्युत् अम्बुद, इव द्याम्, अभ्युदस्थात्।।43।।

सीता – आर्यपुत्र! तातो व्यापाद्यते। तस्मात्परित्रायस्व परित्रायस्व। अहमप्यपह्रिये।

राम – (सवेगमुत्थाय) आः पाप! तातप्राणसीतापहारिन् लङ्कापते! क्व यास्यसि?

वासन्ती – अयि देव राक्षसकुलप्रलयधूमकेतो! किमद्यापि ते मन्युविषयः?

सीता – अह्मो! उद्भ्रान्तास्मि।

राम – अन्य एवायमधुना विपर्यतो वर्तते।

उपायानां भावादविरलविनोद्व्यतिकरै-
र्विमदैवीराणां जगतिजनितात्यदभुतरसः।
वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिरभू-
त्कटुस्तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु प्रविलयः।।44।।

अन्वय – उपायानां भावात्, अविरल, विनोदव्यतिकरैः, वोराणां, विमर्दैः जगतिजनितात्यद्भुतरसः, मुग्धाक्ष्याः, सः, वियोगः रिपुघातावधिः अभूत् खलु। कटुः, तूष्णीं सह्यः अयं तु प्रविलयः, निरवधिः।।44।।

सीता – बहुमानितास्मि पूर्वविरहे। निरवधिरिति हा हतास्मि।

राम – कष्टं भोः!

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे, वीर्यं हरीणां वृथा,
प्रज्ञा जाम्बवतो न यत्र, न गतिः पुत्रस्य वायोरपि।
मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः
सौमित्रेरपि पत्रिणामविषये तत्र प्रिये! क्वासि मे? ।।45।।

अन्वय – प्रिये! यत्र कपीन्द्रसख्यम्, अपि, व्यर्थम्, हरीणां वीर्य, वृथा यत्र जाम्बवतः, प्रज्ञा न, वायोः पुत्रस्य अपि गतिः न यत्र विश्वकर्मतनयः नलः, अपि, मार्ग कर्तुं न क्षम, मे सौमित्रेः अपि, पत्रिणाम्, अविषये तत्र, क्व असि?।।45।।

सीता – बहुमानितास्मि पूर्वविरहे।

अनुवाद –

वासन्ती – देव! देखिये, देखिये।

(श्लोकार्थ) यह जटायु के द्वारा तोड़ा गया, मजबूत लोहे का बना हुआ रावण का रथ है, और ये सामने पिशाचों के से मुँह वाले कङ्काल-शेष (रथ के) गधे (मरे पड़े) हैं। खड्ग से जटायु के पङ्ख काटकर कम्पित सीता को शत्रु अन्दर ही अन्दर बिजली चमकने वाले मेघ की भाँति, लेकर यहाँ के आकाश से उड़ गया था अर्थात् रावण के काले शरीर के साथ सुवर्ण जैसे रङ्ग की सीता जी काले-काले मेघ में छिपी हुई बिजली सी लग रही थीं।।43।।

सीता – (सभय) आर्यपुत्र! तात (जटायु) मारे जा रहे हैं, और मेरा हरण हो रहा है, अतः रक्षा करो! रक्षा करा!

राम- (वेग से उठकर) अरे, पापी! तात् (जटायु) के प्राण और सीता का अपहरण करने वाले लङ्कापति! (ठहर!) कहाँ जायेगा?

वासन्ती – देव! राक्षस वंश के संहार के लिए अग्नि तुल्य! क्या अब भी आपका (कोई) क्रोध का पात्र है? अर्थात् राक्षसों के विनाश करने के अनन्तर आपका कोपपात्र और कोई नहीं बचा है।

सीता – ओह, मैं तो भ्रान्त हो गई हूँ।

राम – अब तो यह (कुछ) दूसरा ही परिवर्तन हो गया है! (यह वियोग तो दूसरे ही प्रकार का है।)

(श्लोकार्थ) (सेना, सेतुबन्धन आदि) साधन होने के कारण, निरन्तर (युद्ध आदि) विनोद-व्यापारों से वीरों में मार- काट मचवाकर संसार में अद्भुत रस उत्पन्न कर देने वाला मनोहरलोचना सीता का

यह वियोग तो शत्रु (रावण) के वध तक ही सीमित था, परन्तु चुपचाप सह्य यह दारुण विरह (तो) असह्य है। अर्थात्, उस वियोग की तो रावण वध तक ही अवधि थी, परन्तु इसको कोई अवधि नहीं, यह अनन्त है।।44।।

सीता – पहले विरह में मुझे बहुत सम्मानित किया (गया) था, परन्तु अब 'निरवधि' कहने से (तो) मृतप्राय: हो गई हूँ। पहली बार तो मेरे लिए समुद्र-बन्धनादि अनेक दुष्कर कार्य किये गये थे, परन्तु वर्तमान विरह का कोई अन्त न होने से मेरी समस्त आशाएँ लीन हो गई हैं।

राम – अहो! कष्ट है!

(श्लोकार्थ) जहाँ सुग्रीव के साथ मेरी मित्रता और वानरों के पराक्रम भी व्यर्थ है! जहाँ जाम्बवन्त की बुद्धि और हनुमान् की भी गति नहीं हैं। जहाँ का मार्ग बनाने में विश्वकर्मा का पुत्र नल भी समर्थ नहीं है! और जहाँ मेरे (प्रिय) लक्ष्मण के बाण भी नहीं पहुंच सकते, प्रिये! तुम ऐसे किस स्थान में अन्तर्हित हो?।।45।।

सीता – पहले विरह में मैं बड़ी सम्मानित हुई हूँ।

टिप्पणी –

पौलस्त्यस्य – 'पुलस्त्य' सप्तर्षियों में अन्यतम थे। इनके तीन पुत्र हुये रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण। 'पुलस्त्य' की सन्तान होने के कारण रावण को पौलस्त्य कहा गया है। पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यं पुमान् पौलस्त्य: पुलस्त्य + अण्। कुछ लोग 'पुलस्त्य' को पुलस्ति कहते हैं। इस दशा में, पुलस्त्येर्गोत्रापत्यं पुमानिति पुलस्ति + अण् (गर्गादि) पौलस्त्य:। **3. कार्ष्णायस:** – कृष्णम् अय: इति कृष्ण +अयस् + टच्

समसान्त कृष्णायसम्। एक लौह की जाति, फौलाद। कृष्णायसस्य विकार इति कृष्णायस + अण्। 4. पिशाचनवदना: – पिशितमश्नातीति पिश्चित + अश् + अण कर्त्तरि पिशाच:। पृषोदरादित्वात्सिद्धम्। पिशाचस्य वदनं, पिशाचवदनं तदिव वदनं येषाम् ते। **5. कङ्कालशेषा:** – कङ्काल शेष: येषाम् ते। 'स्याच्छरीरास्थि कङ्काल:' इत्यमर:। **6. खड्गच्छिन्नजटायुपक्षति:** – खड्गेन छिन्ना जटायो: पक्षति:। 'स्त्री पक्षति: पक्षमूलम्-इत्यमर:।' पक्ष + ति: = पक्षात्ति 'पक्षति:' (पा. 5। 2। 25) इतिति:। 7. अन्तर्व्यापृतविधुदम्बुद इव – अन्तर्व्यापृता विद्युद् यस्य स चासौ अम्बुदश्च। वीरराघव ने इस पर टिप्पणी की है – 'अनेन दृष्टान्तेन रावणस्पर्शदोषो नास्तीति सचितम्।' 8. इस वर्णन में भवभूति ने रामायण का अनुसरण किया है।

(2) आर्यपुत्र! ततो... यहाँ सीता को ऐसा ज्ञात होता है मानो वह उसी काल में हो जिसमें सीता हरण हुआ था।

राम: सखि वासन्ति! दु:खायैव सुहृदामिदानीं रामदर्शनम्। कियच्चिरं त्वां रोदयिष्यामि। तदनुजानीहि मां गमनाय।

सीता: – हा भवति तमसे! गच्छतीदानीमार्यपुत्र:। किं करोमि?

तमसा – वत्से जानकि! समाश्वसिहि ममाश्वसिहि। विधिस्तवानुकूलो भविष्यति तदायुष्मतो: कुशलवयोर्वर्षद्विमङ्गलानि संपादयितु भागीरथीपदान्तिकमेव गच्छाव:।

सीता – भगवति! प्रसीद। क्षणमात्रमपि दुर्लभदर्शनं पश्यामि।

राम: – अस्ति चेदानीमश्वमेधसहधर्मचारिणी मे।

सीता – (साक्षेपम्) आर्यपुत्र? का।

वासन्ती – परिणीतमपि किम्?

रामः – नहि नहि। हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिः।

सीता – आर्यपुत्र! इदानीमसि त्वम्। अहो, उत्खातितमिदानीं मे परित्यागशल्यमार्यपुत्रेण।

रामः – तत्रापि तावद्बाष्पदिग्धं चक्षुर्विनोदयामि।

सीता – धन्या खलु सा, यैवमार्यपुत्रेण बहुमन्यते यैवमार्यपुत्रं विनोदयन्त्याशाबन्धनं खलु जाता जीवलोकस्य।

तमसा – (सस्मितस्नेहार्दं परिष्वज्य) अयि वत्से! एवमात्मा स्तूयते।

सीता – (सलज्जम्) परिहसितास्मि भगवत्या।

वासन्ती – महानयं व्यतिकरोऽस्माकं प्रसादः। गमनं प्रति यथा कार्यहानिर्न भवति तथा कार्यम्।

रामः – तथाऽस्तु।

सीता – प्रतिकूलेदानीं मे वासन्ती संवृत्ता।

तमसा – वत्से! एहि गच्छावः।

सीता – एवं करिष्यावः।

तमसा – कथं वा गम्यते। यस्यास्तव –

प्रत्युप्तस्येव दयितं, तृष्णादीर्घस्य चक्षुषः।
मर्मच्छेदोपमैर्यत्नैः, सन्निकर्षो निरुध्यते।।46।।

अन्वय – दयिते, प्रत्युप्तस्य इव, तृष्णादीर्घस्य (तव) चक्षुषः, सन्निकर्षः, मर्मच्छेदोपमैः, यत्नैः निरुध्यते।।46।।

सीता – नमः सुकृतपुण्यजनदर्शनीयाभ्यामार्यपुत्रचरणकमलाभ्याम्।

तमसा – वत्से! समाश्वसिहि।

सीता – कियच्चिरं वा मेधान्तरेण पूर्णचन्द्रदर्शनम्?

अनुवाद –

राम – सखी वासन्ति! इस समय मित्रों को राम का दर्शन दुःख (देने) के लिए ही है। तुम्हें कितनी देर तक रुलाऊंगा? अतः (अब) मुझे जाने के लिये आज्ञा दो!

सीता – (उद्वेग और मोह से तमसा से लिपटकर) हा! देवि, तमसे! अब आर्यपुत्र जा रहे हैं, मैं क्या करूँ? (मूर्च्छित हो जाती है।)

तमसा – वत्से! जानकि! धैर्य धारण करो! धैर्य धारण करो। दैव तुम्हारे अनुकूल होगा। अब हम चिरञ्जीव कुश और लव की वर्षगांठ के उत्सव को सम्पन्न करने के लिए भागीरथी के पास ही चलें।

सीता – देवि! मुझ पर दया कर थोड़ी देर और रुक जाओ! मैं क्षणभर दुर्लभ दर्शन आर्यपुत्र को देख लूं।

राम – इस समय मेरी अश्वमेध-यज्ञ की सहधर्मिणी है।

सीता – (आक्षेप सहित) आर्यपुत्र कौन?

वासन्ती – क्या विवाह भी कर लिया?

राम – नहीं, नहीं सुवर्णमयी सीता की प्रतिमा।

सोता – (लम्बा श्वास खींचकर रोती हुई) आर्यपुत्र! इस समय तुम सच्चे एकपत्नीव्रती हो! ओह, अब आर्यपुत्र ने मेरे परित्याग शल्य को उखाड़ डाला है।

राम – उस सीता-प्रतिमा में ही) अपने आँसू भरे नेत्रों को बहलाता हूँ।

सीता – सचमुच वह धन्य है, जिसे आर्यपुत्र इतना मानते हैं, और जो इस प्रकार आर्यपुत्र का मनोविनोद करती हुई संसार की आशा का आधार हो गई है। (भगवान् रात को स्वस्थ रखकर उन्हें लोक की आशाओं को पूर्ण करने योग्य बना रही है।)

तमसा – (मुस्कराहट और स्नेह से आलिङ्गन कर) अरी वत्से! इस प्रकार अपनी प्रशंसा की जा रही है?

सीता – (लज्जित होकर) आप तो मेरा उपहास कर रही हैं।

वासन्ती – आपका यह शुभागमन हमारे ऊपर महान् अनुकम्पा है। आपके जाने में, जैसे कोई हानि न हो, वैसा कीजिये।

राम – एवमस्तु (ऐसा ही हो!)

सीता – इस समय वासन्ती मेरे प्रतिकूल हो गई है। अब तक तो यह मेरा ही पक्ष लेकर आर्यपुत्र को रुला रही थी परन्तु अब उन्हें भेजने के लिए कहकर, यह मेरे प्रतिकूल हो गई है।

तमसा – बेटी? आओ, चलें!

सीता – ऐसा ही करें।

तमसा – अथवा, कैसे, चला जाय? जिस तुम्हारे –

प्रिय में आसक्त लालसा-भरे नेत्रों का आकर्षण, मर्मच्छेद करने वाले (गमनादि, यत्नों से रोका जा रहा है।)

(श्लोकार्थ) अर्थात् तुम्हारे नेत्र प्रियतम में लगे हुए हैं। वे बड़ी लालसा से उन्हें देख रहे हैं। इस समय तुम्हें उनका जाना बड़ा दुःखद लग रहा है। उनमें गड़ी हुई दृष्टि को उखाड़े-हटाये बिना तुम्हारा यहाँ से चलना सम्भव नहीं है, और दृष्टि को हटाना ही तो सबसे बड़ी मर्मान्तक व्यथा का कारण है। यहां से चलना राम के प्रति आकर्षण में सबसे बड़ा बाधक है।।46।।

सीता – भली-भाँति पुण्य का आचरण करने वाले व्यक्तियों से दर्शनीय आर्यपुत्र के चरण-कमलों को नमस्कार है! (मूर्च्छित हो जाती है।)

तमसा – पुत्री! धैर्य धारण करो।

सीता – (आश्वस्त होकर) मेघ से घिरे हुए पूर्ण चन्द्र का दर्शन कितने समय तक होता है? अर्थात् जैसे मेघ से घिरे हुए चन्द्रमा का दर्शन अधिक समय तक नहीं होता, वैसे ही आर्यपुत्र का दर्शन भी थोड़े ही समय के लिए हो रहा है।

तमसा – अहो संविधानकम्।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदा-
द्भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुदबुद्तरङ्गमयान्विकारा-
नम्भो यथा, सलिलमेव हि तत्समस्तम्।।47।।

अन्वय - एकः, करुणः, रसः, एव, निमित्तभेदात, भिन्नः (सन्) पृथक्-पृथक्, विवर्तान् आश्रयते, इव, यथा, अम्भः, आवर्त-बुद्बुद्-तरङ्गमयान विकारान् (आश्रयते), (वस्तुतस्तु) तत् समस्तं, सलिलम् एव हि।।47।।

तमसा - ओह! कैसी घटनायें घटी!

(श्लोकार्थ) (1) करुण रस की एकमात्र मुख्य रस है। निमित्त-घटना विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भाव की विलक्षणता से यह भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है। जैसे जल भंवर, बुलबुले तथा तरङ्गों का रूप धारण कर लेता है परन्तु यथार्थतः वह होता एक ही है। (अतएव इस अङ्क में सीता जी तथा अन्य पात्रों के हृदय में जो लज्जा, विस्मय आदि भाव है वे भी करुण रस के ही रूपान्तर है। अथवा राम और सीता के जीवन से सम्बन्धित यद्यपि अन्य रसों -शृङ्गार और वीर के प्रसङ्ग इस नाटक में आये हैं, परन्तु उनकी तह में करुण की ही धारा प्रवाहित हो रही है।)

(2) अथवा -

(सामाजिकों के हृदय में रहने वाली विभिन्न भावनाओं के अनुसार ही) विभावादि क वैलक्षण्य से एक करुण रस ही (हर्ष आदि) अनेक भावों में (वैसे ही) बदल जाता है जैसे कि एक अनेक रूपों में।

(3) अथवा -

एक करुण रस ही निमित्त-भेद से (सखित्व, पतित्व, पत्नीत्वादि के भेद से राम, सीता, वासन्ती में) पृथक्-पृथक् से अभिव्यक्त हो रहा है, जैसे कि एक ही जल आवर्त-बुद्बुद् तरङ्गादि अनेक विकारों में (आशय यह है कि करुणरस एक ही है - उसमें नानात्व सम्भव नहीं, क्योंकि रस पूर्णधन और आनन्दस्वरूप होता है। परन्तु यहाँ राम, सीता, वासन्ती और तमसा - सभी में करुण रस का सञ्चार हो रहा है। सीता का करुण रस राम से पृथक् है, राम का सीता से और वासन्ती का इन दोनों से। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है मानो ये सब करुण के विभिन्न रूप हो परन्तु यदि तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो सिद्ध होगा कि इन सभी में एक ही करुण रस प्रवाहित हो रहा है - उसमें कोई भेद नहीं।)

(4) अथवा -

(वास्त्व में तो घटनाक्रम को देखते हुए 'करुण' का अर्थ 'करुण-विप्रलम्भ' लिया जाना चाहिये। इस प्रकार प्राचीन आचार्यों के इस - 'एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा' नियम का विरोध नहीं होता। तब यह अर्थ होगा।)

(इस नाटक में) एकमात्र करुण (विप्रलम्भ) रस ही प्रधान है, (क्योंकि स्थल-स्थल पर उसका प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। निमित्त भेद से सीता रामादि के भेद से) यह अनेक रूप धारण कर लेता है। (उत्तरार्द्ध का अर्थ यथापूर्व है। नाटक यद्यपि सुखान्त है तथापि यह 'संयोग' 'वियोग' से ही उत्पन्न हुआ है। अतः 'करुण विप्रलम्भ' की ही प्रधानता है। (यह व्याख्याकार ब्रह्मानन्दशुक्ल का चिन्तन है)

रामः - विमानराज! इत इतः।

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति)

तमसावासन्त्यौ-(सीतारामौ प्रति)

अवनिरमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः,
स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां यः प्रयोक्ता।
च मुनिरनुयातारुन्धतीको वसिष्ठ-
स्तव वितरतु भद्रं भूयसे मङ्गलाय।।48।।

अन्वयः - अवनिः, अस्मद्विधाभिः, सार्धम्, अमरसिन्धुः, स च कुलपतिः, यः, छन्दसम्, आद्यः, प्रयोक्ता, स च, अनुयातारुन्धतीकः, वशिष्ठः, मुनिः, तव भूयसे, मङ्गलाय भद्रं, वितरतु।।48।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

अनुवाद -

राम - विमानराज! इधर, उधर।

तमसा - वासन्ती - (सीता-राम के प्रति) -

(श्लोकार्थ) पृथ्वी, हम जैसी (नदियों) के साथ वह गङ्गाजी, वे कुलपति (वाल्मीकि) जो कि (लोक में) छन्दों का सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले हैं, और अरुन्धती-सहित वे मुनि वसिष्ठ आपके प्रचुर कल्याण के लिए मङ्गल का वितरण करें। (आशोर्वाद प्रदान कर।) ।।48।।

(सभी चले जाते हैं।)

इति महाकविभवभूतिविरचिते उत्तररामचरिते

'छाया' नाम तृतीयोऽङ्कः

टिप्पणी -

(1) अवनि....मङ्गलाय- यहाँ मध्य-मङ्गल है। ग्रन्थों में आदि, मध्य और अन्त में मङ्गल किया जाता है। इस नाटक में तीनों मङ्गल किये गये हैं। (3) इस श्लोक में आये हुए 'अवनि' आदि सभी सीता-राम-सम्मेलन में उपयोगी सिद्ध होंगे। यहाँ ऋषियों के द्वारा दिये जाने वाले श्रेय का प्रकाशन होने के कारण '**आक्षेप**' नामक गर्भसन्ध्यङ्ग है, जिसका लक्षण नाट्यदर्पणकार ने यह किया है।

(4) सार्द्धमस्ममद्विधाभिः तमसा सदृश मुरला, गोदावरी आदि नदियों के साथ एवं वासन्ती सदृश अन्य वन देवताओं के साथ। 'सहयुक्तेऽप्रधाने' (पा., 2। 3। 19) से तृतीया। (6) **स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां यः प्रयोक्ता** - और यह (प्रसिद्ध) कुलपति जो (अनुष्टुप् आदि) छन्दों का आद्य प्रयोक्ता है।

'कुलपति' का लक्षण है -

'मुनीनां दशसहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्।
अध्यापयति विप्रर्षिः स वै कुलपतिः स्मृतः।।'

पं. शेषराज शास्त्री ने इस चरण को आगे के 'स च मुनिः' तक खींच कर इस प्रकार अर्थ किया है - '**स च** = श्रुतिस्मृतिपुराणादिप्रसिद्धः, **कुलपतिः** = कुलस्य = इक्ष्वाकुवंशस्य पतिः = प्रवर्त्तकत्त्वेन स्वामी, सूर्य इत्यर्थः। यथा च यः, **छन्दसां** = अनुष्टुबाद्यानाम्, **आद्यः** = प्रथमः, **पयोक्ता** = प्रयोगकर्त्ता, **स च मुनिः** = कुलपतिवाल्मीकिरित्यर्थः....।'

2. **छाया नाम तृतीयोऽङ्कः** - इस तृतीय अङ्क में सीता अदृश्य रूप में उपस्थित हुई है। इसलिये उनके छायारूप में उपस्थित होने के कारण इस अङ्क को छाया कहा गया। विद्यासागर लिखते हैं - 'अस्मिन्नके सीताया अदृश्यरूपेण प्रवेशेऽपि कदाचित् अङ्गस्पर्शादिना रामानुभवविषयत्वात् छायारूपेण आभा समानतया अस्य अंकस्य नाम कविना छायेति कथितम्।'

अथवा इस अङ्क में सीता श्रीराम के पीछे-पीछे छाया के समान चली हैं अतः इसका नाम 'छाया' है जैसा कि प्रो. काणे ने लिखा है - In some editions this Act is called ÀUæØæ The reaspm is that in this Act सीता was throughout present as it she were the shadow of Rama.

3.3 महाकवि श्रीभवभूतिप्रणीतम् उत्तररामचरितम् चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतस्तापसौ।) (तदनन्तर दो तपस्वियों का प्रवेश)

एकः – सौधातके! दृश्यतामद्य भूयिष्ठसन्निधापितातिथिजनस्य समधिकारम्भरमणीयता भगवतो वाल्मीकेराश्रमपदस्य। तथाहि–

अनुवाद – एक–सौधातके! आज भगवान् वाल्मीकि के आश्रम की, जहाँ प्रचुर संख्या में अतिथिगण पधारे हुए हैं, अत्यधिक आयोजनों से बढ़ती हुइ शोभा तो देखो।

टिप्पणी – एक = दण्डायन नामक छात्र। इस अंक में दण्डायन और सौधातकि नामक दो छात्र आपस में वार्तालाप करते हुए दिखाई पड़ते हैं। यह अंक मिश्र विष्कम्भक से आरम्भ होता है। सौधातके! सुधातुरपत्यं पुमान् इति सौधातकिः, तत्सम्बुद्धौ सौधातके! सुधातृ + इञ् अकङ् आदेशश्च 'सुधातुरकङ् च'। सन्निधापित–सम्–नि धा + णिच् + क्त कर्मणि। आश्रमपदस्य = आश्रमस्थान का। 'पदं व्यवसितित्राणस्थानलक्ष्मोध्रिवस्तुषु' इत्यमरः।

नीवारौदनमण्डमुष्णमधुरं सद्यः प्रसूतप्रिया–
पीतादभ्यधिकं तपोवनमृगः पर्याप्तमाचामति।
गन्धेन स्फुरता मनागनुसृतो भक्तस्य सर्पिष्मतः
कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते॥1॥

अन्वय – तपोवनमृगः सद्यःप्रसूतप्रियापीतात् अभ्यधिकम् उष्णमधुरं नीवारौदनमण्डं पार्यप्तम् आचामति। सर्पिष्मतो भक्तस्य स्फुरता गन्धेन मनाक् अनुसृतः कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते॥1॥

अनुवाद – आश्रम का मृग सद्यःप्रसूता हरिणी के पीने से बचा हुआ तिन्नी के चावल का उष्ण और स्वादु माँड़ यथेच्छ पी रहा है, और प्रचुर घृतयुक्त भात की सुगन्ध का कुछ अनुसरण करने वाला बदरीफलमिश्रित शाक के पाक का आमोद चारों ओर फैल रहा है॥1॥

टिप्पणी – सद्यःप्रसूता–तुरन्त ब्याई हुई। समाने अह्नि इति सद्यः निपातनात् साधुः, सद्यःप्रसूता इति विग्रहे 'सह सुपा' समासः। सद्यःप्रसूतप्रिया– सद्यःप्रसूता चासौ प्रिया में कर्मधारय समास, 'पुंवत् कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' सूत्र से पुंवद्भाव। आचामति = पीता है। आङ्पूर्वक चम् धातु के लट् लकार का यह रूप है। यहाँ 'आङि चमः इति वक्तव्यम्' इससे दीर्घ होता है। भक्त = भात। 'भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमोदनोऽस्त्री स दीदिविः' इत्यमरः। कर्कन्धू = बेर। 'कर्कन्धूर्बदरी कोलिः' इत्यमरः। परिस्तीर्यते–परि स्तृ + लट्–ते कर्मणि। इस श्लोक में पर्यायोक्त अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है॥1॥

सौधातकिः – स्वागतमनेकप्रकाराणां जीर्णकूर्चानामनध्यायकारणानां तपोधनानाम्।

अनुवाद – सौधातकि–अनेक प्रकार के तपस्वियों का, जिनकी दाढ़ी सफेद हो गई है और जो (हमारे लिये) अनध्याय के कारण हो गये हैं, स्वागत हो।

टिप्पणी – जीर्णकूर्चानाम्–सफेद दाढ़ी–मूँछ वालों का अर्थात् वृद्धों का। यह शब्द उपहासार्थ प्रयुक्त हुआ है। अनध्यायकारणानाम्–अधि इ + घञ् भावे = अध्यायः = अध्ययनम्, न अध्यायः अनध्यायः, तस्य कारणानि, तेषाम्। प्राचीनकाल में किसी विशिष्ट अतिथि के आगमन पर अनध्याय हो जाता था। 'अनध्यायं प्रकुर्वीत शिष्टे च गृहमागते।'

प्रथमः – (विहस्य) अपूर्वः खलु बहुमानहेतुर्गुरुषु सौधातके!

प्रथमः – (हँसकर) सौधातके! गुरुजनों के प्रति 'जीर्णकूर्चानाम्' यह सम्मानसूचक शब्द विलक्षण है।

टिप्पणी – गुरुषु–अतिथि सब के गुरु माने गये हैं–'गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः। पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः॥'

सौधातकिः – भो दण्डायन! किंनामधेय एष महतः स्त्रीसार्थस्य धुरन्धरोऽद्यातिथिरागतः?

अनुवाद – सौधातकि–दण्डायन! यह जो आज विशाल स्त्री–समूह के अग्रणी अतिथि पधारे हुए हैं, उनका क्या नाम है?

दण्डायनः – धिक्प्रहसनम्! नन्वयमृष्यशृङ्गाश्रमादरुन्धतीं पुरस्कृत्य महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वसिष्ठः प्राप्तः। तत् किमेवं प्रलपसि?

दण्डायन – उपहास मत करो। अरे! ये तो ऋष्यशृंग के आश्रम से अरुन्धती को आगे करके महाराज दशरथ की पत्नियों को साथ लिये भगवान् वसिष्ठ आये हुए हैं। इसलिए क्यों ऐसी अनर्थक बातें करते हो?

सौधातकिः – हुं वसिष्ठः?

सौधातकि – आँय, वसिष्ठ हैं?

दण्डायनः – अथ किम्?

दण्डायन – और क्या?

सौधातकिः – मया पुनर्ज्ञातं कोऽपि व्याघ्र इव एष इति।

सौधातकि – मैंने तो समझा कि यह कोई बाघ जैसा जन्तु है।

दण्डायनः – आः, किमुक्तं भवति?

दण्डायन – आह, ऐसा क्यों कहते हो?

सौधातकिः – येन परापतितेनैव सा वराकी कपिला कल्याणी बलात्कृत्य मडमडायिता।

अनुवाद – सौधातकि–जिस लिए आते ही उन्होंने उस बेचारी कैली बछिया को जबर्दस्ती मड़मड़ा दिया (अर्थात् मरवा दिया था 'मड़मड़' शब्दपूर्वक चबा लिया)।

टिप्पणी – मडमडायिता = मड़मड़ शब्दयुक्त कराई गई अर्थात् मार डाली गई। 'मडमड' इति अनुकरणशब्दात् 'अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्द्धादनितौ डाच्' इत्यनेन डाच्प्रत्ययः, ततः मडमडाकरोति इत्यर्थे 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' इत्यनेन क्यष् प्रत्ययः, ततः कर्मणि क्तः, स्त्रियां टाप्।

दण्डायनः – समांसो मधुपर्क इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा महाजं वा पचन्ति गृहमेधिनः। तं हि धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति।

अनुवाद – दण्डायन–'मांस के साथ मधुपर्क देना चाहिए' इस वेद–वचन का समादर करने वाले गृहस्थ लोग श्रोत्रिय अतिथि के लिए दो वर्ष की बछिया या विशाल बैल या बड़े बकरे को पकाते हैं, धर्मशास्त्रकार इसको धर्म बताते हैं।

टिप्पणी – मधुपर्कः = दही, घी, मधु, जल और चीनी के योग से बना हुआ पदार्थविशेष। मधुना पृच्यतेऽसौ इति मधुपर्कः, मधु पृच् + घञ्। 'दधि सर्पिर्जलं क्षौद्रं सितैताभिस्तु पञ्चभिः। प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवोघतुष्टये।' कालिकापुराण। गृह्यसूत्र के अनुसार आचार्य, ऋत्विक्, वैवाह्य, राजा, उत्कृष्ट जाति के अथवा समान जाति के प्रियजन और स्नातक को मधुपर्क देना चाहिए। प्राचीन युग में मधुपर्क मांस के साथ दिया जाता था। मनु का वचन है–'मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि। अत्रैव च पशुं हिंस्यात् नान्यथेत्यब्रवीन्मनुः।' किन्तु कलियुग में मधुपर्क के लिए पशु हिंसा निषिद्ध बताई गई है–

आम्नायम् = वेद को। आम्नायते अभ्यस्यते इत्याम्नाय: वेद:, आ म्ना + घञ्। श्रोत्रियाय = वेदाध्येता श्रोत्रिय: वेदविद्याविभूषित ब्राह्मण। छन्द: अधीते इति छन्दस् + घ–इय 'श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते' इत्यनेन निपातनात् श्रोत्रादेश:। श्रोत्रिय का लक्षण देवल ने यह किया है–'एकां शाखां सकल्पां वा षड्भिरंगैरधीत्य वा। षट्कर्मनिरतो विप्र: श्रोत्रियो नाम धर्मवित्॥' वत्सतरीम् = थोड़ी अवस्था की बछिया को। वत्सशब्दात् अतिबाल्यार्थे 'वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे' इत्यनेन तरप् प्रत्यय: तत: स्त्रियां ङीष्। महोक्षम् = विशाल बैल को। महांश्चासौ उक्षा च इति विग्रहे 'अचतुरविचतुर' इत्यादिना अच् प्रत्ययान्तो निपात:।

सौधातकि: – भो:, निगृहीतोऽसि।

सौधातकि – अरे! तुम पराजित हो गये।

दण्डायन: – कथमिव?

दण्डायन – कैसे?

सौधातकि: – येनागतेषु वसिष्ठमिश्रेषु वत्सतरी विशसिता। अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षेर्जनकस्य भगवता वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निर्वर्तितो मधुपर्क:। वत्सतरी पुनर्विसर्जिता।

अनुवाद – सौधातकि–जिसलिए माननीय वसिष्ठ जी के आने पर बछिया मारी गई; किन्तु आज ही आये हुए राजर्षि जनक को भगवान् वाल्मीकि ने केवल दही और मधु का मधुपर्क प्रदान किया, पर बछिया को छोड़ दिया। (अत: 'मांस सहित मधुपर्क देना चाहिए' यह तुम्हारा वचन परास्त हो गया।)

दण्डायन: – अनिवृत्तमांसानामेवं कल्पं व्याहरन्ति केचित्। निवृत्तमांसस्तु तत्रभवान् जनक:।

अनुवाद – जिन्होंने मांस खाना नहीं छोड़ा है, उनके लिए कुछ धर्म–शास्त्रकार मांस सहित मधुपर्क का विधान बताते हैं; परन्तु पूज्य जनक जी ने तो मांस–भक्षण का त्याग कर दिया है।

सौधातकि: – किन्निमित्तम्?

सौधातकि – किस कारण?

दण्डायन – यद्देव्या: सीतायास्तादृशं दैवदुर्विपाकमुपश्रुत्य वैखानस: संवृत्त:, तस्य कतिपयसंवत्सरश्चन्द्रद्वीपतपोवने तपस्तप्यमानस्य।

अनुवाद – दण्डायन–जिसलिए कि सीता देवी का वैसा भाग्य–दुष्परिणाम सुनकर जनक वानप्रस्थ हो गये हैं और चन्द्रद्वीप नामक तपोवन में तपस्या करते हुए उन्हें कई वर्ष बीत गये हैं।

सौधातकि: – तत: किमित्यागत:?

सौधातकि – वहाँ से क्यों आये?

दण्डायन: – सम्प्रति च प्रियसुहृदं भगवन्तं प्राचेतसं द्रष्टुम्।

दण्डायन – इस समय प्रिय बंधु भगवान् वाल्मीकि का दर्शन करने के लिए आये हैं।

सौधातकि: – अप्यद्य सम्बन्धिनीभि: समं निर्वृत्तं दर्शनमस्य न वेति?

सौधातकि – आज सम्बन्धिनियों (समधिनों) से इनकी भेंट हो गई कि नहीं?

दण्डायन – सम्प्रत्येव भगवता वसिष्ठेन देव्या: कौसल्याया: सकाशं भगवत्यरुन्धती प्रहिता यत् 'स्वयमुपेत्य स्नेहादयं द्रष्टव्य' इति।

दण्डायन – अभी–अभी भगवान् वसिष्ठ ने भगवती अरुन्धती को कौसल्या देवी के पास यह कहने के लिए भेजा है कि वे स्वयं पास जाकर स्नेहपूर्वक जनक का दर्शन करें।

सौधातकिः – यथैते स्थविराः परस्परं मिलिताः, तथावामपि वटुभिः सह मिलित्वानध्यायमहोत्सवं खेलन्तो मनायावः। अथ कुत्र स जनकः?

अनुवाद – सौधातकि–जैसे ये वृद्धगण परस्पर मिले हैं, उसी प्रकार हम दोनों भी बालकों के साथ मिल कर खेलते हुए अनध्याय–महोत्सव मनायें।

टिप्पणी – वटुभिः = बालकों के साथ। 'बालको मानवो बालः किशोरो वटुरित्यपि' इति शब्दरत्नावली। खेलन्तः = अर्थात् खेलते हुए। इसमें 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' सूत्र से हेत्वर्थ में शतृप्रत्यय हुआ है।

दण्डायनः – तदयं प्राचेतसवसिष्ठावुपास्य सम्प्रत्याश्रमस्य बहिर्वृक्षमूलमधिष्ठिति। य एषः–

दण्डायन – वहो ये जनक वाल्मीकि और वसिष्ठ की अर्चना करके सम्प्रति आश्रम के बाहर वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं। जो ये –

टिप्पणी – वृक्षमूलम्–इसमें 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' सूत्र से कर्मसंज्ञा होने पर द्वितीया हुई।

हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते
अन्तःप्रसृप्तदहनो जरन्निव वनस्पतिः ॥2 ॥

अन्वय – अन्तःप्रसृप्तदहनः जरन् वनस्पतिः इव हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते ॥2 ॥

अनुवाद – जनक अपने हृदय में सदा रहने वाली सीता के शोक से उसी तरह संतप्त रहते हैं जैसे अपने भीतर फैली हुई आग वाला जीर्ण वृक्ष।

टिप्पणी – नित्यानुषक्तेन–अनु सञ्ज् + क्त कर्मणि कर्तरि वा = अनुषक्त, नित्यम् अनुषक्तः सुप्सुपा समासः, तेन। यहाँ श्रौती उपमा अलंकार तथा पथ्यावक्त्रा छंद है ॥2 ॥

(इति निष्क्रान्तौ।) (इसके बाद दोनों चले गये।)

(इति मिश्रविष्कम्भः।) (मिश्रविष्कम्भक समाप्तः।)

(ततः प्रविशति जनकः।) (तदनन्तर जनक प्रवेश करते हैं)

जनकः –

अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता
विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता।
पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति ॥3 ॥

अन्वय – अपत्ये तादृक् यत् दुरितम् अभवत् महता तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता तेन विषक्तः पटुः धारावाही चिरेण अपि नव इव मे मन्युः क्रकच इव मर्माणि निकृन्तन् न विरमति ॥3 ॥

अनुवाद – जनक–सन्तान सीता को जो वैसा लोकापवादरूप पाप या निर्वासनरूप दुःख हुआ, उस विशाल तीव्र, हृदय को क्षत–विक्षत करने वाले और वेदना उत्पन्न करने वाले पाप या दुख से विशेषतः सम्बद्ध, हृदयविदारण में समर्थ, निरन्तर रहने वाला और बहुत काल बीत जाने पर भी नवीन प्रतीत होने वाला मेरा सीताविषयक शोक या कोप आरे की भाँति मेरे मर्मस्थल को चीरने से विरत नहीं होता है ॥3 ॥

टिप्पणी – व्रणित–व्रण (घाव) से युक्त। व्रणः सञ्जातोऽस्य इति विग्रहे व्रणशब्दात् तारकादित्वात् इतच् प्रत्ययः। **चिरेण –** 'अपवर्गे तृतीया' इति सूत्रेणात्र तृतीया। मन्युः = शोक या क्रोध। 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः। क्रकचः = आरा। 'क्रकचोऽस्त्री करपत्रम्' इत्यमरः। विरमति–इसमें 'व्याङ्परिभ्यो रमः' से परस्मैपद हुआ। इस श्लोक में पूर्णोपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार है। यह शिखरिणी छन्द है ॥3 ॥

कष्टम्! एवं नाम जरया दु:खेन च दुरासदेन भूय: पराकसान्तपनप्रभृतिभिस्तपोभि: शोषितान्तशरीरधातोरवष्टम्भ एव। अद्यापि मम दग्धदेहो न पतति। 'अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोका: प्रेत्य तेभ्य: प्रतिविधीयन्ते, य आत्मघातिन' इत्येवमृषयो मन्यन्ते। अनेकसंवत्सरातिक्रमेऽपि प्रतिक्षणपरिभावनास्पष्टनिर्भास: प्रत्यग्र इव न मे दारुणो दु:खसंवेग: प्रशाम्यति। अयि मात: देवयजनसम्भवे! ईदृशस्ते निर्माणभाग: परिणत:? येन लज्जया स्वच्छन्दमप्याक्रन्दितुं न शक्यते। हा पुत्रि!

अनुवाद– दारुण दु:ख है! इस प्रकार वृद्धावस्था, दु:सहनीय दु:ख और फिर पराक, सान्तपन आदि व्रतानुष्ठान रूप तपस्याओं के कारण शरीरान्तर्वर्ती धातुओं के सूख जाने से शरीर को केवल प्राणों का ही सहारा मिल रहा है। अतएव अभी भी मेरा दग्धप्राय शरीर धराशायी नहीं हो रहा है। अत: जीवन को भार स्वरूप मानकर आत्महत्या कर लेनी चाहिए, तो इसका निराकरण है–'जो आत्महत्या करते हैं, उन्हें मरने पर सूर्यरहित अथवा असुरों के, अन्धा बनाने वाले एवं अन्धकारपरिपूर्ण लोकों में जाना पड़ता है।' ऐसा ऋषिगण मानते हैं। अनेक वर्षों के बीत जाने पर भी मेरा दारुण दु:खप्रवाह, जो प्रतिक्षण स्थायी चिन्ता के कारण स्पष्ट और प्रकाशित है, शान्त नहीं हो रहा है। हे माँ! यज्ञभूमिसमुत्पन्ने! तुम्हारे जीवन का शेष भाग इस रूप में परिणत हुआ? जिससे लज्जा के कारण स्वच्छन्दतापूर्वक रोया भी नहीं जा सकता। हाय पुत्री!

टिप्पणी – दुरासदेन–दु:खेन आसद्यते इति दुर्–आ सद् + खल् कर्मणि = दुरासदम्, तेन। पराकसान्तपनप्रभृतिभि:–पराक और सान्तपन ये दोनों व्रत हैं, जिनमें पराक व्रत द्वादशाहसाध्य है। इसमें बारह दिन उपवास करना पड़ता है। जैसा कि मनु ने कहा है–'यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम्। पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदन:॥' सान्तपन व्रत दो दिन में सम्पन्न होता है। प्रथम दिन पञ्चगव्य और कुशोदक पर रहना पड़ता है और दूसरे दिन उपवास करना पड़ता है। जैसा कि याज्ञवल्क्य ने कहा है–'कुशोदकञ्च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृद्घृतम्। प्राश्यापरेऽह्न्युपवसेत् कृच्छ्रं सान्तपनं चरन्॥' अन्धतामिस्रा:... यह ईशोपनिषद् का वाक्य है। वहाँ इस रूप में पठित है–'असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता:। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना:॥' अन्धयति इति अन्ध + णिच् स्वार्थे + अच् कर्तरि = अन्धा, तम: अस्ति अस्याम् इति तमस् + र मत्वर्थे = तमिस्रा रात्रि:, तमिस्रा एव इति तमिस्रा + अण् स्वार्थे = तामिस्रा, अन्धा तामिस्रा येषु ते अन्धतामिस्रा:।

अनियतरुदितस्मितं विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्।
वदनकमलकं शिशो: स्मरामि स्खलदसमञ्जसमंजुजल्पितं ते॥4॥

अन्वय – अनियतरुदितस्मितं विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रं स्खलदसमञ्जसमंजुजल्पितं शिशो: ते वदनकमलकं स्मरामि॥4॥

अनुवाद – मैं कभी-कभी रोने और हँसने वाले, कलियों के अग्रभाग के समान कोमल कतिपय दाँतों से शोभित होने वाले और वाणी के स्खलन एवम् असम्बद्धता के रहते हुए भी सुन्दर वचन वाले तुम्हारे शैशव के लघु मुखकमल का स्मरण कर रहा हूँ॥4॥

टिप्पणी– दन्तकुड्मलाग्राणि–दन्ता: कुड्मलाग्राणि इव इति विग्रहे उपमितसमास:। वदनकमलकम्–वदनं कमलमिव इति वदनकमलम् उपमितसमास:, अल्पं वदनकमलम् इति वदनकमलकम् 'अल्पे' इति सूत्रेण कन्प्रत्यय:। यहाँ स्वभावोक्ति और उपमा अलंकारों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार हो जाता है। यहाँ पुष्पिताग्रा छन्द है॥4॥

भगवति वसुन्धरे! सत्यमतिदृढासि।

भगवति पृथ्वि! सचमुच, तुम बहुत कठोर हो।

त्वं वह्निर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी गङ्गा च यस्या विदु-
र्माहात्म्यं यदि वा रघोः कुलगुरुर्देवः स्वयं भास्करः।
विद्यां वागिव यामसूत भवती शुद्धिं गतायाः पुन-
स्तस्यास्त्वद्दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणेऽमृष्यथाः॥5॥

अन्वय – दारुणे! त्वं वह्निः मुनयः वसिष्ठगृहिणी गङ्गा च यदि वा रघोः कुलगुरुः स्वयं भास्करः देवः यस्याः माहात्म्यं विदुः, वाक् विद्याम् इव भवती याम् असूत तस्याः शुद्धि गतायाः त्वद्दुहितुः पुनः ता विशसनं किम् अमृष्यथाः॥6॥

अनुवाद – हे निष्ठुरे! तुम, अग्निदेव, वसिष्ठ आदि मुनिगण, वसिष्ठपत्नी अरुन्धती, गंगा और रघुवंशियों के आदिपुरुष साक्षात् सूर्यदेव जिस सीता की महिमा को समझते हैं तथा जैसे सरस्वती विद्या को उत्पन्न करती हैं वैसे तुमने जिसको उत्पन्न किया, उस निर्दोष प्रमाणित पुत्री का वैसा निर्वासन रूप विनाश तुमने कैसे सहन किया॥5॥

टिप्पणी – रघोः कुलगुरुः–अत्र सम्बन्धिशब्दस्य सापेक्षत्वेऽपि 'देवदत्तस्य गुरुकुलम्' इतिवत् गमकत्वात् समासः। विदुः–विद् (ज्ञाने) + लट्–झि–उस् 'विदो लटो वा' इति सूत्रेण। विद्योम्–शंकराचार्य के मत में वस्तु (= ब्रह्म) के स्वरूप का अवधारण (निश्चयकरण) ही विद्या है। अमृष्यथाः–मृष् (तितिक्षायाम्) + लङ्–थास्। इस श्लोक में तुल्योगिता और श्रौती उपमा अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यहाँ शार्दूलविक्रीडित छंद है॥5॥

(नेपथ्ये = नेपथ्य में)

इत इतो भगवतीमहादेव्यौ।

भगवती और महादेवी इधर-इधर से पधारें।

टिप्पणी – यह कंचुकी का वाक्य है। इसमें भगवती शब्द अरुन्धती के लिए प्रयुक्त हुआ है और महादेवी शब्द कौशल्या के लिए।

जनकः – (दृष्ट्वा) अये! गृष्टिनोपदिश्यमानमार्गा भगवत्यरुन्धती। (उत्थाय) कां पुनर्महादेवीत्याह? (निरूप्य) हा हा, कथमियं महाराजस्य दशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या? क एतां प्रत्येति सैवेयमिति नाम?

अनुवाद – जनक-(देख कर) अरे! भगवती अरुन्धती हैं, जिनको गृष्टि नामक कंचुकी रास्ता दिखला रहा है। (खड़े होकर) फिर महादेवी किसको कहा है? (गौर से देख कर) हाय हाय! ये महाराज दशरथ की धर्मपत्नी मेरी प्रिय सखी कौशल्या कैसे दिखाई दे रही हैं? कौन इन्हें पहचानेगा कि ये वही कौशल्या हैं?

टिप्पणी – धर्मदाराः–धर्मप्रयोजना दारा धर्मदाराः शाकपार्थिवादित्वात् समासः। कोई यहाँ 'अश्वाय घासः अश्वघासः' की तरह 'धर्मस्य दाराः धर्मदाराः' षष्ठी तत्पुरुष मानते हैं।

आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः
श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा।
कष्टं बतान्यदिव दैववशेन जाता
दुःखात्मकं किमपि भूतमहो विकारः॥6॥

अन्वयः – इयं दशरथस्य गृहे श्रीर्यथा आसीत् वा श्रीरेव (आसीत्), उपमानपदेन किम्? बत कष्टं सा एषा दैववशेन अन्यत् किमपि दुःखात्मकं भूतम् इव जाता, अहा विकारः॥6॥

अनुवाद – ये कौशल्या दशरथ के महल में लक्ष्मी की तरह थीं अथवा लक्ष्मी ही थीं। सादृश्यवाचक शब्द के प्रयोग से क्या प्रयोजन? हाय! कष्ट है! यह वही (लक्ष्मीस्वरूप कौशल्या) दैववशात् दूसरे किसी दु:खरूप पाणी के समान हो गई हैं। परिणाम आश्चर्य है अर्थात् जो यह पहले लक्ष्मीस्वरूप थीं वही आज इतने बदले हुए स्वरूप में दिखाई दे रही हैं कि पहचानना भी कठिन हो गया है॥6॥

टिप्पणी – बत कष्टम्–अत्यन्त दु:ख प्रकट करने के लिए इन दो समानार्थक पदों का प्रयोग किया गया है। जाता–इसमें उद्देश्य की प्रधानता से स्त्रीत्व हुआ है। दु:खात्मकम्–दु:खम् आत्मा स्वरूपं यस्य तत् = दु:खमय। इस श्लोक में उपमा, अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा अलंकारों के परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यह वसन्ततिलका छन्द है॥6॥

अयमपरः पापो दशाविपर्यासः।

यह एक और पापजन्य अवस्था–परिवर्तन उपस्थित हो गया है (तात्पर्य यह है कि सीता के चिरवियोग से महाशोकरूप दशा–परिवर्तन तो था ही, अब कौशल्या के साक्षात्कार से परस्पर आर्तनाद आदि रूप दूसरा दशा परिवर्तन भी उपस्थित हो गया है।)

य एव मे जनः पूर्वमासीन्मूर्तो महोत्सवः।
क्षते क्षारमिवासह्यं जातं तस्यैव दर्शनम्॥7॥

अन्वय – य एव जनः पूर्वं मूर्तः महोत्सवः आसीत्, तस्यैव दर्शनं क्षते क्षारम् इव असह्यं जातम्॥7॥

अनुवाद – जो ही जन अर्थात् कौशल्या पहले मेरे लिए देहधारी महोत्सव के तुल्य अर्थात् परमानन्दस्वरूप थी, इस समय उसी का दर्शन घाव पर नमक छिड़कने के समान असह्य हो रहा है॥7॥

टिप्पणी – मूर्तः–मूर्च्छ् + क्त कर्तरि। महोत्सवः–महान् उत्सवः 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' इत्यनेन महतः आत्त्वम्। असह्यम्–सोढुं शक्यम् इति सह् + यत् कर्मणि सह्यम्, न सह्यम् असह्यम्। इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में हेतु या रूपक अलंकार और उत्तरार्द्ध में श्रौती उपमा अलंकार है। दोनों के परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है॥7॥

(ततः प्रविशत्यरुन्धती कौशल्या कञ्चुकी च)

(तदनन्तर अरुन्धती, कौशल्या और कंचुकी का प्रवेश होता है।)

अरुन्धती – ननु ब्रवीमि 'द्रष्टव्यः स्वयमुपेत्यैव वैदेह' इत्येवं वः गुरोरादेशः। अत एव चाह प्रेषिता। तत्कोऽयं पदे पदे महानध्यवसायः?

अनुवाद – आह! मैं कहती हूँ, 'आपके कुलगुरु का आदेश है कि स्वयं समीप जाकर ही विदेहपति जनक का दर्शन करें।' इसीलिए मैं भी भेजी गई हूँ। तब पग–पग पर यह न जाने की चेष्टा क्यों?

कञ्चुकी – देवि! संस्तभ्यात्मानमनुरुध्यस्व भगवतो वसिष्ठस्यादेशमित विज्ञापयामि।

कञ्चुकी – महारानी! मन को स्थिर करके भगवान् वसिष्ठ की आज्ञा का पालन करें, यही मेरा निवेदन है।

टिप्पणी – आत्मानम् = मन को। 'आत्मा पुंसि स्वभावे च प्रयत्नमनसोरपि' इति मेदिनी।

कौशल्या – ईदृशे काले मिथिलाधिपो मया द्रष्टव्य इति सममेव सर्वदु:खान्यवतरन्ति। तस्मान्न शक्नोम्युद्वर्तमानमूलबन्धनं हृदयं पर्यवस्थापयितुम्।

ऐसे दारुण समय में मुझे मिथिला पति का साक्षात्कार करना है, इस कारण सभी दु:ख एक साथ ही आ पड़े हैं। अतएव अपने चित्त को, जिसके अन्तस्तल की ग्रंथियाँ टूट चुकी हैं, स्थिर नहीं कर पा रही हूँ।

टिप्पणी – कहीं 'अवतरन्ति' की जगह 'समुद्भवन्ति' पाठ है। उसका अर्थ होगा–'उत्पन्न हो रहे हैं'। उद्वर्तमानमूलबन्धनम् = जिसका यथास्थान अवस्थित करने वाला प्रधान बन्धन उच्छिन्नप्राय हो गया ह, उसको। उद्वर्तमानं मूलबन्धनं यस्य तत्। पर्यवस्थापयितुम् = प्रकृतिस्थ करने के लिए।

अरुन्धती – अत्र कः सन्देहः?

अरुन्धती – इसमें क्या सन्देह?

सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि सम्बन्धिवियोगजानि।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्त्रोतःसहस्त्रैरिव संप्लवन्ते ॥8 ॥

अन्वय – मानुषाणां सन्तानवाहोन्यपि सम्बन्धिवियोगजानि दुःखानि प्रेयसि जने दृष्टे दुःसहानि (भूत्वा) स्त्रोतःसहस्त्रैः इव संप्लवन्ते ॥8 ॥

अनुवाद – मनुष्यों के निरवच्छिन्न रूप से प्रवाहित होने वाले बन्धुवियोगजन्य दुःख अत्यन्त प्रिय व्यक्ति का साक्षात्कार होने पर असह्य होकर असंख्य धाराओं के रूप में बहने लगते हैं ॥8 ॥

टिप्पणी – मानुषाणाम्–मनोरपत्यानि इति मानुषाः, मनुशब्दात् 'मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च' इत्यनेन अञ्प्रत्ययः षुगागमश्च। सन्तानवाहीनि–सम् तन् + घञ् भावे सन्तानः, तेन वोढुं शीलमेषाम् इति सन्तान वह् + णिनि कर्तरि ताच्छील्ये। प्रेयसि–अतिशयेन प्रियः इति प्रिय + ईयसुन् प्रेयान्, तस्मिन्। दुःसहानि–दुर् सह् + खल् कर्मणि दुःसहम्, तानि। स्त्रोतःसहस्त्रैः–स्त्रोतसां सहस्राणि, तैः करणे तृतीया। इस श्लोक में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। यहाँ इन्द्रवज्रा छन्द है ॥8 ॥

कौशल्या – कथं नु खलु वत्साया में वध्वा वनगतायास्तस्याः पितू राजर्षेर्मुखं दर्शयामः?)

कौशल्या – अपनी प्यारी बहू के वन चले जाने पर उसके पिता राजर्षि को कैसे मुँह दिखलाऊँ?

अरुन्धती –

एष वः श्लाघ्यसम्बन्धी जनकानां कुलोद्वहः।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ ॥9 ॥

अन्वय – एष वः श्लाघ्यसम्बन्धी जनकानां कुलोद्वहः अस्ति, यस्मै याज्ञवल्क्यो मुनिः ब्रह्मपारायणं जगौ।

अनुवाद – अरुन्धती–जनकवंशीय राजाओं के वंश–प्रवर्तक अर्थात् जनकवंश में सर्वश्रेष्ठ ये आपके सम्बन्धी समधी श्लाघनीय हैं, जिन्हें याज्ञवल्क्य मुनि ने समस्त वेद या वेदान्त का उपदेश किया था ॥9 ॥

टिप्पणी – श्लाघ्यसम्बन्धी श्लाघ् + ण्यत्, श्लाघ्यश्चासौ सम्बन्धी कर्मधारय। कुलोद्वहः = कुलश्रेष्ठ। उत् ऊर्ध्वं वहति प्रापयति इति उद्वहः, उत् वह् + अच् पचादित्वात्। कुलस्य उद्वहः। ब्रह्मपारायणम् = सकल वेद। पारं समाप्तिम् अयते अनेन इति पारायणं समस्तांशः ब्रह्मणो वेदस्य पारायणम् इति ब्रह्मपारायणम् ॥9 ॥

कौशल्या – एष स महाराजस्य हृदयनिर्विशेषो वत्साया मे वध्वाः पिता विदेहराजः सीरध्वजः। स्मारितास्मि अनिर्वेदरमणीयान् दिवसान्। हा दैव! सर्वं तन्नास्ति।

अनुवाद – कौशल्या–ये महाराज के अभिन्न हृदय और मेरी प्यारी बहू के पिता मिथिलेश सीरध्वज जी हैं। इन्होंने अम्लान (क्षोभरहित) रमणीय दिनों का स्मरण दिला दिया है। हाँ विधाता! अब वह सब नहीं है। अर्थात् अब आह्लाद् के कारणभूत महाराज, सीता और उसके सम्भावित पुत्र आदि कुछ नहीं है।

टिप्पणी – सीरध्वज: = जिसकी पताका पर हल या सूर्य का चिह्न विद्यमान हो। सीर: ध्वजे यस्य स:। कहते हैं कि सीर = सूर्य या हल का चिह्न जनकवंशीय राजाओं के झण्डे पर बना रहता था। 'सीरोऽर्कहलयो: पुंसि' इति मेदिनी।

जनक: – (उपसृत्य) भगवत्यरुन्धति! वैदेह: सीरध्वजोऽभिवादयते।

जनक – (समीप जाकर) भगवति अरुन्धति! विदेहदेशवासी सीरध्वज आपको प्रणाम करता हूँ।

यया पूतम्मन्यो निधिरपि पवित्रस्य महस:
पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरूणां गुरुतम:।
त्रिलोकीमङ्गल्यामवनितल्लीनेन शिरसा
जगद्वन्द्यां देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम्॥10॥

अन्वय – पवित्रस्य महस: निधिरपि पूर्वेषां गुरूणां गुरुतम: अपि ते पति: यया पूतम्मन्य: खलु, त्रिलोकीमङ्गल्यां जगद्वन्द्यां देवीम् उषसम् इव भगवतीम् अवनितललीनेन शिरसा वन्दे॥10॥

अनुवाद – पवित्र ब्रह्म तेज की निधि एवं पुरातन गुरुओं के गुरु होते हुए भी आपके पति जिस आप से अपने को पवित्र मानते हैं, उन उषा देवी प्रात:काल की अधिष्ठात्री देवी की भाँति त्रिभुवनमंगलदायिनी, जगद्वन्दनीया तथा ऐश्वर्यसम्पन्ना आपको मैं भूतल पर रखे हुए मस्तक से प्रणाम करता हूँ॥10॥

टिप्पणी – महस: = तेज का। 'महस्तूत्सवतेजसो:' इत्यमर:। पूतम्मन्य:–अपने को पवित्र मानने वाला। आत्मानं पूतं मन्यते इति विग्रहे 'आत्ममाने खश्च' इत्यनेन खश्प्रत्यय: तथा 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इत्यनेन मुमागम:। त्रिलोकीमङ्गल्याम्–त्रयाणां लोकानां समाहार: त्रिलोकी, तस्या: मङ्गल्यां, मङ्गलाय हिता इति मङ्गल्या 'तस्मै हितम्' इत्यनेन यत् प्रत्यय:। उषसम्–प्रभात अर्थ में यह शब्द नपुंसक है, किन्तु तदधिष्ठात्री देवी के अर्थ में स्त्रीलिंग। 'उष: प्रत्युषसि क्लीबं पितृप्रस्वाञ्च योषिति' इति मेदिनी। इस श्लोक में पूर्णोपमा अलंकार है। यहाँ शिखरिणी छंद है॥10॥

अरुन्धती – अक्षरं ते ज्योति: प्रकाशताम्। स त्वां पुनातु देव: परो रजसां, य एष तपति।

अनुवाद – अरुन्धती–आपको अविनाशी तेज प्रकाशित हो अर्थात् परब्रह्म का साक्षात्कार हो। जो यह तापदान अर्थात् जगत् को प्रकाशित करने वाले रज आदि दोषों से परे आदित्यदेव आपको पवित्र करें।

टिप्पणी – ज्योति: = परब्रह्म। क्योंकि 'ज्योतिर्दर्शनात्' इस वेदान्तसूत्र पर शंकराचार्य ने भाष्य किया है–'परमेव ब्रह्म ज्योति:शब्द'मिति। किन्हीं पुस्तकों में 'परो रजसां' की जगह 'परोरजा:' पाठ है। उसका अर्थ होगा–रजोगुण से अतीत। रजस: पर इति विग्रहे 'राजदन्तादिषु परम्' इत्यनेन रजस: परनिपात: तथा 'पारस्करप्रभृतीनि च' इत्यनेन सुडागम:।

जनक: – आर्य गृष्टे! अप्यनामयमस्या: प्रजापालकस्य मातु:?

अनुवाद – जनक–मान्य कञ्चुकिन्! ये प्रजापालक राम की माता कौशल्या स्वस्थ तो हैं?

टिप्पणी – अनामयम् = आरोग्य। 'ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम्' इति मनु:। प्रजापालकस्य–इस शब्द से व्यंग्य सूचित होता है अर्थात् राम प्रजा के पालक है, पत्नी के पालक नहीं।

कञ्चुकी – (स्वगतम्) निरवशेषमतिनिष्ठुरमुपालब्धा: स्म:। (प्रकाशम्) राजर्षे! अनेनैव मन्युना चिरपरित्यक्तरामभद्रदर्शनां नार्हसि दु:खयितुमतिदु:खितां देवीम्। रामभद्रस्यापि दैवदुर्योग: कोऽपि। यत्किल समन्तत: प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीका: पौरा:। न चाग्निशुद्धिमनल्पका: प्रतियन्तीति दारुणमनुष्ठितं देवेन।

अनुवाद – कंचुकी–(मन में) इन्होंने बड़ी कठोरता के साथ सब कुछ कहकर हम लोगों को उलाहना दी है। (प्रकट रूप में) राजर्षे! इसी शोक या क्रोध के कारण बहुत काल से रामभद्र का दर्शन त्याग

किये हुई अत्यन्त दु:खिता महारानी को कष्ट देना आपके लिये उचित नहीं है। रामभद्र का भी कोई भाग्य दुष्परिणाम रहा है, जिसे चारों तरफ पुरवासी लोग बीभत्स बातें उड़ाने में प्रवृत्त हो गये। वे क्षुद्राशय पुरवासी सीता देवी की अग्निपरीक्षा द्वारा प्रमाणित निर्दोषता पर विश्वास नहीं करते हैं। अतएव महाराज ने ऐसा (सीता-निर्वासन रूप) दारुण कर्म किया।

जनकः – (सरोषम्) आः, कोऽयमग्निर्नामास्मत्-प्रसूतिपरिशोधने? कष्टम्, एवंवादिना जनेन रामभद्रपरिभूता अपि पुनः परिभूयामहे।

अनुवाद – जनक-(क्रोध के साथ) ओह! मेरी पुत्री को परिशुद्ध करने वाला यह अग्नि कौन होता है? कष्ट है कि 'अग्नि ने सीता को निर्दोष प्रमाणित किया' यह बोलने वाले लोग चारित्रिक दोषापवाद के कारण सीता को निर्वासित करने वाले रामभद्र द्वारा तिरस्कृत किये गये हम लोगों को पुनः अपमानित कर रहे हैं।

टिप्पणी – आः-यह शब्द सकारान्त अव्यय है। यहाँ क्रोधार्थक है। कंचुकी ने अगि का प्रसंग छेड़ा, इसलिए जनकजी को क्रोध हुआ। नाम-यह शब्द यहाँ कुत्सार्थक अव्यय है। अपने से भी अधिक पवित्र सीताजी को पवित्र करना अग्नि के लिए हास्यास्पद है, यही इस शब्द से ध्वनित किया गया है।

अरुन्धती – (नि:श्वस्य) एवमेतत्। अग्निरिति वत्सां प्रति लघून्यक्षराणि। सोतेत्येव पर्याप्तम्। हा वत्से!

अरुन्धती – (आह खींचकर) यह ऐसा ही है अर्थात् आपका कथन सत्य है। सीता के लिए 'अग्नि' ये अक्षर क्षुद्र हैं अर्थात् पवित्रतांश में सीता के साथ अग्नि की तुलना करने पर पातिव्रत्य के प्रभाव से सीता ही अधिक पवित्र मानी जायेगी। 'सीता' यह नाम ही पर्याप्त है। अर्थात् 'सीता' इसके उच्चारणमात्र वे सब पवित्र होते हैं, फिर उसकी शुद्धि दूसरे सामान्य पावन पदार्थ से क्या होगी? हाय पुत्री!

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ॥11॥

अन्वय – मम शिशुर्वा शिष्या वा असि यत् तत् तथा तिष्ठतु, तु विशुद्धेः उत्कर्षः त्वयि मम भक्तिं द्रढयति। ननु शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु, जगतां वन्द्या असि, गुणिषु गुणाः पूजास्थानं, लिङ्गं न वयश्च न॥11॥

अनुवाद – तुम चाहे मेरी बालिका हो या शिष्या हो और इस बालभाव या शिष्यभाव क संबंध जैसा है, वैसा ही रहे; परन्तु तुम्हारी पवित्रता का उत्कर्ष तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति को दृढ़ करता है। तुम में चाहे शिशुत्व हो या स्त्रीत्व, तुम निश्चय ही जगत् की पूजनीया हो। क्योंकि गुणवानों में गुण ही पूजा के स्थान होते हैं न कि स्त्रीत्व, पुंस्त्व आदि चिह्न और बालकत्व, वृद्धत्व आदि अवस्थायें पूज्य होती हैं अर्थात् जो गुणी व्यक्ति होते हैं उनके गुण ही पूजे जाते हैं, लिंगभेद अथवा आयु का विचार नहीं किया जाता है।

टिप्पणी – स्त्रैणम् = स्त्रीभा। स्त्रीशब्दात् 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' इत्यनेन नञ्प्रत्ययः। गुणाः पूजास्थानं... – कालिदास ने भी रघुवंश में कहा है-'पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते', 'वृत्तं हि महितं सताम्'। इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार और परिसंख्या अलंकार में परस्पर अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार हो जाता है। यहाँ शिखरिणी छंद है॥11॥

कौशल्या – अहो, समुन्मूलयन्तीव वेदनाः।

कौशल्या – हाय! वेदनायें मानो जड़ से उखाड़ रही हैं। (यह कहकर मूर्च्छित हो जाती हैं।)

जनकः – हन्त! किमेतत्?

जनक – अरे! यह क्या?

अरुन्धती – राजर्षे! किमन्यत्?

अरुन्धती – राजर्षे! दूसरा और क्या?

स राजा तत्सौख्यं स च शिशुजनस्ते च दिवसाः
स्मृतावाविर्भूतं त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम्।
विपाके घोरेऽस्मिन्नथ खलु विमूढा तव सखी
पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति॥12॥

अन्वय – सुहृदि त्वयि दृष्टे स राजा तत् सौख्यं स च शिशुजनः ते च दिवसाः तदखिलम् स्मृतौ आविर्भूतम्। अथ अस्मिन् घोरे विपाके तव सखी विमूढा खलु, हि पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं भवति॥12॥

अनुवाद – आप जैसे बंधु के साक्षात्कार होने पर वे राजा दशरथ, वह सुख-समूह, वे रामभद्र प्रभृति शिशुगण और वे महानन्दपूर्ण दिन-ये सारी चीजें महारानी के स्मृतिपथ पर अंकित हो गईं। अनन्तर इस अवस्था-परिवर्तन के कारण आपकी सखी मूर्च्छित हो गयी हैं, क्योंकि कुलांगनाओं का चित्त फूल के समान कोमल होता है॥12॥

टिप्पणी – सौख्यम् = सुख। सुखशब्दात् स्वार्थे अण्प्रत्ययः। पुरन्ध्री = पति, पुत्र कन्या आदि से भरी-पूरी स्त्री। विपाके-वि पच् + घञ् भावे विपाकः विषयपरिणामः। इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास और लुप्तोपमा अलंकारों की स्थिति परस्पर सापेक्ष होने से संकर अलंकार हो जाता है। यहाँ शिखरिणी छंद है॥12॥

जनकः – हन्त! सर्वथा नृशंसोऽस्मि। यच्चिरस्य दृष्टान् प्रियसहृदः प्रियदारानस्निग्ध इव पश्यामि।

अनुवाद – जनक-हाय! मैं सब तरह से क्रूर हूँ, जो चिर काल के बाद दृष्टिगोचर हुईं प्रिय सखा दशरथ की प्रिय पत्नी कौशल्या को स्नेह-शून्य-सा होकर देख रहा हूँ।

स सम्बन्धी श्लाघ्यः प्रियसुहृदसौ तच्च हृदयं
स वानन्दः साक्षादपि च निखिलं जीवितफलम्।
शरीरं जीवो वा यदधिकमतोऽन्यत्प्रियतरं
महाराजः श्रीमान् किमिव मम नासीद्दशरथः॥13॥

अन्वय – स श्लाघ्यः सम्बन्धी असौ प्रियसुहृत् तच्च हृदयं स च साक्षात् आनन्दः अपि च निखिलं जीवितफलं शरीरं जावो वा अतः अधिकम् अन्यत् प्रियतरं श्रीमान् महाराजो दशरथो मम किमिव न आसोत्?॥13॥

अनुवाद – वे दशरथ प्रशंसनीय समन्धी थे, वे प्रेमी बंधु थे, वे हृदयस्वरूप थे, वे साक्षात् आनन्द थे, वे सम्पूर्ण जीवन के फलस्वरूप थे, वे मेरा शरीर अथवा आत्मा थे और आत्मा से भी अधिक प्रियतर परमात्मा थे। श्रीमान् महाराज दशरथ मेरे क्या नहीं थे? अर्थात् सर्वस्व थे॥13॥

टिप्पणी – यहाँ अतिशयोक्ति, रूपक और अर्थापत्ति अलंकारों में परस्पर अंगांगिभाव संबंध होने से संकर अलंकार हो जाता है। यहाँ शिखरिणी छंद है॥13॥

कष्टमियमेव सा कौशल्या।

हाय कष्ट है! ये ही वे कौशल्या हैं-

यदस्याः पत्युर्वा रहसि परमन्त्रायितमभू-
दभूवं दम्पत्योः पृथगहमुपालम्भविषयः।
प्रसादे कोपे वा तदनु मदधीनो विधिरभू-
दलं वा तत्स्मृत्वा दहति यदवस्कन्द्य हृदयम्॥14॥

अन्वय – अस्याः पत्युर्वा रहसि यत् परमन्त्रायितम् अभूत्, अहं दम्पत्योः पृथक् उपालम्भविषयः अभूवम्। तदनु प्रसादे कोपे वा मदधीनो विधिः अभूत्, तत् स्मृत्वा अल यत् हृदयम् अवस्कन्द्य दहति॥14॥

अनुवाद – एकान्त में ये कौशल्या या इनके पति जो कुछ मंत्रणा या प्रणय-कलह करते थे, उसमें दम्पती अलग-अलग मुझे उलाहना देते थे। अर्थात् दशरथ के दोष रहने पर कौशल्या मुझसे कहती थीं कि आपके सखा ने मुझसे यह दुर्व्यवहार किया, किन्तु आप उनसे कुछ नहीं कहते हैं और कौशल्या के दोष रहने पर दशरथ कहते थे कि आपकी सखी ने मेरा यह अपराध किया, पर आप कुछ नहीं कहते। तत्पश्चात् अर्थात् उलाहना सुन लेने के बाद उनको प्रसन्न करने या कुपित करने के काम मेरे लिए रहता था। अब उस अतीत वृत्तान्त का, जो हृदय पर आक्रमण करके जला रहा है, स्मरण करना व्यर्थ है॥14॥

टिप्पणी – रहसि = विजन स्थान में। 'विविक्तविजनच्छन्ननिः शलाकस्तथा रहः' इत्यमरः। स्मृत्वा अलम् = इमसें 'अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा' इस सूत्र से क्त्वा प्रत्यय हुआ। मदधीनः-मयि अधि इति मदधि + ख-ईन 'अध्युत्तरपदात्खः' इत्यनेन, अत्र 'सप्तमी शौण्डैः' इत्यनेन सप्तमीतत्पुरुष। इस श्लोक में दम्पतीनिष्ठ गुप्तभाषण या दूषणरूप कारण से जनक के उपालम्भ रूप कार्य की उत्पत्ति होती है, अतः असंगति अलंकार है। यहाँ शिखरिणी छंद है॥14॥

अरुन्धती – हा कष्टम्! अतिचिरनिरुद्धनिःश्वासनिष्पन्दहृदयमस्याः।

अनुवाद – अरुन्धती-हाय कष्ट है? इनका हृदय चिरकाल तक रोके गये प्राणवायु के कारण स्पन्दन रहित हो गया है।

जनकः – हा प्रियसखि! (इति कमण्डलूदकेन सिञ्चति।)

जनक – हाय प्रिय सखी! (यह कह कर कमण्डलु का जल छिड़क देते हैं।)

कंचुकी –

सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदां प्रथममेकरसामनुकूलताम्।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः परिशिनष्टि विधिर्मनसो रुजम्॥15॥

अन्वय – विधिः प्रथम सुहृत् इव सुखप्रदाम् एकरसाम् अनुकूलतां प्रकटय्य पुनः अकाण्डविवर्तनदारुणः (भूत्वा) मनसो रुजं परिशिनष्टि॥15॥

अनुवाद – कंचुकी-(महारानी कौशल्या का) विधाता या भाग्य पहले बन्धु की तरह आनन्ददायिनी एवम् एक ही प्रकार के रस से संयुक्त अर्थात् धारावाहिकरूपेण केवल सुखशालिनी अनुकूलता उत्पन्न करके पुनः असमय में परिवर्तन द्वारा भीषण हो कर विशेष रूप से मन में पीड़ा उत्पन्न कर रहा है॥15॥

टिप्पणी – अनकूलताम्-अनुगतः कूलम् अनुकूलः प्रादितत्पुरुष, तस्य भावः। प्रकटय्य-प्र कट् + णिच् + क्त्वा-ल्यप्। अकाण्ड-न काण्डः = अवसरः। 'काण्डोऽस्त्री दण्डबाणार्ववर्गावसरवाजिषु' इत्यमरः। इस पद्य में सुखदाता विधाता से दुःख की उत्पत्ति निरूपित होने के कारण विषमालंकार है और 'सुहृदिव' में श्रौती उपमा अलंकार है। दोनों की स्थिति परस्पर सापेक्ष होने से संकर अलंकार हो जाता है। यहाँ द्रुतविलम्बित छंद है॥15॥

कौशल्या – हा वत्से जानकि! कुत्रासि? स्मरामि ते नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमङ्गलं सम्फुल्लमुग्धमुख-पुण्डरीकमारोहत्कौमुदीचन्द्रसुन्दरम्। एहि मे पुनरपि जाते! उद्द्योतयोत्सङ्गम्। सर्वदा महाराज एवं भणति– 'एषा रघुकुलमहत्तराणां वधूरस्माकं तु जनकसुता दुहितैव'।

अनुवाद – कौशल्या–(आश्वस्त होकर) हाय बेटी सीता! कहाँ हो? तुम्हारे मुखकमल का, जो नवविवाह की शोभा धारण कर अनुपम मंगल से सम्पन्न, कार्त्तिकी पूर्णिमा के चंद्रमा की तरह शोभायमान, विकसित एवं मनोहर था, स्मरण कर रही हूँ। बेटी! आओ। फिर मेरी गोद को सुशोभित करो। महाराज सदा ऐसा कहा करते थे कि–यह सीता रघुकुल के महापुरुषों की पुत्रवधू है, किन्तु (राजर्षि जनक से मित्रता होने के कारण) हमारी तो कन्या है।

कञ्चुकी – यथाह देवी।

कञ्चुकी – महारानी का कहना यथार्थ है।

पञ्चप्रसूतेरपि तस्य राज्ञः प्रियो विशेषेण सुबाहुशत्रुः।
वधूचतुष्केऽपि तथैव नान्या प्रिया तनूजाऽस्य यथैव सीता॥16॥

अन्वय – पञ्चप्रसूतेः अपि तस्य राज्ञः सुबाहुशत्रुः विशेषेण प्रियः तथैव अस्य वधूचतुष्कऽपि सीता एव तनूजा यथा प्रिया अन्या न॥16॥

अनुवाद – महराज दशरथ के पाँच सन्ततियों के रहते हुए भी राम सबसे अधिक प्रिय थे। उसी प्रकार चार बहुओं में सीता ही उन्हें पुत्री की तरह प्रिय थीं और कोई वैसी नहीं थी॥16॥

टिप्पणी – पञ्चप्रसूतेः = पाँच सन्तानों वाले। पञ्च प्रसूतयः = अपत्यानि यस्य सः तस्य। राजा दशरथ के राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र तथा शान्ता नामक एक पुत्री थी। सुबाहुशत्रुः = राम। सुबाहु राक्षस मारीच का साथी था, उसके मारने वाले राम थे। वधूचतुष्केऽपि = चार बहुओं के रहने पर भी। चत्वारि परिमाणानि अस्य इति चतुष्कः चतुर शब्दात् 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' इति सूत्रेण कन् प्रत्ययः। वधूनां चतुष्कः इति वधूचतुष्कः तस्मिन् वधूचतुष्के, अधिकरणे सप्तमी। सीता, ऊर्मिला, श्रुतकीर्ति और माण्डवी–ये चार बहुएँ थीं। इस श्लोक में उपमा अलंकार है। यह उपजाति छंद है॥16॥

जनकः – हा प्रियसख महाराज दशरथ! एवमसि सर्वप्रकारहृदयङ्गमः। कथं विस्मर्यते?

जनक – हा प्रिय बंधु महाराज दशरथ! इस प्रकार आप सब तरह से प्रीतिभाजन थे। कैसे विस्मृत हो सकते हैं अर्थात् हम आपको कैसे भूल सकते हैं?

टिप्पणी – हृदयङ्गमः–हृदयं गच्छतीति हृदय गम् + खच् कर्तरि। 'खच् प्रकरणे गमेः सुप्युपसंख्यानम्' इति खच्।

कन्यायाः किल पूजयन्ति पितरो जामातुराप्तं जनं
सम्बन्धे विपरीतमेव तदभूदाराधनं ते मयि।
त्वं कालेन तथाविधोऽप्यपहृतः सम्बन्धबीजं च तद्
घोरेऽस्मिन्मम जीवलोकनरके पापस्य धिग्जीवितम्॥17॥

अन्वय – कन्यायाः पितरः जामातुः आप्तं जनं पूजयन्ति किल, सम्बन्धे मयि ते तत् आराधनं विपरीतम् एव अभूत्। तथाविधोऽपि त्वं कालेन अपहृतः तत् सम्बन्धबीजं च, अस्मिन् घोरे जीव लोकनरके पापस्य मम जीवितं धिक्॥17॥

अनुवाद – कन्या के पितृपक्ष के लोग जामाता के बन्धुजनों की पूजा करते हैं, यह बात प्रसिद्ध है; परन्तु हम लोगों के सम्बन्ध में अर्थात् हमारी और आपकी सन्तानों के वैवाहिक सम्बन्ध में यह बात उल्टी हुई

अर्थात् जहाँ हमें आपकी पूजा करनी चाहिए थी वहाँ आप ही हमारी पूजा करते रहे। आप इस प्रकार के सज्जन होते हुए भी काल-कवलित हो गए और सम्बन्ध की मूल कारण सीता भी काल द्वारा अपहृत हो गई। अतएव इस भयंकर और नरकस्वरूप संसार में मुझ पापी के जीवन को धिक्कार है॥17॥

टिप्पणी – यहाँ जीवलोक में नरक का अभेद रूप से अध्यास किया गया है, अतः निरङ्ग रूपक अलंकार है। यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है॥17॥

कौशल्या – जाते जानकि! किं करोमि? दृढवज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चलं हतजीवितं मां मन्दभागिनीं न परित्यजति।

अनुवाद – कौशल्या-बेटी सीता! क्या करूँ? मेरा निन्दनीय जीवन मानो कठोर वज्रलेप के बन्धन से निश्चल हो जाने के कारण मुझ मन्दभागिनी का परित्याग नहीं कर रहा है।

अरुन्धती – आश्वसिहि राज्ञि! बाष्पविश्रामोऽप्यन्तरेषु कर्तव्य एव। अन्यच्च किं न स्मरसि यदवोचदृष्यशृङ्गाश्रमे युष्माकं कुलगुरुः 'भवितव्यं तथेत्युपजातमेव। किन्तु कल्याणोदर्कं भविष्यति' इति।

अनुवाद – अरुन्धती-महारानी! आश्वस्त हों। बीच-बीच में अश्रुपात को रोकना भी चाहिए और आप यह क्यों नहीं स्मरण करती हैं कि आपके कुलगुरु ने ऋष्यशृङ्ग जी के आश्रम में कहा था-'जो होनी थी वह तो हो ही गई, किन्तु परिणाम मङ्गलमय होगा'।

टिप्पणी – उपजातम्-दुष्टं जातम् इत्यर्थे उप जन + क्त कर्तरि। यहाँ उप का अर्थ दोष है। 'उप सामर्थ्यदाक्षिण्यदोषाख्यानात्ययेषु च' इति विश्वः। कल्याणोदकम्-कल्याणम् उदर्कः अस्य। उदर्क = भाविफल। 'उदकः फलमुत्तरम्' इत्यमरः।

कौशल्या – कुतोऽतिक्रान्तमनोरथाया ममैतत्?

कौशल्या – नष्ट मनोरथवाली मुझको यह कहाँ से होगा?

अरुन्धती – तत् किं मन्यसे राजपत्नि! मृषोद्यं तदिति। न हीदं क्षत्रिये! मन्तव्यम्।

अरुन्धती – राजरानी! तो आप क्या समझती हैं कि उन्होंने असत्य कहा है? राजपुत्रि! आपको ऐसा नहीं समझना चाहिए।

टिप्पणी – मृषोद्यम् - मिथ्या वचन। मृषा = मिथ्या उद्यते = कथ्यते इत्यर्थे मृषोपपदात् वद् धातोः 'राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याऽव्यथ्याः' इति सूत्रेण क्यप्प्रत्ययो निपातितः। क्षत्रिये- 'अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे' इस वार्तिक से विकल्प करके ङीप् और आनुक् होने के कारण यहाँ क्षत्रिय शब्द से टाप् हुआ।

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहारास्तेषु मा संशयो भूत्।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति॥18॥

अन्वय – आविर्भूतज्योतिषां ये व्याहाराः तेषु संशयो मा भूत्। हि एषां वाचि भद्रा लक्ष्मीः निषक्ता एते विप्लुतार्थां वाचं न वदन्ति॥18॥

अनुवाद – ब्रह्मसाक्षात्कार से सम्पन्न ब्राह्मणो के कथनों में सन्देह नहीं करना चाहिये; क्योंकि इन ब्राह्मणों की वाणी में कल्याणदायिनी सिद्धि नित्य विराजमान रहती है॥18॥

टिप्पणी – व्याहार = वचन। 'व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः' इत्यमरः। भद्रा... -यह वाक्य 'भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि'-इस वैदिक वाक्य का अनुकरण है। वैदिक वाक्य का उद्धरण महाभाष्य आदि ग्रन्थों में मिलता है। महाभाष्य में कैयट ने 'लक्ष्मी' का अर्थ किया है-'या लक्ष्मीर्वेदान्तेषु

परमार्थसंविल्लक्षणा उक्ता सा'। इस श्लोक में कारण द्वारा कार्यसमर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यह शालिनी छन्द है॥18॥

(नेपथ्ये कलकलः। सर्वे आकर्णयन्ति।) (नेपथ्य में कोलाहल होता है। सब सुनने लगते हैं।)

जनकः– अये, शिष्टानध्याय इत्यस्खलितं खेलतां वटूनां कोलाहलः।

जनक–अरे! शिष्टों के आगमन से अनध्याय हो गया है, इसलिये जी भरकर खेलते हुए बालकों का यह कोलाहल है।

कौशल्या–सुलभ सौख्यमिदानीं बालत्वं भवति। अहो, एतेषां मध्ये क एष रामभद्रस्य कौमारलक्ष्मी-सावष्टम्भैर्मुग्धललितैरंगैर्दारकोऽस्माकं लोचने शीतलयति?

अनुवाद–बाल्यावस्था में आनन्द अनायास मिलता रहता है। (देखकर) अहा! इन बालकों के बीच यह कौन बालक रामचन्द्र की बाल्यकालीन शोभा से सम्पन्न तथा मनोहर एवं सुकुमार अंगों से हमारे नेत्रों को शीतल कर रहा है?

टिप्पणी–सावष्टम्भैः–अव स्तम्भ् + घञ् भावे = अवष्टम्भ, 'अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः' इत्यनेन सस्य षः, अवष्टम्भेन सह इति सावष्टम्भानि, तैः।

अरुन्धती–(स्वगतम्, सहर्षोत्कण्ठम्) इदं नाम भागीरथीनिवेदितं रहस्यकर्णामृतम्। न त्वेवं विद्मः कतरोऽयमायुष्मतोः कुशलवयोरिति (प्रकाशम्)।

अरुन्धती–(मन में हर्ष और उत्कण्ठा के साथ) यह गंगाजी का बताया हुआ गुप्त एवं कानों के लिए अमृत के समान वृत्तांत है। किन्तु मैं यह नहीं जानती कि आयुष्मान् कुश और लव में से यह कौन है। (प्रकट)

कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो
वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियेव सभाजयन्।
पुनरपि शिशुर्भूतो वत्सः स मे रघुनन्दनो
झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृताञ्जनम्?॥19॥

अन्वय– कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनः पुण्यश्रीकः रिया वटुपरिषदं सभाजयन् इव पुनः शिशुः भूतः स मे वत्सो रघुनन्तन इव कोऽयं दृष्टः झटिति दृशोः अमृताञ्जनं कुरुते॥19॥

अनुवाद– नीलकमल के पत्ते के समान कोमल तथा श्यामवर्ण, काकपक्ष (जुल्फ) से भूषित, पवित्रशोभासम्पन्न और देह की कान्ति से मानो ब्राह्मण-बालकों को अलंकृत करता हुआ यह कौन पुनः शैशव अवस्था धारण किये हुए मेरे वत्स रामभद्र की तरह दृष्टिगोचर होकर सहसा (मेरे) नेत्रों मं अमृत का आँजन लगा रहा है?॥19॥

टिप्पणी– इस श्लोक में क्रियोत्प्रेक्षा और उपमा अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार होता है। यह हरिणी छंद है॥19॥

कञ्चुकी–नूनं क्षत्रियब्रह्मचारी दारकोऽयमिति मन्ये।

कञ्चुकी–मेरी समझ में निश्चय ही यह बालक क्षत्रिय ब्रह्मचारी है।

जनकः–एवमेतत्। तथा हि–

जनक–ऐसा ही है। देखें–

चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्तोकपवित्रलाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्।

मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधोवासश्च माञ्जिष्ठकं
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डं तथा पैप्पलम् ॥20 ॥

अन्वय– पृष्ठतः अभितः चूडाचुम्बितकङ्कपत्रं तूणीद्वयं, भस्मस्तोकपवित्र लाञ्छनम् उरः, रौरवीं त्वचम्, अधः मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितं माञ्जिष्ठकं वासः, पाणौ कार्मुकम्, अक्षसूत्रवलयम्, तथा पैप्पलं दण्डं धत्ते ॥20 ॥

अनुवाद–यह पीठ की दोनों ओर चोटी का स्पर्श करने वाले कंकपत्रों (बाणों में लगे हुए कंक पक्षी के पंखों) से युक्त दो तरकस, वक्षःस्थल पर थोड़े से भस्म के चिह्न, रुरुमृग का चर्म, (वक्षःस्थल से) नीचे मूर्वालता के तन्तुओं से निर्मित मेखला से बँधा हुआ मजीठ के रंग का वस्त्र और हाथ में धनुष, रुद्राक्षमाला एवं पीपल का दण्ड धारण किये हुए है ॥20 ॥

टिप्पणी– अभितः = दोनों तरफ। अभि + तसिल् 'पर्यभिभ्यां च' 'सर्वोभयार्थाभ्यामेव' इत्यनेन। कङ्क = एक मांसाहारी पक्षी। इसके पंख बाण में लगाये जाते थे। रौरवीम् = रुरु (मृगविशेष) की। रुरोः इयम् इत्यर्थे रुरु + अण्, ङीप्। मौर्व्या = मूर्वाया इयम् इति मूर्वा + अण स्त्रियाम् मौर्वी तया। माञ्जिष्ठकम् = मजीठ के रंग में रँगा हुआ। मञ्जिष्ठया रक्तम् इत्यर्थे मञ्जिष्ठाशब्दात् 'तेन रक्तं रागात्' इत्यनेन अण्प्रत्ययः तदन्तात् स्वार्थे कन्–प्रत्ययश्च। इस पद्य में 'धत्ते' इस एक ही क्रिया के साथ 'तूणीद्वय' आदि पदों का कर्मत्वेन सम्बध होने के कारण तुल्ययोगिता अलंकार है। इसमें क्षत्रिय ब्रह्मचारी का लक्षण बताया गया है। यह शार्दूलविक्रीडित छंद है ॥20 ॥

भगवत्यरुन्धित! किमित्युत्प्रेक्षसे कुतस्त्योऽयम्? इति।

भगवति अरुन्धति! आपका क्या अनुमान है? यह बालक कहाँ से आया है?

टिप्पणी–कुतस्त्यः–कुत आगत इत्यर्थे कुतस्शब्दात् 'अव्ययात्त्यप्' इति सूत्रेण त्यप् प्रत्ययः।

अरुन्धती – अद्यैव वयमागताः।

अरुन्धती – आज ही हम लोग आये हैं। आपकी तरह हम भी इससे अपरिचित हैं।

जनकः – आर्य गृष्टे! अतिकौतुकं वर्तते। तद्भगवन्तं वाल्मीकिमेव गत्वा पृच्छ। इमं च दारकं ब्रूहि 'वत्स! केऽप्येते प्रवयसस्त्वां दिदृक्षव' इति।

जनक – आर्य कंचुकिन्! बड़ा कुतूहल हो रहा है। इसलिये भगवान् वाल्मीकि से जाकर पूछिये। इस बालक से भी कहिये–'ये अपरिचित वृद्धगण तुम्हें देखना चाहते हैं।'

टिप्पणी – केऽपि = अपरिचित। प्रवयसः = वृद्ध लोग। प्रकृष्टं वयः येषां ते प्रवयसः। दिदृक्षवः = देखने को इच्छुक। दृश् + सन् + उ।

कञ्चुकी – यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

कञ्चुकी – महाराज की जो आज्ञा (यह कहकर चला गया।)

कौशल्या – किं मन्यध्वे? एवं भणित आगमिष्यति वा नवेति।

कौशल्या – आप लोग क्या सोचते हैं, इस प्रकार बुलाने पर वह आएगा या नहीं?

जनकः – भिद्यते वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य?

अनुवाद – ऐसा अलौकिकगुणविशिष्ट आकृति का सद्व्यवहार नष्ट होता है क्या? अर्थात् बालक का रूप ही बताता है कि वह विनय–सम्पन्न है।

टिप्पणी – निर्माणस्य = निर्मित पदार्थ का। 'कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते' इस न्याय के बल से यहां निर्माण का अर्थ निर्मित पदार्थ समझना चाहिये। भिद्यते–यह कर्मकर्ता का प्रयोग है। इसमें 'कर्मवत् कर्मणा तुल्यक्रिय' सूत्र से कर्मवद्भाव होने पर यक् और आत्मनेपद होता है।

कौशल्या – कथं सविनयनिशमितगृष्टिवचनो विसर्जिताशेषसदृशदारक इतोमुखं प्रसृत एव स वत्सः।

अनुवाद – कौशल्या–(अच्छी तरह देखकर) कैसे नम्रतापूर्वक कंचुकी की बात सुनकर अपने सदृश सभी बालकों को छोड़कर वह चिरञ्जीव इधर ही आ रहा है?

जनकः – (चिरं निर्वर्ण्य) भोः किमप्येतत्।

जनक – (बहुत देर तक अवलोकन कर) अहा! यह तो अपूर्व है।

महिम्नामेतस्मिन् विनयशिशिरो मौग्ध्यमसृणो
विदग्धैर्निर्ग्राह्यो न पुनरविदग्धैरतिशयः।
मनो मे सम्मोहः स्थिरमपि हरत्येव बलवा-
नयोधातुं यद्वत्परिलघुरयस्कान्तशकलः ॥21॥

अन्वय – एतस्मिन् विनयशिशिरो मौग्ध्यमसृणो महिम्नाम् अतिशयो विदग्धैः निर्ग्राह्यः पुनः अविदग्धैः न, बलवान् सम्मोहः मे स्थिरमपि मनः परिलघुः अयस्कान्तशकलः अयोधातुं यद्वत् हरत्येव ॥21॥

अनुवाद – इस शिशु में नम्रता से शीतल और सुन्दरता से कोमल जो शौर्य, गाम्भीर्यादि रूप महिमा का उत्कर्ष है, उसे विज्ञ व्यक्ति ही जान सकते हैं, अविज्ञ नहीं। इसके प्रति उत्पन्न बलवान मोह मेरे स्थिर मन को भी उसी तरह खींच रहा है जैसे छोटा–सा चुम्बक का टुकड़ा लोहे को अपनी ओर खींचता है॥21॥

टिप्पणी – महिम्नाम्–महतां भाव इत्यर्थे महत् + इमनिच्, तोषाम्। इस पद्य के द्वितीय, चरण मेंशाब्दी परिसंख्या और द्वितीयार्ध में श्रौती उपमा अलंकार हैं। इन दोनों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यह शिखरिणी छंद है॥21॥

लवः – (प्रविश्य स्वगतम्) अविज्ञातवयः क्रमौचित्यात् पूज्यानपि सतः कथमभिवादयिष्ये? (विचिन्त्य) अयं पुनरविरुद्धप्रकार इति वृद्धेभ्यः श्रूयते। (सविनयमुपसृत्य प्रकाशम्) एष वो लवस्य शिरसा प्रणामपर्यायः।

अनवाद – (प्रवेश करके अपने आप) अवस्था और क्रम के औचित्य का ज्ञान न होने के कारण पूज्य होते हुए भी इन सबको किस प्रकार प्रणाम करूँ? (सोचकर) अच्छा, 'यह प्रणाम करने की रीति निर्दोष है' ऐसा गुरुजनों से सुना जाता है। (विनयपूर्वक समीप जाकर प्रकाशरूप से) यह लव सिर झुकाकर पूज्यानुक्रम से आप लोगों को प्रणाम करता है।

टिप्पणी – अविज्ञातवयःक्रमौचित्यात्–वयश्च क्रमश्च इति वयःक्रमौ द्वन्द्वसमासः, तयोः औचित्यम् ष.त., विज्ञातं च तद्वयःक्रमौचित्यं विज्ञातवयःक्रमौचित्यं कर्म.स., तस्य अभावः अव्य.स. अविज्ञातवयःक्रमौचित्यं, तस्मात्। प्रणामपर्यायः = पर्याय से प्रणाम अर्थात् जो जैसे पूज्य हैं, उसके अनुसार अभिवादन। इससे 'सभायां प्रत्येकं न नमस्कुर्यात्' इस गौतम मुनि के वचन का भी निर्वाह हो जाता है।

अरुन्धतीजनकौ – कल्याणिन्। आयुष्मान् भूयाः।

अरुन्धती और जनक – भद्र! दीर्घायु होवो।

कौशल्या – जात! चिरं जीव।

कौशल्या – वस्त! चिरजीवी होओ।

अरुन्धती – एहि वत्स! (लवमुत्सङ्गे गृहीत्वा आत्मगतम्) दिष्ट्या न केवलमुत्सङ्गश्चिरान्मनोरथोऽपि मे पूरितः।

अरुन्धती – आओ बेटा! (लव को गोद में लेकर अपने मन को) भाग्य से केवल मेरी गोद ही नहीं, चिरकालीन मनोरथ भी पूर्ण हुआ।

कौशल्या – जात! इतोऽपि तावदेहि। अहो! न केवलं दरविस्पष्टकुवलयश्यामलोज्ज्वलेन, देहबन्धनेन, कवलितारविन्दकेसरकषायकण्ठकलहंसघोषानुनादिना स्वरेण च रामभद्रमनुसरति। ननु कठोरकमलगर्भपक्ष्मलशरीरस्पर्शोऽपि तादृश एव। जात! पश्यामि ते मुखपुण्डरीकम्। राजर्षे किं न पश्यसि? निपुणं निरूप्यमाणो वत्साया मे वध्वा मुखचन्द्रेणापि संवदत्येव।

अनुवाद – **कौशल्या** – वत्स! यहाँ भी एक बार आओ। (गोद में लेकर) अहा! यह शिशु किंचित् विकसित नीलकमल के समान श्यामल और निर्मल शरीर की रचना से ही नहीं, प्रत्युत कमल-केसरीक्षण करने के कारण अत्यन्त मधुर स्वरवाले राजहंस के सदृश स्वर से भी रामभद्र का अनुकरण करता है। ओह! पूर्णविकसित कमल के भीतर वाले पत्त की तरह कोमल इसका देहस्पर्श भी रामभद्र के शरीर स्पर्श के समान ही है। वत्स! मैं तुम्हारा मुखकमल देखूँ। (ठुड्डी को उठाकर विशेष रूप से देखकर आँसू और विशेष अभिप्राय के साथ) राजर्षि जी! क्या आप नहीं देख रहे है कि सावधानी से निरीक्षण करने पर यह इसका मुख बहू सीता के मुखचन्द्र से भी मिल रहा है।

जनकः – पश्यामि सखि! पश्यामि।

जनक – देख रहा हूँ, सखि! देख रहा हूँ।

कौशल्या – अहो! उन्मत्तीभूतमिव मे हृदयं कुतोमुखं विलपति।

अनुवाद – कौशल्या-आश्चर्य है कि मेरा हृदय उन्मादग्रस्त की तरह किसी विषय में लगकर विलाप कर रहा है।

जनकः – (निरूप्य)

जनक – (गौर से देखकर)

वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च शिशावस्मिन्नभिव्यज्यते
संवृत्तिः प्रतिबिम्बितेव निखिला सैवाकृतिः सा द्युतिः।
सा वाणी विनयः स एव सहजः पुण्यानुभावोऽप्यसौ
हा हा देवि! किमुत्पथैर्मम मनः पारिप्लवं धावति ॥22॥

अन्वय – अस्मिन् शिशौ वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च संवृत्तिः प्रतिबिम्बिता इव अभिव्यज्यते, सा एव निखिला आकृतिः, सा द्युतिः, सा वाणी, स एव सहजो विनयः, असौ पुण्यानुभाव अपि, हा हा देवि! मम मनः पारिप्लवम् (सत्) उत्पथैः किं धावति ॥22॥

अनुवाद – इस शिशु में सीता और राम का सम्बन्ध प्रतिबिम्ब रूप में दिखाई दे रहा है। क्योंकि इसकी वही सीता और राम की-सी आकृति है, वही कान्ति है, वही वाणी है, वही स्वाभाविक विनय है और यह पवित्र प्रभाव भी उन्हीं की तरह है। हाय हाय सीते! मेरा मन क्यों चञ्चल होकर विपरीत पथ पर दौड़ रहा है ॥22॥

टिप्पणी – रघूद्वहस्य = रघुवंश में श्रेष्ठ। रघूणामपत्यानि पुमांसः रघवः, रघुशब्दात् 'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्' इति सूत्रेण अञ्प्रत्ययः, 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्' इतिसूत्रेण अञो लुक् बहुत्वञ्च। उत्पथैः-उच्छृङ्खलाः पन्थानः इति विग्रहे '**ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे**' इति सूत्रेण समासान्तः अप्रत्ययः।

पारिप्लवम्–परितः प्लवते इति परि प्लु + अच् कर्तरि परिप्लवम्, तदेव पारिप्लवम् प्रज्ञाद्यण् स्वार्थे। इस पद्य में अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता और पर्यायोक्ति अलंकार हैं। इनकी स्थिति परस्पर सापेक्ष होने से संकर अलंकार हो जाता है। यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥22 ॥

कौशल्या – जात! अस्ति ते माता? स्मरसि वा तातम्?

कौशल्या – वत्स! तुम्हारी माँ है? अथवा पिता का स्मरण करते हो?

लवः – नहि।

लव – नहीं।

कौशल्या – ततः कस्य त्वम्?

कौशल्या – तब तुम किसके संरक्षण में हो?

लवः – भगवतः सुगृहीतनामधेयस्य वाल्मीकेः।

लव – सुगृहीत नाम वाले अर्थात् प्रातःस्मरणीय भगवान् वाल्मीकि के।

कौशल्या – अयि जात! कथयितव्यं कथय।

कौशल्या – अरे बेटा! बताने योग्य बातें बताओ अर्थात् मैं जो बातें पूछती हूँ, वह ठीक–ठीक बताओ।

लवः – एतावदेव जानामि।

लव – इतना ही मैं जानता हूँ। अर्थात् भगवान् वाल्मीकि के अतिरिक्त माता–पिता के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता हूँ।

(नेपथ्ये = नेपथ्य में)

भो भोः सैनिकाः! एष खलु कुमारश्चन्द्रकेतुराज्ञापयति–'न केनचिदाश्रमाभ्यर्णभूमय आक्रमितव्या' इति।

अनुवाद – हे सैनिकों! ये कुमार चन्द्रकेतु आज्ञा देते हैं कि तपोवन के निकटवर्ती प्रदेशों में कोई आक्रमण न करे अर्थात् किसी प्रकार की हानि न पहुँचाए।

अरुन्धतीजनकौ – अये! मेध्याश्वरक्षाप्रसङ्गादुपागतो वत्सश्चन्द्रकेतुर्द्रष्टव्य इत्याहो सुदिवसः।

अरुन्धती और जनक – अहा! यज्ञिय अश्व की रक्षा के लिए आये हुए वत्स चन्द्रकेतु को देखेंगे, अतः आज शोभन दिन है।

कौशल्या – वत्सलक्ष्मणस्य पुत्रकः आज्ञापयतीत्यमृतबिन्दुसुन्दराण्यक्षराणि श्रूयन्ते।

कौशल्या – 'वत्स लक्ष्मण का पुत्र आदेश देता है' ये अक्षर अमृतबिन्दु के समान सुन्दर सुनाई दे रहे हैं।

टिप्पणी – अमृतबिन्दुसुन्दराणि–अमृतस्य बिन्दवः अमृतबिन्दवः त इव सुन्दराणि अमृतबिन्दु-सुन्दराणि।

लवः – आर्य! क एष चन्द्रकेतुर्नाम?

लव – आर्य! ये चन्द्रकेतु कौन हैं?

जनकः – जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी?

जनक – दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण को जानते हो?

टिप्पणी – दाशरथी–दशरथस्यापत्यं पुमान् दाशरथिः, दशरथ + इञ्, दाशरथिशब्दस्य द्वितीयाद्विवचने दाशरथी इति।

लवः – एतावेव रामायणकथापुरुषौ?

लव – ये ही दोनों रामायण-कथा के प्रधान पात्र हैं?

जनकः – अथ किम्?

जनक – और क्या?

लवः – तत् कथं न जानामि?

लव – तब क्यों नहीं जानता हूँ?

जनकः – तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतुः।

जनक – उन लक्ष्मण का पुत्र यह चन्द्रकेतु है।

लवः – ऊर्मिलार्यायाः पुत्रस्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्रः।

लव – तब ये आर्या ऊर्मिला के पुत्र और राजर्षि जनक के दौहित्र हैं।

अरुन्धती – आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन।

अरुन्धती – वत्स ने रामायण की कथा में अपनी प्रवीणता दिखाई है।

जनकः – (विचिन्त्य) यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञस्तद् ब्रूहि तावत्पश्यामस्तेषां दशरथस्य पुत्राणां कियन्ति किन्नामधेयान्यपत्यानि केषु दारेषु प्रस्तुतानि?

अनुवाद – जनक – (विचारकर) यदि तुम रामायण की कथा के ऐसे जानकार हो तो हम तुम्हारी विज्ञता जानना चाहते हैं। बताओ–'दशरथ के उन पुत्रों की किस-किस पत्नी से किस-किस नाम वाले कितने पुत्र उत्पन्न हुए हैं?'

लवः – नायं कथाविभागोऽस्माभिरन्येन वा श्रुतपूर्वः।

लव – कथा के इस भाग को हमने या अन्य किसी ने नहीं सुना है।

जनकः – किं न प्रणीतः कविना?

जनक – क्या कवि ने इसकी रचना नहीं की है?

लवः – प्रणीतः, न तु प्रकाशितः। तस्यैव कोऽप्येकदेशः प्रबन्धान्तरेण रसवानभिनेयार्थः कृतः। तं च स्वहस्तलिखितं मुनिर्भगवान् व्यसृजद्भगवतो भरतस्य तौर्यत्रिकसूत्रधारस्य।

अनुवाद – लव – रचना की है, किन्तु प्रकाशित नहीं किया है। उसी के एक भाग को अन्य प्रबन्ध के साथ मिलाकर सरस एवम् अभिनय के उपयुक्त बनाया है। भगवान् वाल्मीकि ने उसको अपने हाथ से लिखकर नृत्य, गीत और वाद्य के प्रयोगकर्ता भगवान् भरत के पास भेजा है।

टिप्पणी – तौर्यत्रिक = नृत्य, गीत और वाद्य–ये तीनों! 'तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्' इत्यमरः। तूर्ये मुरजादि तत्र भवं तौर्यम्, तौर्योपलक्षितं त्रिकमिति तौर्यत्रिकम्।

जनकः – किमर्थम्?

जनक – किसलिए?

लवः – स किल भगवान् भरतस्तमप्सरोभिः प्रयोजयिष्यतीति।

लव – वे भगवान् भरत अप्सराओं के द्वारा उस भाग का अभिनय करायेंगे।

जनकः – सर्वमिदमाकूतकरमस्माकम्।

जनक – यह सब बातें हमारे लिए उत्कण्ठा पैदा करने वाले हैं।

टिप्पणी – 'आकूततरम्' इस पाठभेद के अनुसार 'अतिशय गूढ़ अभिप्राय युक्त' अर्थ करना चाहिये।

लवः – महती पुनस्तस्मिन् भगवतो वाल्मीकेरास्था। ततः केषाञ्चिदन्तेवासिनां हस्तेन तत् पुस्तकं भरताश्रमं प्रति प्रेषितम्। तेषामनुयात्रिकश्चापपाणिः प्रमादच्छेदनार्थमस्मद्भ्राता प्रेषितः।

अनुवाद – लव – उस भाग में भगवान् वाल्मीकि की बड़ी आस्था है। अतः उन्होंने वह पुस्तक कई छात्रों के द्वारा भरतमुनि के आश्रम में भेजी है और प्रमाद-निवारण अर्थात् सुरक्षा के लिए हाथ में धनुष धारण किये हुए मेरे भाई को उनका अनुगामी बनाकर भेजा है।

टिप्पणी – अनुयात्रिकः = अनुयायी। अनु पश्चात् यात्रा प्रयाणं प्रयोजनमस्य इति विग्रहे अनुयात्रा + ठञ् –इक। चापपाणिः = हाथ में धनुष लिये हुए। पाणौ चापं यस्य इति विग्रहे बहुव्रीहिसमासः, 'प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यौ' इत्यनेन चापपदस्य पूर्वप्रयोगः।

कौशल्या – भ्रातापि तेऽस्ति?

कौशल्या – तुम्हारा भाई भी है?

लवः – अस्त्यार्यः कुशो नाम।

लव – कुश नामक पूजनीय भ्राता हैं।

कौशल्या – ज्येष्ठ इति भणितं भवति।

कौशल्या – तो वे ज्येष्ठ भ्राता हैं?

लवः – एवमेतत्। प्रसवानुक्रमेण स किल ज्यायान्।

लव – जी हाँ, उत्पत्ति के क्रम से वे ज्येष्ठ हैं।

जनकः – किं यमावायुष्मन्तौ?

जनक – क्या तुम दोनों यमज जुड़वे हो?

लव – अथ किम्?

लव – और क्या?

जनकः – वत्स! कथय कथाप्रपञ्चस्य कियान् पर्यन्तः?

जनक – कथा के विस्तार की सीमा कहाँ तक है अर्थात् कथा की परिसमाप्ति कहाँ होती है?

लवः – अलीकपौरापवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवीं देवयजनसम्भवां सीतामासन्नप्रसववेदना-मेकाकिनीमरण्ये लक्ष्मणः परित्यज्य प्रतिनिवृत्त इति।

अनुवाद – लव – जहाँ पुरवासियों के असत्य अपवाद से उद्विग्न राजा द्वारा त्यागी हुई असहाय एवं प्रसव वेदना से पीड़ित सीता देवी को, जिनकी उत्पत्ति यज्ञ-भूमि से हुई थी, वन में छोड़कर लक्ष्मण लौट गये हैं वहीं कथा का अवसान हो जाता है।

कौशल्या – हा वत्से मुग्धचन्द्रमुखि! क इदानीं त शरीरकुसुमस्य झटिति दैवदुर्विलासपरिणाम एकाकिन्या निपतितः?

अनुवाद – कौशल्या – हाय सुन्दर चन्द्र के समान मुँह वाली पुत्री! असहाय अवस्था में तुम्हारे पुष्प सदृश शरीर के लिए सहसा कैसा भाग्य की दुश्चेष्टा का परिणाम उपस्थित हो गया?

जनकः – हा वत्से!

जनक – हाय पुत्री!

नूनं त्वया परिभवञ्च वनञ्च घोरं
ताञ्च व्यथां प्रसवकालकृतामवाप्य।
क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु
सन्त्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽहम्॥23॥

अन्वय – परिभवं च घोरं वनं च, प्रसवकालकृतां तां व्यथां च अवाप्य परितः क्रव्याद्गणेषु परिवारयत्सु सन्त्रस्तया त्वया अहं शरणम् इति नूनम् असकृत् स्मृतः॥23॥

अनुवाद – (निर्वासनजन्य) तिरस्कार, भयानक वन और प्रसवकाल की वेदना के साथ-साथ मांसभक्षी हिंसक जन्तुओं द्वारा चारों ओर से घिर जाने पर अत्यन्त भयभीत होकर तुमने मुझे रक्षक जानकर निश्चय ही बार-बार स्मरण किया होगा॥23॥

टिप्पणी – क्रव्यात् = मांसभक्षी जीव। शरणम् = रक्षक। 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। यह बात लोक में प्रसिद्ध है कि विपन्नावस्था में रक्षा हेतु मनुष्य माँ-बाप का नाम लेता है। अतः जनक जी ने अनुमान किया कि सीता ने उस अवस्था में मेरा स्मरण अवश्य किया होगा। इस पद्य में तुल्ययोगिता अलंकार है। यह वसन्ततिलका छन्द है॥23॥

लवः – आर्ये! कावेतौ?

लव – आर्ये! ये दोनों कौन हैं?

अरुन्धती – इयं कौशल्या, अयं जनकः। (लवः सबहुमानखेद कौतुकं पश्यति।)

अरुन्धती – ये कौशल्या हैं और ये जनक हैं (लव विशेष आदर, खेद तथा कुतूहल के साथ देखने लगता है।)

जनकः – अहो! निर्दयता दुरात्मनां पौराणाम्, अहो! रामभद्रस्य क्षिप्रकारिता!!

जनक – ओह! दुष्टात्मा पुरवासियों की ऐसी निर्दयता! ओह! रामभद्र की इतनी शीघ्रकारिता!!

एतद्वैशसघोरवज्रपतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः
क्रोधस्य ज्वलितुं झटित्यवसरश्चापेन शापेन वा।

अन्वय – एतद्वैशसघोरवज्रपतनं शश्वत् उत्पश्यतो मम क्रोधस्य चापेन शापेन वा झटिति ज्वलितुम् अवसरः।

अनुवाद – इस निर्वासन द्वारा सीता की हिंसा रूप भीषण वज्रपात का चिन्तन करते हुए मेरे क्रोध रूप अग्नि के धनुष द्वारा अथवा शाप द्वारा शीघ्र प्रज्वलित होने का समय उपस्थित है।

टिप्पणी – वैशस-विशसति हिनस्ति इति वि शस् + अच् कर्तरि विशसः, तस्य कर्म इति विशस + अण् वैशसम्। **ज्वलितुम्** – यहां 'कालसमयवेलासु तुमुन्' से तुमुन् प्रत्यय हुआ। इस पद्य में निरङ्गरूपक अलंकार है।

कौशल्या – (समयकम्पम्) भगवति! परित्रायताम्, प्रसादय कुपितं राजर्षिम्।

कौशल्या – (भय और कम्पन के साथ) भगवति! रक्षा कीजिये, क्रुद्ध राजर्षि को प्रसन्न कीजिये।

लवः – एतद्धि परिभूतानां पायश्चित्तं मनस्विनाम्।

अन्वय – परिभूतानां मनस्विनां हि एतत् प्रायश्चितम्।

अनुवाद – **लव** – अपमानित मनस्वी व्यक्तियों का यह धनुष द्वारा अथवा शाप द्वारा बदला चुकाना निश्चित रूप से प्रायश्चित्त है।

अरुन्धती – राजन्नपत्यं रामस्ते पाल्याश्च कृपणाः प्रजाः ॥24॥

अन्वय – राजन्! रामः ते अपत्यं कृपणाः प्रजाश्च पाल्याः ॥24॥

अनुवाद – अरुन्धती – राजन्! रामभद्र आपकी सन्तान हैं और दीन प्रजायें पालन करने योग्य हैं॥24॥

टिप्पणी – इस श्लोक में अप्रस्तुत प्रशंसा, निरङ्करूपक तथा पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार हैं। इनकी स्थिति परस्पर सापेक्ष होने से संकर अलंकार हो जाता है॥24॥

जनकः–

शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं तत्पुत्रभाण्डं हि मे
भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणश्च पौरौ जनः ॥25॥

अन्वय – वा रघुनन्दने तत् उभयं शान्तं हि तत् मे पुत्रभाण्डं, पौरो जनश्च भूयिष्ठद्विजबाल-वृद्धविकलस्त्रैणः ॥25॥

अनुवाद – अथवा रामभद्र के प्रति वे दोनों धनुष धारण करना और शाप देना निवृत्त हों; क्योंकि वे मेरे पुत्ररूप मूलधन हैं और पुरवासी लोगों में बहुत से ब्राह्मण, बालक, वृद्ध, अपंग और स्त्रियाँ हैं॥25॥

टिप्पणी – पुत्रभाण्डम् = पुत्रधन। 'भाण्डं मूलवणिग्धने' इति विश्वः। भूयिष्ठ–अतिशयेन बहवः इति बहु + इष्ठन् = भूयिष्ठाः। इस पद्य में पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है। यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है॥25॥

(प्रविश्य सम्भ्रान्ताः) (हड़बड़ाहट के साथ आकर)

वटवः – कुमार! कुमार!!! अश्वोऽश्व इति कोऽपि भूतविशेषो जनपदेष्वनुश्रूयते, सोऽयमधुनाऽस्माभिः प्रत्यक्षीकतः।

अनुवाद – विप्रबालकगण–कुमार! कुमार!!! गाँवों में जो घोड़ा-घोड़ा यह अदृष्टपूर्व प्राणिविशेष अर्थात् घोड़ा नामक जानवर सुना जाता है, उसे अभी-अभी हम लोगों ने देखा है।

टिप्पणी – कुमार, कुमार–यहाँ आश्चर्य एवं हर्ष प्रकट करने के लिए दो बार उच्चारण किया गया है। तपोवन के बालकों ने कभी घोड़ा देखा नहीं था। अतः रामचन्द्रजी के अश्वमेधीय अश्व को एकाएक तपोवन में आये देखकर उन्हें बड़ा कुतूहल हुआ। उन्होंने लव को घोड़ा दिखाने के लिए 'कुमार, कुमार' कहकर सम्बोधित किया। जनपदेषु = देश, देशविशेष का ग्राम-भाग। आचार्य पैठीनसि ने घोड़े को ग्राम्य पशु माना है–'गौरविरजोऽश्वोऽश्वतरो गर्दभो मनुष्यश्चेति सप्त ग्राम्याः पशवः।' प्रत्यक्षीकृतः–अक्ष्णः प्रति इति प्रति-अक्षि अव्ययीभाव समास टच् समासान्त प्रत्यक्षम्, तत् अस्ति अस्य इति प्रत्यक्ष + अच् मत्वर्थे प्रत्यक्षः, अप्रत्यक्षः प्रत्यक्षः सम्पद्यमानः कृतः इति प्रत्यक्ष + च्वि कृ + क्त कर्मणि प्रत्यक्षीकृतः।

लवः – अश्वोऽश्व इति नाम पशुसमाम्नाये सांग्रामिके च पठ्यते, तत् ब्रूत कीदृशः?

लव – पशुशास्त्र और युद्धशास्त्र में 'अश्व' 'अश्व' इस रूप का पाठ मिलता है। इसलिए बताओ, वह कैसा है?

टिप्पणी – पशुसमाम्नाये = पशु नामक संग्रहशास्त्र में। सम्यक् आम्नाय्यते इति समाम्नायः पशूनां समाम्नायः, तस्मिन्। सांग्रामिके = रणकौशलबोधक शास्त्र, धनुर्वेद में। संग्रामम् अर्हति इति संग्राम + ठञ्–इक।

वटवः – अये, श्रूयताम्–

विप्रबालकगण – अजी, सुनो–

पश्चात् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्त्रं
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ॥26॥

अन्वय – पश्चात् विपुलं पुच्छं वहति, तच्च अजस्रं धूनोति, स दीर्घग्रीवो भवति, तस्य चत्वार एव खुराः, शष्पाणि अत्ति, आम्रमात्रान् शकृत्पिण्डकान प्रकिरति, व्याख्यानैः किं? स पुनः दूरं व्रजति, एहि एहि, यामः ॥26॥

अनुवाद – वह घोड़ा देह की पिछाड़ी से विशाल पुच्छ धारण किये हुए हैं और उसे सतत हिलाता रहता है। उसकी ग्रीवा लम्बी है और उसके चार ही खुर हैं। वह कोमल घास खाता है और आम के फल के बराबर लीद करता है। विशेष कहने से क्या? वह फिर दूर जा रहा है। आओ-आओ, हम जाते हैं॥26॥

टिप्पणी – अजस्त्रम् – न जस्यति मुञ्चति इति न जस् + र कर्तरि अजस्रम् तत् यथा तथा। आम्रमात्रान्- आम्रं मात्रा परिमाणमेषाम् आम्रमात्राः, तान्। इस पद्य में अश्वरूप एक कर्तृकारक के साथ 'वहति' आदि अनेक क्रियाओं का सम्बन्ध होने से दीपक अलंकार, आम्रफल के साथ पुरीष खंडों का साम्य प्रतिपादन करने से उपमा अलंकार और अश्व के स्वरूप का हू-बहू वर्णन करने से स्वभावोक्ति अलंकार हैं। फिर इन तीनों की स्थिति परस्पर सापेक्ष होने से संकर अलंकार हो जाता है। यह मन्दाक्रान्ता छन्द है॥26॥

(इत्यजिने हस्तयोश्चाकर्षन्ति।)

(यह कहकर वे लव के मृगचर्म और दोनों हाथ पकड़कर खींचने लगते हैं)

लवः – (सकौतुकोपरोधविनयम्) आर्याः! पश्यत। एभिर्नीतोऽस्मि। (इति त्वरितं परिक्रामति।)

लव – (घोड़ा देखने का) कुतूहल (साथियों का) (अत्याग्रह और नम्रता के साथ) आर्यवृन्द! देखें। ये लोग मुझे ले जा रहे हैं। (यह कहकर तुरन्त चल देता है।)

अरुन्धतीजनकौ – महत्कौतुकं वत्सस्य।

अरुन्धती और जनक – वत्स को बड़ा कुतूहल है।

टिप्पणी – 'पूरयतु कुतूहलं वत्सः' इस पाठ-भेद का अर्थ होगा 'वत्स अपनी उत्सुकता पूर्ण करें'।

कौशल्या – आरण्यगर्भरूपालापैर्यूयं तोषिता वयं च। भगवति! जानामि तं पश्यन्ती वञ्चितेव। तस्मादितोऽन्यतो भूत्वा प्रेक्षामहे तावत्पलायमानं दीर्घायुषम्।

अनुवाद – कौशल्या – अरण्य में उत्पन्न शिशुओं के रूप और सम्भाषणों से हम और आप सब लोग प्रमुदित हुए। भगवति! मैं समझती हूँ कि उसको देखती हुई मैं ठगी-सी गयी। इसलिए यहाँ से अन्यत्र अवस्थित होकर हम दौड़ते हुए चिरञ्जीव को देखें।

टिप्पणी – 'भअवदि! जाणामि, एदं अणालोअअन्ती ण जीआमि विअ, (भगवति! जानामि, एतमनालोकयन्ती न जीवामीव,) इस पाठभेद का अर्थ होगा-'भगवति! मै। समझती हूँ कि उसको न देखती हुई मैं मानो जीवित नहीं रह पाऊँगी।'

अरुन्धती – अतिजवेन दूरमतिक्रान्तः स चपलः कथं दृश्यते?

अरुन्धती – अत्यन्त वेग से दूर चला गया वह चंचल बालक कैसे दिखाई देगा?

कञ्चुकी – (प्रविश्य) भगवान् वाल्मीकिराह-'ज्ञातव्यमेतदवसरे भवद्भि' रिति।

कञ्चुकी – (प्रवेश कर) भगवान् वाल्मीकि ने कहा-'आप लोगों को यह लव का समाचार यथासमय ज्ञात हो जाएगा'।

जनकः – अतिगम्भीरमेतत् किमपि। भगवत्यरुन्धति! सखि कौशल्ये! आर्य गृष्टे! स्वयमेव गत्वा भगवन्तं प्राचेतसं पश्यामः।

जनक – यह कोई अत्यन्त गम्भीर बात है। भगवति अरुन्धति! सखि कौशल्ये! आर्य कञ्चुकिन्! स्वयं चलकर हम लोग वाल्मीकि का दर्शन करें।

(इति निष्क्रान्तो वृद्धवर्गः।) (इसके बाद वृद्धगण चले गये।)

(प्रविश्य) (प्रवेश कर)

वटवः – पश्यतु कुमारस्तावदाश्चर्यम्।

विप्रबालकगण – कुमार! यह आश्चर्य अर्थात् अद्भुत प्राणी को देखो।

लवः – दृष्टमवगतं च। नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्वः।

लव – देखा और जान भी लिया। निश्चय ही यह घोड़ा अश्वमेध का है।

टिप्पणी – आश्वमेधिकः = अश्वमेधयज्ञ का। अश्वमेधः प्रयोजनम् अस्य इति विग्रहे अश्वमेध + ठञ्–इक।

वटवः – कथं ज्ञायते?

विप्रबालकगण – कैसे जानते हो?

लवः – ननु मूर्खाः! पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्। किं न पश्यथ प्रत्येकं शतसंख्याः कवचिनो दण्डिनो निषङ्गिणश्च रक्षितारः। तत्प्रायमेवान्यदपि दृश्यते। यदि च विप्रत्ययस्तत्पृच्छत।

अनुवाद – लव – अरे मूर्खों! तुम लोगों ने भी तो अश्वमेध–प्रकरण वाला भाग पढ़ा ही है। क्या देख नहीं रहे हो कि प्रत्येक दिशा में अर्थात् घोड़े की चारों ओर सैकड़ों कवचधारी, दण्डधारी और तरकश वाले रक्षकगण नियुक्त हैं। ऐसे लोगों की बहुलता से युक्त सेना भी तो दिखाई दे रही है। यदि विश्वास न होता हो तो जाकर पूछ लो।

वटवः – भो भोः, किम्प्रयोजनोऽयमश्वः परिवृतः पर्यटति?

विप्रबालकगण – हे! हे! रक्षकों से घिरा हुआ यह घोड़ा किस उद्देश्य से घूम रहा है?

लवः – (सस्पृहमात्मगतम्) अश्वमेध इति नाम विश्वविजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्रपरिभावी महानुत्कर्षनिकषः।

अनुवाद – लव – (स्पृहा के साथ मन में) विश्वविजेता क्षत्रियों के तेज का सूचक तथा सकल क्षत्रियों के पराभव का बोधक अश्वमेध यज्ञ महान् उत्कर्ष की कसौटी है।

(नेपथ्ये) (नेपथ्य में)

योऽयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणा।
सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः ।।27 ।।

अन्वय – अयं यः अश्वः, इयं सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषःपताका अथवा वीरघोषणा ।।27 ।।

अनुवाद – यह जो घोड़ा है, सो सात भुवनों में अद्वितीय वीर एवं रावणवंश के शत्रु रामचन्द्र जी की विजय–पताका अथवा वीरत्व की घोषणा है ।।27 ।।

टिप्पणी – इयम् – यह विधेयभूत पताका अथवा वीरघोषणा की प्रधानता के कारण स्त्रीलिंग है, अन्यथा अश्व के अनुसार पुंल्लिंग होना चाहिये था। सप्तलोकैकवीरस्य–सप्तावयवाश्च ते लोकाश्च सप्तलोकाः तेषु एकवीरः तस्य; सप्तलोक मे मध्यमपदलोपी समास करना चाहिये, अन्यथा सप्तलोकी हो

जायगा। सात लोक ये हैं–'भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनश्च तप एव च। सत्यलोकश्च सप्तैते लोकास्तु परिकीर्तिताः॥' अग्निपुराण। एकः मुख्यः वीरः एकवीरः तस्य। यद्यपि व्याकरण के अनुसार 'वीरैकः' प्रयोग होना चाहिये, किन्तु 'निरङ्कुशाः कवयः' के अनुसार कोई दोष नहीं है। दशकण्ठकुलद्विषः– दशकण्ठकुल द्विष् + क्विप् + कर्तरि, तस्य। इस श्लोक में घोड़े के विषय में किये गये बालकों के प्रश्न का उत्तर हो जाता है। इसमें अतिशयोक्ति अलंकार है॥27॥

लवः – (सगर्वम्) अहो! सन्दीपनान्यक्षराणि।

लव – (गर्व के साथ) अरे! ये जो यह अश्व इत्यादि अक्षर (वाक्य) तो उत्तजित करने वाले हैं।

वटवः – किमुच्यते? प्राज्ञः खलु कुमारः।

विप्रबालकगण – क्या कहते हैं? कुमार तो पंडित हैं।

लवः – भो भोः–तत् किमक्षत्रिया पृथिवी? यदेवमुद्घोष्यते।

लव – ओ रक्षकों! तो क्या पृथ्वी क्षत्रिय–विहीन हो गयी है, जो इस प्रकार घोषणा कर रहे हो?

(नेपथ्ये) (नेपथ्य में)

रे रे! महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियः?

अरे! महाराज रामचन्द्र के प्रति क्षत्रिय कहाँ? अर्थात् उनका विरोधी कोई क्षत्रिय नहीं है।

लवः – धिग् जाल्मान्।

लव – मूर्खों को धिक्कार है।

टिप्पणी – जाल्मान् = अविवेकियों को। 'जाल्मोऽसमीक्ष्यकारी स्यात्' इत्यमरः।

यदि नो सन्ति सन्त्येव, केयमद्य विभीषिका?
किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः॥28॥

अन्वय – नो सन्ति यदि सन्ति एव अद्य इयं का विभीषिका? अधुना एभिः उक्तैः किम्? वः तां पताकां हरामि॥28॥

अनुवाद – यदि कहो कि क्षत्रिय नहीं हैं तो हैं ही अर्थात् तुम्हारे कहने से क्षत्रियों का अभाव नहीं हो जाता, वे अवश्य हैं। आज यह विभीषिका कैसी है, अर्थात् तुम डर क्या दिखला रहे हो? अभी इन बातों से क्या प्रयोजन? मैं तुम्हारी उस पताका अर्थात् विजयध्वजरूप अश्व का हरण करता हूँ।28॥

टिप्पणी – विभीषिका – वि भी + णिच्, षुक् + ण्वुल् भावे धात्वर्थ–निर्देशे। यहाँ 'यदि तुममें शक्ति हो तो इस पताका की रक्षा करो' इस अर्थान्तर का आगम हो जाने से अर्थापत्ति अलंकार है॥28॥

हे वटवः! परिवृत्य लोष्टैरभिघ्नन्त उपनयतैनमश्वम्। एष रोहितानां मध्येचरो भवतु।

अनुवाद – हे विप्रकुमारो! घेरकर ढेलों से मार–मारकर इस अश्व को आश्रम में ले जाओ। यह हरिणों के बीच में विचरण करे।

(प्रविश्य सक्रोधः) (क्रोध के साथ प्रवेश कर)

पुरुषः – धिक् चपल! किमुक्तवानसि? तीक्ष्णतराह्यायुधश्रेणयः शिशोरपि दृप्तां वाचं न सहन्ते। राजपुत्रश्चन्द्रकेतुर्दुर्दान्तः, सोऽप्यपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयो न यावदायाति, तावत्त्वरितमनेन तरुगहनेनापसर्पत।

अनुवाद – पुरुष – चञ्चल! छिः तुझे धिक्कार है! तूने क्या कहा? अत्यन्त तीक्ष्ण स्वभाव वाले आयुधधारी लोग शिशु की भी गर्व से भरी हुई वाणी को सहन नहीं करते हैं। प्रचंड विक्रम वाले राजकुमार चन्द्रकेतु, जो आकृष्टचित्त होकर अपूर्व वन का अवलोकन कर रहे हैं, जब तक नहीं आ जाते हैं तब तक तुम लोग शीघ्र इस सघन वनपथ से होकर भाग जाओ।

बटवः – कुमार! कृतं कृतमश्वेन। तर्जयन्ति विस्फारितशरासनाः कुमारमायुधीयश्रेणयः। दूरे चाश्रमपदम्। इतस्तदेहि। हरिणप्लुतैः पलायामहे।

अनुवाद – विप्रबालकगण – कुमार! घोड़ा हमें नहीं चाहिये, नहीं चाहिये। धनुष ताने हुए या चमकाते हुए अस्त्रधारियों के समूह कुमार की भर्त्सना कर रहे हैं। आश्रमस्थान भी दूर हैं। इसलिए आओ, हम लोग हरिण की तरह छलाँग मारते हुए भाग चलें।

टिप्पणी – आयुधीयश्रेणयः = अस्शस्त्रधारियों के समूह। आयुधेन चरन्ति ये ते आयुधीयाः, आयुधशब्दात् 'आयुधाच्छ च' इतिसूत्रेण छप्रत्ययः तस्य ईयादेशः, तेषां श्रेणयः।

लवः – (स्मितं कृत्वा) किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि? (इति धनुरारोपयन्)

लव – (मुस्काकर) क्या शस्त्र चमक रहे हैं? (यह कहकर धनुष पर डोरी चढ़ाते हुए)

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र-
मुद्भूरिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र -
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम्॥29॥

अन्वय – ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रम् उद्भूरिघोरघनघर्घरघोषम् एतत् चापं ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बि विकटोदरम् अस्तु॥29॥

अनुवाद – जीभ के समान मौर्वी (धनुष की डोरी)स` परिवेष्टित, दो विशाल दाँतों की तरह भयंकर दोनों अग्रभागों से युक्त और असंख्य, भयानक एवं निरन्तर घर्घर शब्द वाला यह धनुष (प्रलयकाल में जगत् को) कवलित करने या ग्रास बनाने में प्रवत्त तथा हास्ययुक्त यमराज के मुख रूप यन्त्र की जम्हाई का अनुकरण करने वाला और अतएव भयंकर मध्यभाग वाला हो जाय॥29॥

टिप्पणी – वलयिता – वलयेन योजिता इति वलय + णिच् (नामधातु) + क्त कर्मणि। इस पद्य में पाँच उपमा अलंकार हैं जिनकी स्थिति परस्पर सापेक्ष होने से संकर अलांर हो जाता है। यद्यपि इस श्लोक में संयुक्तादि वर्णों के कर्णकटु होने से दुःश्रवत्व दोष कहा जा सकता है, किन्तु वीर रस के अनुकूल होने से वह दूषण भी भूषण हो जाता है। जैसा कि दर्पणकार ने कहा है–'वक्तरि क्रोधसंयुक्ते वाच्येऽत्यन्त समृद्धते। रौद्रादौ तु रसेऽत्यन्तदुःश्रवत्वं गुणो भवेत्॥' यहाँ वीर रस है, ओजगुण है और गौड़ी रीति है। यह वसन्ततिलका छन्द है॥29॥

(इति यथोचितं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे।)

(अनन्तर यथोचित रीति से घूमकर सभी चले जाते हैं।)

इति महाकविभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते कौशल्याजनकयोगो नाम चतुर्थोऽङ्कः॥4॥

3.4 पारिभाषिक शब्दावली

''**पुटपाक**'' - शब्द यहाँ आयुर्वेद का पारिभाषिक शब्द है। वैद्य लोग एक मिट्टी के पात्र में औषधि रख कर दसरे पात्र से ढक देते हैं। उसके बाद उस मिट्टी का लेप कर आँच में रख देते हैं, जिससे अन्दर ही अन्दर औषधि खदक-खदक कर पक जाती है। वैधक की इस प्रक्रिया को ''पुटपाक'' कहा जाता है।

रसातलम् - रसायाः पृथिव्यास्तलम्। तल सात हैं

कलभः- यद्यपि 'कलभः' करिशावकः (अमर.) - इस कोष के अनुसार 'कलभ' शब्द का अर्थ ही हाथी का बच्चा है

ऐक्ष्वाकः- इक्ष्वाकौः गोत्रापत्यं पुमान् ऐक्ष्वाकः। अर्थात जो इक्ष्वाकु कुल में पैदा हुआ है वह राम श्रीराम के वचन में दो गुण है - 'स्नेहार्द्रता' और 'शोकदारुणता।' उन्हीं के आधार पर क्रमशः मधु की धारा में 'मधुत्व' और 'सविषता' का प्रतिपादन किया है।

3.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोधगम्य प्रश्न

अधोलिखित श्लोकों का ससन्दर्भ अनुवाद करते हुए तत्सम्बन्धी व्याकरणात्मक टिप्पणी प्रस्तुत कीजिये–

1. आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां
   .....सञ्जीवनौषधिरसो नु हृदि प्रसिक्तः॥ (3-11)
2. तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशाद्...
   ......द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव॥। (3-13)
3. ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः
   ......पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः॥ (3-24)
4. इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा
   .....स्तदद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम्॥ (3-30)
5. हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
   .....विष्वङ्मो स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि॥(3-38)
6. एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्–
   .....नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥ (3-47)
7. त्वं वह्निर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी गङ्गा च यस्या विदु–
   .....तस्यास्त्वद्दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणेऽमृष्यथाः॥(4-5)
8. शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
   .....गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः॥ (4-11)
9. पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्त्रं
   .....किं वाऽऽख्यातर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः॥ (4-26)

3.6 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने उत्तररामचरितम् में करुण रस को अङ्गीरस मानने के तथ्यों पर विचार किया । उत्तररामचरितम् में करुण रस का पात्रों द्वारा सम्यक अभिनय किया गया है । इस इकाई में करूण रस में नायक श्रीराम का सजीव चित्रण दिखाया गया है ।

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास,पं. बलदेव उपाध्याय,शारदा प्रकाशन, वाराणसी, 1995.
2. संस्कृत सुकवि समीक्षा,पं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1963.
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास,प्रो. शिवबालक द्विवेदी, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर, 1988.
4. उत्तररामचरितम्,रिणीश झा, रामनारायण बेनीप्रसाद प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006.
5. उत्तररामचरितम्,'इन्दुमती' कपिलदेवगिरि, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी, 1987.
6. उत्तररामचरितम्, ब्रह्मानन्द शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ, 2008.
7. उत्तररामचरित की शास्त्रीय समीक्षा,सत्यनारायण चौधरी, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1987.

इकाई - 4

उत्तररामचरितम् - पंचम, षष्ठ एवं सप्तम अंक

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य

प्रकृत पञ्चम, षष्ठ एवं सप्तम अङ्कों के अध्ययन से भारतीय संस्कृति की सर्वाङ्गीण उदात्तता एवं उसके वैशिष्ट्य को हृदयङ्गम करके जीवन में आने वाली कठिनाइयों का सहर्ष सामना करते हुए मनुष्य मात्र को अपने कर्तव्य पथ से च्युत न होने की शिक्षा देना ही एकमात्र उद्देश्य है।

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत नाटकों के महनीय स्थान के रेखाङ्कनपूर्वक नाटकों का संक्षिप्त इतिवृत्त प्रस्तुत करते हुए मुख्यरूप से महाकवि भवभूति प्रणीत 'उत्तररामचरितम्' नाटक का नाटकीय वैशिष्ट्य उजागर किया गया है।

4.2 महाकवि श्रीभवभूतिप्रणीतम् उत्तररामचरितम् पञ्चमोऽङ्कः

(नेपथ्ये)

भो भोः सैनिकाः! जातं जातमवलम्बनमस्माकम्।
हे सैनिकों! हम लोगों को सहारा मिल गया।
नन्वेष त्वरितसुमन्त्रनुद्यमानप्रोद्वल्गत्प्रजवितवाजिना रथेन।
उत्खातप्रचलितकोविदारकेतुः श्रुत्वा वः प्रधनमुपैति चन्द्रकेतुः ॥1 ॥

अन्वय – ननु त्वरितसुमन्त्रनुद्यमानप्रोद्वल्गत्प्रजवितवाजिना रथेन उत्खातप्रचलितकोविदारकेतुः एष चन्द्रकेतुः वः प्रधनं श्रुत्वा उपैति ॥1 ॥

अनुवाद – हे सैनिकों! तुम लोगों का युद्ध सुनकर ये चन्द्रकेतु शीघ्रतापूर्वक सुमन्त्र की प्रेरणा से चलते हुए अतिशय वेगशाली घोड़ों वाले रथ से, जिसका ध्वज-दंड लाल कचनार के पेड़ की लकड़ी का बना हुआ है और ऊँची-नीची जमीन में रथ के चलने के कारण विशेष रूप से कम्पायमान है, समीप आ रहे हैं ॥1 ॥

टिप्पणी – त्वरित – त्वरा सञ्जाता अस्य इति त्वरा+इतच् तदस्य सञ्जातं। कोविदार==कचनार। 'कोविदारश्मरिकः कुद्दालो युगपत्रकः।' इत्यमरः। प्रधनम्=युद्ध। 'युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्।'

इत्यमरः। इस पद्य में पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार तथा अन्त्ययमअलंकार है। इन दोनों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यह प्रहर्षिणी छन्द है। इस अंक के प्रारम्भ में इस पद्य की समाप्ति तक का सन्दर्भ चूलिका है। कहा भी है–'नेपथ्यान्तःस्थितैः पात्रैश्चूलिकाऽङ्कस्य सूचनम्॥1॥

(ततः प्रविशति सुमन्त्रसारथिना रथेन धनुष्पाणिः साद्भुतहर्षसम्भ्रमश्चन्द्रकेतुः।)

(तदनन्तर सारथि सुमन्त्र के साथ रथ पर आरूढ़ एवं हाथ में धनुष लिए हुए चन्द्रकेतु आश्चर्य, हर्ष एवं शीघ्रता से प्रवेश करते हैं।)

चन्द्रकेतुः – आर्य सुमन्त्र! पश्य पश्य।

चन्द्रकेतु – आर्य सुमन्त्र! देखिये, देखिये–

किरति कलितकिंचित्कोपरज्यन्मुखश्री–
रविरतगुणगुञ्जत्कोटिना कार्मुकेण।
समरशिरसि चंचत्पंचचूडश्चमूना–
मुपरि शरतुषारं कोऽप्ययं वीरपोतः॥2॥

अन्वय – कलितकिञ्चित्कोपरज्यन्मुखश्रीः चञ्चत्पञ्चचूडः कोऽपि अयं वीरपोतः समरशिरसि अविरतगुणगुञ्जत्कोटिना कार्मुकेण चमूनाम् उपरि शरतुषारं किरति॥2॥

अनुवाद – यह कोई वीर बालक, जिसके मुख की कान्ति कुछ क्रोध करने से लाल हो गई है और पाँचों शिखायें कम्पित हो रही हैं, समराङ्गण में सेनाओं के ऊपर प्रत्यञ्चा में निरन्तर गूँजते हुए दोनों नोक वाले धनुष से हिम की भाँति बाण गिरा रहा है॥2॥

टिप्पणी – पंचचूडः = पाँच शिखाओं से युक्त। 'पञ्चचूडा अङ्गिरसः' इस वचन के अनुसार पहले बटुओं के पाँच शिखायें भी रखी जाती थीं। चमूनाम् = सेनाओं के। 'पृतनाऽनीकिनी चमूः' इत्यमरः। इस पद्य में तुषारों से बाणों की समता प्रतिपादन होने के कारण लुप्तोपमा अलंकार तथा मालिनी छन्द है॥2॥

(साश्चर्यम्) (आश्चर्यपूर्वक)

मुनिजनशिशुरेकः सर्वतः सम्प्रकोपा–
न्नव इव रघुवंशस्याप्रसिद्धः प्ररोहः।
दलितकरिकपोलग्रन्थिटङ्कारघोर –
ज्वलितशरसहस्रः कौतुकं मे करोति॥3॥

अन्वय – रघुवंशस्य नवः अप्रसिद्ध प्ररोहः इव एको मुनिजनशिशुः सम्प्रकोपात् सर्वतः। दलितकरिकपोलग्रन्थिटङ्कारघोरज्वलितशरसहस्रः मे कौतुकं करोति॥3॥

अनुवाद – रघुकुल के नवीन अतएव अप्रसिद्ध अंकुर के समान यह एकाकी मुनिबालक अत्यन्त क्रोध से चारों ओर हाथियों की कपोल–ग्रन्थियों को विदीर्ण करके 'टम्' इस अव्यक्त विदारण–शब्द से भयंकर तथा देदीप्यमान हजारों बाणों द्वारा मेरे कुतूहल को उत्पन्न कर रहा है॥3॥

टिप्पणी – मुनिजनशिशुः = मुनिश्चासौ जनश्च मुनिजनः कर्मधारय, तस्य शिशुः षष्ठीतपुरुष। इस पद्य में उपमा अलंकार और मालिनी छन्द है॥3॥

सुमन्त्रः – आयुष्मन्!

सुमन्त्र – चिरञ्जीव!

अतिशयितसुरासुरप्रभावं शिशुमवलोक्य तथैव तुल्यरूपम्।
कुशिकसुतमखद्विषां प्रमाथे धृतधनुषं रघुनन्दनं स्मरामि ॥4 ॥

अन्वय – तथैव तुल्यरूपम् अतिशयितसुरासुरप्रभावं शिशुम् अवलोक्य कुशिकसुतमखद्विषां प्रमाथे धृतधनुषं रघुनन्दनं स्मरामि ॥4 ॥

अनुवाद – उसी प्रकार तुल्य रूप वाले तथा देव-दानवों के पराक्रम का अतिक्रमण करने वाले इस शिशु को देखकर (मुझे) विश्वामित्र के यज्ञ मं विघ्न डालने वाले राक्षसों का विनाश करने के समय धनुष धारण किये हुए रामभद्र का स्मरण हो रहा है ॥4 ॥

टिप्पणी – इस पद्य में प्रथम चरण में अतिशयोक्ति और द्वितीय चरण में उपमा एवं स्मरण नामक अलंकार हैं। फिर इन तीनों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार हो जाता है। यह पुष्पिताग्रा छन्द है ॥4 ॥

चन्द्रकेतुः – मम त्वेकमुद्दिश्य भूयसामारम्भ इति हृदयमपत्रपते।

चन्द्रकेतु – किन्तु एक को लक्ष्य करके अनेक ने युद्धारम्भ किया है अर्थात् एक मुनिकुमार से हमारे बहुसंख्यक सैनिक युद्ध कर रहे हैं, यह देखकर मेरा हृदय लज्जित हो रहा है।

अयं हि शिशुरेकको समरभारभूरिस्फुरत्-
करालकरकन्दलीकलितशस्त्रजालैर्बलैः ।
कणत्कनककिङ्किणीझणझणायितस्यन्दनै -
रमन्दमददुर्दिनद्विरदडामरैरावृतः ॥5 ॥

अन्वय – समरभारभूरिस्फुरत्करालकरकन्दलीकलितशस्त्रजालैः क्वणत्कनककिंकिणीझण-झणायितस्यन्दनैः अमन्दमददुर्दिनद्विरदडामरैः बलैः अयम् एकको हि शिशुः आवृतः ॥5 ॥

अनुवाद – तुमुल युद्ध में कदली वृक्ष के समान विशाल हाथों में स्थित अत्यन्त चमकीले एवं भयानक अस्त्रशस्त्रों वाली, शब्द करती हुई सोने की छोटी-छोटी घंटियों से झनझनाते हुए रथों वाली और प्रचुर मदजल की वृष्टि करने वाले हाथियों से भयंकर सेनाओं द्वारा यह अकेला ही बालक घिरा हुआ है ॥5 ॥

टिप्पणी – कराल = भयंकर। 'करालो भीषणेऽन्यवत्' इति विश्वः। दुर्दिन = वृष्टि। 'घनान्धकारे वृष्टौ च दुर्दिनं कवयो विदुः।' झणझणायित-झणझणेत्यव्यक्तानुकरणशब्दात् 'अव्यक्तानुकरणाद्'-इत्यनेन डाच्प्रत्ययः ततः 'लोहितादिडाज्भ्यः' इत्यनेन क्यष्प्रत्यय ततः कर्तरि क्तप्रत्ययः। इस पद्य में उपमा अलंकार और पृथ्वी छन्द है ॥5 ॥

सुमन्त्रः – वत्स! एभिः समस्तैरपि नालमस्य, किं पुनर्व्यस्तैः?

सुमन्त्र – वत्स! ये सभी सेनायें सम्मिलित रूप में भी इसके लिए पर्याप्त नहीं हैं, फिर पृथक्-पृथक् रूप में तो कहना ही क्या?

चन्द्रकेतुः – आर्य! त्वर्यतां त्वर्यताम्। अनेन हि महानाश्रितजनप्रभारोऽस्माकमारब्धः। तथाहि-

चन्द्रकेतु – आर्य! शीघ्रता करें। क्योंकि इसने हमारे आश्रित जनों का महान् विध्वंस आरम्भ कर दिया है। देखिये-

आगर्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जरघटानिस्तीर्णकर्णज्वर-
ज्यानिर्घोषममन्ददुन्दुभिरवैराध्मातमुज्जृम्भयन्।
वेल्लद्भैरवरुण्डखण्डनिकरैर्वीरो विधत्ते भुवं
तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणामिव ॥6 ॥

अन्वय – वीरः अमन्ददुन्दुभिरवैः आध्मातम् आगर्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जरघटानिस्तीर्णकर्णज्वर-ज्यानिर्घोषम् उज्जृम्भयन् वेल्लद्भैरवरुण्डखण्डनिकरैः भुवं तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणाम् इव विधत्ते ॥6 ॥

अनुवाद – नगाड़ो की गम्भीर ध्वनि से बढ़ने वाले तथा अत्यधिक गर्जना करते हुए पर्वतीय लताकुंजवर्ती गजसमूह के कानों में पीड़ा पहुँचाने वाले मौर्वी धनुष की डोरी के शब्द को उत्पन्न करता हुआ यह वीर बालक उछलते हुए भयंकर कबन्धों सिर कटे धड़ों तथा मस्तकों के समूह से पृथ्वी को मानो प्यासे यमराज के भयानक मुख के भुक्तशेष पदार्थों से युक्त कर रहा है॥ 6 ॥

टिप्पणी – घटा = हाथियों का झुण्ड। 'गजानां घटना घटा' इत्यमरः। विघस = खाने के बाद हुआ अंश, उच्छिष्ट। 'विघसो यज्ञशेषभोजनशेषयोः' इत्यमरः। वि अद् + अप् 'उपसर्गे अदः' इत्यनेन, ततः 'घञपोश्च' इत्यनेन घसादेशः। इस पद्य में अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा अलंकार हैं। इनकी स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है॥6 ॥

सुमन्त्रः – (स्वगतम्) कथमीदृशेन सह वत्सस्य चन्द्रकेतोर्द्वन्द्वसम्प्रहारमनुजानीमः? (विचिन्त्य) अथवा इक्ष्वाकुकुलवृद्धाः खलु वयम्। प्रत्युपस्थिते रणे का गतिः?

अनुवाद – सुमन्त्र – (मन में) में कैसे इस (अद्भुत पराक्रमी वीर) के साथ वत्स चन्द्रकेतु के द्वन्द्वयुद्ध का अनुमोदन करूँ? (विचारकर) अथवा मैं इक्ष्वाकु-कुल का वृद्ध हूँ। युद्ध छिड़ जाने पर उपाय ही क्या है? अर्थात् इस अनिवार्य द्वन्द्व युद्ध के लिए मुझे अनुमति देनी ही चाहिए।

टिप्पणी – द्वन्द्वसम्प्रहारम् – द्वयोः द्वयोः इति द्वन्द्वम् निपातनात्, सम्प्रहरन्ते अस्मिन् इति सम्–प्र हृ + घञ् अधिकरणे = सम्प्रहारः = युद्धम्, द्वन्द्वं सम्प्रहारः द्वन्द्वसम्प्रहारः सुप्सुपा, तम्।

चन्द्रकेतुः – (सविस्मयलज्जासम्भ्रमम्) हन्त धिक्! अपावृत्तानि सर्वतः सैन्यानि मम।

चन्द्रकेतु – (विस्मय, लज्जा और हडबड़ाहट के साथ) हाय धिक्कार है! चारों तरफ से मेरी सेनायें भाग रही हैं।

सुमन्त्रः – (रथवेगमभिनीय) आयुष्मन्! एष ते वाग्विषयीभूतः स वीरः।

सुमन्त्र – (रथ के वेग का अभिनय करके) आयुष्मन्! अब वह वीर आपके संवाद का विषय हो गया है। अर्थात् निकट आ गया है।

चन्द्रकेतुः – (विस्मृतिमभिनीय) आर्य! किन्नामधेयमाख्यातमाख्यायकैः?

चन्द्रकेतु – (विस्मरण का अभिनय करके) आर्य! संवाददाताओं ने इसका क्या नाम बताया था?

सुमन्त्रः – 'लव' इति।

सुमन्त्र – 'लव'

चन्द्रकेतुः–

भो भो लव! महाबाहो! किमेभिस्तव सैनिकैः।
एषोऽहमेह मामेव तेजस्तेजसि शाम्यतु॥7 ॥

अन्वय – भो भो महाबाहो! लव! एभिः सैनिकैः तव किम्? एषः अहम् (अस्मि), मामेव एहि, तेजः तेजसि शाम्यतु॥7 ॥

अनुवाद – चन्द्रकेतु – हे विशाल भुजा वाले लव! इन सैनिकों से तुम्हें क्या प्रयोजन? तुमसे युद्ध करने के लिए यह मैं हूँ, मेरे ही निकट आओ। तेज का तेज में लीन होना अच्छा॥7 ॥

सुमन्त्रः – कुमार! पश्य पश्य–

सुमन्त्र – कुमार! देखिये, देखिये–

विनिवर्तित एष वीरपोतः पृतनानिर्मथनात्त्वयोपहूतः।
स्तनयित्नुरवादिभावलीनामवमर्दादिव दृप्तसिंहशावः ।।8 ।।

अन्वय – एष वीरपोतः त्वया उपहूतः (सन्) दृप्तसिंहशावः स्तनयित्नुरवात् इभावलीनाम् अवमर्दात् इव पृतनानिर्मथनात् विनिवर्तितः।।8 ।।

अनुवाद – यह वीर बालक तुम्हारे बुलाने पर उसी तरह सेनाओं के महानाश से पराङ्मुख हो गया है जैसे दर्पयुक्त सिंह-शावक मेघ के गरजने पर गज-समूह के अवमर्दन से निवृत्त हो जाता है।।8 ।।

टिप्पणी – पृतनानिर्मथनात्–पृतना = सेना 'पृतनाऽनीकिनी चमूः' इत्यमरः, तस्याः निर्मथनम्, तस्मात् अपादाने पंचमी। उपहूतः–उप ह्वे + क्त कर्मणि। इस पद्य में उपमा अलंकार है। यह मालभारिणी छन्द है। मालभारिणी का लक्षण है–'विषमे ससजा सदा गुरू चेत् सभरा येन तु मारभारिणीयम्'। इस छन्द को औपच्छन्दसिक भी कहते हैं।।8 ।।

(ततः प्रविशति धीरोद्धतपराक्रमी लवः।)

(तदनन्तर धीर एवम् उत्कट पराक्रमी लव प्रवेश करता है।)

लवः – साधु, राजपुत्र! साधु, सत्यमैक्ष्वाकः खल्वसि। तदहं परागत एवास्मि।

लव – वाह राजकुमार! वाह, सचमुच तुम इक्ष्वाकु-वंशीय हो। इसलिए मैं पहुँचा ही हूँ अर्थात् युद्ध के लिए तुम्हारे सामने ही उपस्थित हूँ।

टिप्पणी – ऐक्ष्वाकः – इक्ष्वाकोर्गोत्रापत्यं पुमान् इति इक्ष्वाकु + अञ् 'दाण्डिनायन'–इत्यादिना निपातनात् सिद्धिः।

(नेपथ्ये महान् कलकलः।)

(नेपथ्य में बड़ा शोरगुल होता है।)

लवः – (सावेगं परावृत्य) कथमिदानीं भग्ना अपि पुनः प्रतिनिवृत्ताः पृष्ठानुसारिणः पर्यवष्टम्भयन्ति मां चमूपतयः। धिग्जाल्मान्।

अनुवाद – (आवेग, उत्साह और उत्तेजना के साथ लौटकर।) कैसे ये सेनापति लोग मेरे द्वारा पराजित हो जाने पर भी अब फिर लौटकर मेरा पीछा करते हुए निकट पहुँच रहे हैं या मुझे घेर रहे हैं। अविवेकियों को धिक्कार है।

अयं शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्
प्रचण्डक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु मे।
समन्तादुत्सर्पद्घनतुमुलहेलाकलकलः
पयोराशेरोघः पलयपवनास्फालित इव।।9 ।।

अन्वय – अयं समन्तात् उत्सर्पद्घनतुमुलहेलाकलकलः प्रलयपवनास्फालितः पयोराशेः ओघः इव मे शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्प्रचण्डक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु।।9 ।।

अनुवाद – प्रलयकालीन वायु के द्वारा उद्वेलित समुद्र की जलराशि जैसे पर्वतों के आघात से क्षुब्ध वडवानल की प्रचंड क्रोध-ज्वालाओं के समूह का ग्रास होती है उसी तरह यह चारों ओर से फैलता हुआ घना एवं जटिल युद्ध-क्रीड़ा का कोलाहल मेरे प्रचण्ड कोपानल का भक्ष्य बने।।9 ।।

टिप्पणी – वडवावक्त्रहुतभुक् = वडवानल। एक बार और्व नामक मुनि अग्नि में अपना ऊरु (जाँघ) डालकर कुशा से मन्थन करने लगे। अनन्तर उनके ऊरु से अग्नि उत्पन्न हुई जो संसार को जलाने लगी।

जब ब्रह्मा ने यह देखा तो मुनि को किसी तरह शान्त किया और उस अग्नि को समुद्र-गर्भ-स्थित वडवा (घोड़ी) के मुँह में स्थापित करके उसके भक्ष्य के लिए समुद्र का जल निर्दिष्ट कर दिया। (मत्स्य पुराण)

इस पद्य में उपमा और रूपक अलंकारों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकल अलंकार हो जाता है। यह शिखरिणी छन्द है॥9॥

(सवेगं परिक्रामति।) (वेग के साथ कदम रखता है।)

चन्द्रकेतुः – भो भोः कुमार!

चन्द्रकेतु – हे कुमार!

अत्यद्भुतादपि गुणातिशयात्प्रियो मे
तस्मात् सखा त्वमसि यन्मम तत्तवैव।
तत् किं निजे परिजने कदनं करोषि
नन्वेष दर्पनिकषस्तव चन्द्रकेतुः॥10॥

अन्वय – अत्यद्भुतात् गुणातिशयात् अपि त्वं मे प्रियः सखा असि, तस्मात् यत् मम, तत् तव एव। तत् निजे परिजने किं कदनं करोषि? ननु एष चन्द्रकेतुः तव दर्पनिकषः॥10॥

अनुवाद – तुम अत्यन्त विस्मयोत्पदाक गुणाधिक्य के कारण मेरे प्रिय मित्र हो। अतः जो वस्तु मेरी है, वह तुम्हारी है। इसलिए क्यों अपने परिजनों उत्पीड़न कर रहे हो? हे लव! यह चन्द्रकेतु तुम्हारे गर्व की कसौटी है (अर्थात् तुम इन बेचारे सैनिकों को छोड़कर मुझसे युद्ध करने योग्य हो॥10॥

टिप्पणी – गुणातिशयात्-अति शी + अच् भावे अतिशयः, गुणानाम् अतिशयः, तस्मात् हेतौ पञ्चमी। प्रियः-प्रीणाति इति प्री + क कर्तरि। परिजनः-परिगतो जनः परिजनः प्रादिसमासः। यहाँ चन्द्रकेतु में निकषत्व के आरोप का उपयोग दर्प-परीक्षा से किया गया है, अतः परिणाम अलंकार है। यह वसन्ततिलका छन्द है॥।10॥

लवः – (सहर्षसम्भ्रमं परावृत्य) अहो! महानुभावस्य प्रसन्नकर्कशा वीरवचनप्रयुक्तिर्विकर्तन-कुलकुमारस्य। तत् किमेभिः? एनमेव तावत्सम्भावयामि।

अनुवाद – लव – (आनन्द और व्यस्तता के साथ लौटकर अहा! महाप्रभावशाली सूर्यवशीय राजकुमार का वीरोचित वाक्य-प्रयोग स्वच्छ एवं कठोर है। इसलिए इन सैनिकों से क्या (लड़ूँ)? इन्हीं को युद्ध द्वारा सम्मानित करूँ।

(पुनर्नेपथ्ये कलकलः) (नेपथ्य में पुनः कोलाहल होता है।)

लवः –(सक्रोधनिर्वेदम्) आः! कदर्थीकृतोऽहमेभिर्वीरसंवादविघ्नकारिभिः पापैः। (इति तदभिमुखं परिक्रामति)

अनुवाद – लव – (क्रोध और ग्लानि के साथ) आह! वीर के साथ संलाप करने में विघ्न डालने वाले इन पापी सैनिकों ने मेरी अवज्ञा की है। (यह कहकर सेना की ओर चल पड़ता है।)

चन्द्रकेतुः – आर्य! दृश्यतां, द्रष्टव्यमेतत्।

चन्द्रकेतु – आर्य! देखिये, यह देखने योग्य है।

दर्पेण कौतुकवता मयि बद्धलक्ष्यः
पश्चाद्बलैरनुसृतोऽयमुदीर्णधन्वा ।

द्वेधा समुद्धतमरुत्तरलस्य धत्ते
मेघस्य माघवतचापधरस्य लक्ष्मीम् ॥11॥

अन्वय – कौतुकवता दर्पेण मयि द्वेधा समुद्धतमरुत्तरलस्य माघवतचापधरस्य मेघस्य लक्ष्मीं धत्ते ॥11॥

अनुवाद – दर्प और कौतुक से मुझे देखता हुआ तथा पृष्ठभाग से सेनाओं द्वारा पीछा किया जाता हुआ यह धनुर्धारी वीर लव दोनों ओर सामने और पीछे से बहने वाली प्रचण्ड वायु द्वारा चंचल तथा इन्द्रधनुष धारण किये हुए बादल की शोभा को प्राप्त कर रहा है ॥1॥

टिप्पणी – उदीर्णधन्वा = धनुष उठाये हुए। उदीर्णा धनुः येन सः, 'धनुषश्च' इति सूत्रेण समासान्तोऽनुङ्। द्वेधा–द्विप्रकारेण इति द्वि + एधाच्। समुद्धत–सम् उद् हन् (गतौ) + क्त कर्तरि। माघवत–मघोन इदम् इति मघवन् + अण्। इस पद्य में निदर्शना तथा छेकानुप्रास अलंकार हैं। यह वसन्ततिलका छन्द है ॥11॥

सुमन्त्रः – कुमार एवैनं द्रष्टुमपि जानाति। वयं तु केवलं परवन्तो विस्मयेन।

सुमन्त्र – कुमार ही इसको देखना भी जानते हैं। मैं तो केवल आश्चर्य के वश में हो गया हूँ।

टिप्पणी – परवन्तः = पराधीन। 'परतन्त्रः पराधीनः परवान् नाथवानपि' इत्यमरः।

चन्द्रकेतुः – भो भो राजानः!

चन्द्रकेतु – हे राजाओं!

संख्यातीतैर्द्विरदतुरगस्यन्दनस्थैः पदाता-
वत्रैकस्मिन् कवचनिचितैर्नद्धचर्मोत्तरीये।
कालज्येष्ठैरपरवयसि ख्यातिकामैर्भवद्भि–
र्योऽयं बद्धो युधि समभरस्तेन धिग्वो धिगस्मान् ॥12॥

अन्वय – संख्यातीतैः द्विरदतुरगस्यन्दनस्थैः कवचनिचितैः कालज्येष्ठैः अपरवयसि ख्यातिकामैः भवद्भिः एकस्मिन् पदातौ नद्धचर्मोत्तरीये अत्र युधि यः अयं समभरः बद्धः तेन वो धिक् अस्मान् धिक् ॥12॥

अनुवाद – हाथी, घोड़े और रथ पर आरूढ़, कवच से आवृत, अवस्था में बड़े, बुढ़ापे में ख्याति के इच्छुक और असंख्य आप लोगों ने अकेले, पैदल और उत्तरीय के रूप में मृगचर्म बाँधे हुए इस लव पर जो यह सामूहिक आक्रमण किया है, इससे आप लोगों को धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है ॥12॥

टिप्पणी – संख्यातीतः – संख्यामतीताः इति संख्यातीताः 'द्वितीया श्रित''–इत्यादिना द्वितीयातत्पुरुषः, तैः। द्विरदतुरगस्यन्दनस्थै–द्विरदाश्च तुरगाश्च स्यन्दनाश्च इति विग्रहे 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' इति सेनाङ्गत्वात् समाहारद्वन्द्वः, तस्मिन् तिष्ठन्तीति स्था + क, तैः। कालज्येष्ठैः–अतिशयेन वृद्धा इति वृद्ध + इष्ठन्, ज्यादेश ज्येष्ठाः, कालेन ज्येष्ठाः कालज्येष्ठाः, तैः। पदातौ–पादाभ्यां गच्छतीति पदातिः तस्मिन्, 'पादे च' इतिसूत्रेण इण्प्रत्यय, 'पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु' इति पदादेशः। इस पद्य में विषमालंकार है। यह मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥12॥

लवः – (सोन्माथम्) आः! कथमनुकम्पते नाम? (ससम्भ्रमं विचिन्त्य) भवतु। कालहरणप्रतिषेधाय जृम्भकास्त्रेण तावत्सैन्यानि संस्तम्भयामि। (इति ध्यानं नाटयति।)

अनुवाद – लव (व्यथा के साथ) आह! क्यों दया कर रहे हैं? (शीघ्रता से विचार कर) अस्तु, कालक्षेप से बचने के लिए जृम्भकास्त्र से सैनिकों का स्तम्भन कर देता हूँ। (यह कहकर ध्यान करने का अभिनय करता है।)

टिप्पणी – नाम – यहाँ कुत्सा के अर्थ में इस अव्यय का प्रयोग हुआ है। 'नाम प्राकाश्यकुत्सयोः' इत्यादि हैमः। संस्तम्भयामि–जड़ बना देता हूँ। सम् स्तम्भ् + णिच् + लट्–मि।

सुमन्त्रः – तत् किमकस्मादुल्लोलाः सैन्यघोषाः प्रशाम्यन्ति?

सुमन्त्र – तब क्यों एकाएक सैनिकों का अति चञ्चल कोलाहल शान्त हो रहा है?

लवः – पश्याम्येनमधुना प्रगल्भम्।

लव – अब मैं इस ढीठ को देखता हूँ।

सुमन्त्रः – (ससम्भ्रमम्) वत्स! मन्ये कुमारकेणानेन जृम्भकास्त्रमामन्त्रितम्।

सुमन्त्र – (हड़बड़ी के साथ) वत्स! मैं समझता हूँ, इस कुमार ने जृम्भकास्त्र का प्रयोग किया है।

चन्द्रकेतुः – अत्र कः सन्देहः?

चन्द्रकेतु – इसमें क्या सन्देह?

व्यतिकर इह भीमस्तामसो वैद्युतश्च
प्रणिहितमपि चक्षुर्ग्रस्तमुक्तं हिनस्ति।
अथ लिखितमिवैतत्सैन्यमस्पन्दमास्ते
नियतमजितवीर्यं जृम्भते जृम्भकास्त्रम्॥13॥

अन्वय – तामसो वैद्युतश्च भीमो व्यतिकरः इह प्रणिहितमपि ग्रस्तमुक्तं चक्षुः हिनस्ति। अथ एतत् सैन्यं लिखितम् इव अस्पन्दम् आस्ते। नियतम् अजितवीर्ये जृम्भकास्त्रं जृम्भते॥13॥

अनुवाद – यहाँ सेना के बीच सावधानी से दृष्टिपात करने पर भी अन्धकार और बिजली का भयंकर सम्मिश्रण (अर्थात् तिमिर और तेज का गाढ़ संयोग) नेत्रों को ग्रस्त–मुक्त भाव से उत्पीड़ित कर रहा है। अर्थात् पहले अन्धकार दृष्टि को कवलित कर लेता है पश्चाद् प्रकाश उसे मुक्त कर देता है। अब यह सेना चित्र–लिखित की भाँति गतिहीन हो गई है। निश्चय ही यह अजेय पराक्रमशाली जृम्भकास्त्र उदित हुआ॥13॥

टिप्पणी – व्यतिकरः – वि–अति कृ + अप् भावे। ग्रस्त–मुक्तम्–पूर्वे ग्रस्त पश्चात् मुक्तम् इति 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' इत्यनेन समासः। इस पद्य में उपमा और अनुमान अलंकारों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार हो जाता है। यहाँ मालिनी छन्द है॥13॥

आश्चर्यमाश्चर्यम्!

आश्चर्य है, आश्चर्य है!

पातालोदरकुञ्जपुञ्जिततमः श्यामैनभो जृम्भकै-
रुत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः।
कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तैरभिस्तीर्यते
लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैर्विन्ध्याद्रिकूटैरिव॥14॥

अनुवाद – जैसे प्रलयकाल में कठोर तथा भयंकर वायु के द्वारा विक्षिप्त उखाड़कर फेंके हुए और सटे हुए बादलों एवं बिजलियों के कारण पिंगल वर्ण ललाई लिये भूरे रंग की गुफाओं वाले विन्ध्यपर्वत के शिखर आकाश को परिव्याप्त कर देते हैं, उसी तरह पाताल के भीतर स्थित कुञ्जों की अन्धकारराशि के समान श्यामवर्ण वाला और तपाने के कारण चमकते हुए पीतल के पिंगलवर्ण की ज्योति के समान जाज्वल्यमान आभा वाला जृम्भकास्त्र आकाश को आच्छादित कर रहा है॥14॥

टिप्पणी – पुञ्जित – पुञ्जः सञ्जातमस्य इति पुञ्ज + इतच्। आरकूट = पीतल। 'रीतिः स्त्रियामारकूटम्' इत्यमरः। कडार = ललाई लिये भूरा रंग। 'कडारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ' इत्यमरः। इस पद्य में दव्योत्प्रेक्षा किसी के मत से उपमा, छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार है। यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है॥14॥

सुमन्त्रः – कुतः पुनरस्य जृम्भकाणामागमः स्यात्?

सुमन्त्र – इस बालक को जृम्भकास्त्र किससे मिले होंगे?

चन्द्रकेतुः – भगवतः प्राचेतसादिति मन्यामहे।

चन्द्रकेतु – भगवान् वाल्मीकि से मिले होंगे, ऐसा मैं मानता हूँ।

सुमन्त्रः – वत्स! नैतदेवमस्त्रेषु विशेषतो जृम्भकेषु। यतः–

सुमन्त्र – वत्स! अस्त्रों के सम्बन्ध में इस प्रकार की प्राप्ति अर्थात् वाल्मीकि मुनि से अस्त्र-प्राप्ति सत्य नहीं प्रतीत होतो, विशेषकर जृम्भकास्त्र के बारे में। क्योंकि–

कृशाश्वतनया ह्येते कृशाश्वात् कौशिकं गताः।
अथ तत्सम्प्रदायेन रामभद्रे स्थिता इति॥15॥

अन्वय – एते हि कृशाश्वतनयाः, कृशाश्वात् कौशिकं गताः। अथ तत्सम्प्रदायेन रामभद्रे स्थिता इति॥15॥

अनुवाद – ये जृम्भकास्त्र प्रजापति कृशाश्व से उत्पन्न हुए थे। कृशाश्च से विश्वामित्र को प्राप्त हुए और विश्वामित्र के उपदेश से रामभद्र को प्राप्त हुए हैं॥15॥

टिप्पणी – यहाँ जृम्भकास्त्रों के अनेकगत होने के कारण पर्याय नामक अलंकार है॥15॥

चन्द्रकेतुः – अपरेऽपि प्रचीयमानसत्त्वप्रकाशाः स्वयं सर्वं मन्त्रदृशः पश्यन्ति।

अनुवाद – दूसरे भी मन्त्रद्रष्टा लोग, जिनमें सत्त्व गुण का प्रकाश अत्यन्त बढ़ जाता है, स्वयं सब कुछ जान लेते हैं अर्थात् बिना किसी के उपदेश से ही अस्त्र-प्राप्ति कर सकते हैं।

टिप्पणी – प्रचीयमान-प्र चि + शानच् कर्मकर्तरि। यथा-'चीयते बालिशस्यापि'-मुद्राराक्षस।

सुमन्त्रः – वत्स! सावधानो भव। परागतस्ते प्रतिवीरः।

सुमन्त्र – वत्स! सावधान हो जाओ। तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी वीर आ पहुँचा।

कुमारौ – (अन्योन्यं प्रति) अहो! प्रियदर्शनः कुमारः। (सस्नेहानुरागं निर्वर्ण्य)

दोनों कुमार – (एक दूसरे के प्रति) अहा! कुमार देखन में प्रिय हैं। (स्नेह और अनुराग के साथ देखकर)

यदृच्छासंवादः किमु गुणगणानामतिशयः
पुराणो वा जन्मान्तरनिविडबद्धः परिचयः।
निजो वा सम्बन्धः किमु विधिवशात् कोऽप्यविदितो
ममैतस्मिन् दृष्टे हृदयमवधानं रचयति॥16॥

अन्वय – एतस्मिन् दृष्टे यदृच्छासंवादः किमु, गुणगणानाम् अतिशयः, जन्मान्तरनिविडबद्ध पुराणः परिचयो वा, विधिवशात् अविदितः कोऽपि निजः सम्बन्धो वा किमु, मम हृदयम् अवधानं रचयति॥16॥

अनुवाद – इस लव या चन्द्रकेतु के देखने पर क्या ईश्वरेच्छा से हुआ हमारा सम्मेलन या गुणों का उत्कर्ष या दृढ़ता से आबद्ध जन्मान्तरोय पुरातन परिचय या दैववश आगत कोई आत्मीय सम्बन्ध मेरे हृदय को एकाग्र कर रहा है॥16॥

टिप्पणी – यदृच्छासंवादः – आकस्मिक मिलन या ॠच्छा यदृच्छा या सवादः। इस श्लोक के तीन पदों में शुद्ध संदेह अलंकार और चतुर्थ पाद में काव्यलिंग अलंकार है। इनमें अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार हो जाता है। यह शिखरिणी छन्द है॥16॥

सुमन्त्रः – भूयसां जीविनामेव धर्म एषः, यत्र रसमय कस्यचित् क्वचित् प्रीतिः यत्र लौकिका-नामुपचारस्तारामैत्रक चक्षूराग इति। तद्प्रतिसङ्ख्येयनिबन्धनं प्रमाणमामनन्ति।

अनुवाद – सुमन्त्र – बहुत से प्राणियों का यह स्वभाव है, जिसमें किसी से किसी का अनुरागात्मक स्नेह होता है और जिसके सम्बन्ध में लोकाचार-विशेषज्ञों का कथन है कि आँखों की पुतलियों की मित्रता या नेत्रों का प्रेम हो जाता है। उस प्रेम को सीमारहित किन्तु प्रामाणिक मानते हैं।

अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति॥17॥

अन्वय – अहेतुः यः पक्षपातः तस्य प्रतिक्रिया न अस्ति। हि सः स्नेहात्मकः। तन्तुः भूतानि अन्तः सीव्यति॥17॥

अनुवाद – बिना कारण के जो परम्पर प्रेम उत्पन्न होता है, उसका प्रतीकार अर्थात् नाश नहीं होता, कारण वह स्नेहमय सूत्र प्राणियों के अन्तःकरणों को सी देता है (सुतराम् ऐसे प्रणय का भंग होना असंभव ही है)॥17॥

टिप्पणी – इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास तथा रूपक अलंकारों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार हो जाता है॥17॥

कुमारौ – (अन्योन्यमुद्दिश्य)

दोनों कुमार – (परस्पर लक्ष्य करके)

एतस्मिन् मसृणितराजपट्टकान्ते
भोक्तव्याः कथमिव सायकाः शरीरे।
यत्प्राप्तौ मम परिरम्भणाभिलाषा-
द्रुन्मीलत्पुलककदम्बमङ्गमास्ते॥18॥

अन्वय – मसृणितराजपट्टकान्ते एतस्मिन् शरीरे सायकाः कथमिव भोक्तव्याः? यत्प्राप्तौ परिरम्भणाभिलाषात् मम अङ्गम् उन्मीलत्पुलककदम्बम् आस्ते॥18॥

अनुवाद – इस शरीर पर बाणों को कैसे छोड़ूँ, जो खरादे हुए राजपट्ट मणि के समान मनोहर है और जिसके मिलने पर आलिंगन करने की इच्छा से मेरे अंगों में अत्यन्त रोमाञ्च हो रहा है॥18॥

टिप्पणी – मसृणित – मसृणः कृतः इति मसृण + णिच् (नामधातु) + क्त कर्मणि। राजपट्ट = कान्त पत्थर या सूक्ष्म राजकीय वस्त्र। इस पद्य में वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग और लुप्तोपमा अलंकार हैं। दोनों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार हो जाता है। यह प्रहर्षिणी छन्द है॥18॥

किन्त्वाक्रान्तकठोरतेजसि गतिः का नाम शस्त्रं विना?
शस्त्रेणापि हि तेन किं न विषयो जायेत यस्येदृशः॥

किं वक्ष्यत्ययमेव युद्धविमुखं मामुद्यतेऽप्यायुधे
वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते ॥19॥

अन्वय – किन्तु आक्रान्तकठोरतेजसि शस्त्रं विना का नाम गतिः? तेन शस्त्रेणापि हि किं, यस्य ईदृशो विषयो न जायेत। आयुधे उद्यते अपि युद्धविमुखं माम् अयमेव किं वक्ष्यति? हि दारुणरसः वीराणां समयः स्नेहक्रमं बाधते ॥19॥

अनुवाद – किन्तु हमारे प्रचण्ड प्रभाव पर आक्रमण करने वाले इस व्यक्ति के प्रति शस्त्र-प्रयोग के बिना क्या उपाय है? और उस शस्त्र से भी क्या प्रयोजन, जिसक प्रयोग के लिए ऐसा पात्र वीर पुरुष न मिले? हथियार उठा लेने पर यदि मैं युद्ध करने से विरत हो जाता हूँ तो यही क्या कहेगा? फलतः वीरों का भयंकर-रस-युक्त आचार स्नेह के क्रम को तोड़ देता है ॥19॥

टिप्पणी – जायेत – अत्र 'हेतुहेतुमतोर्लिङ्' इत्यनेन लिङ्। आयुधे–आ युध् + क कक्षरणे घञर्थे आयुधम्, तस्मिन्। समय = आचार, नियम। 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः। इस पद्य में सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥19॥

सुमन्त्रः – (लवं निर्वर्ण्य सास्त्रमात्मगतम्) हृदय! किमन्यथा परिकल्पसे?

सुमन्त्र – (लव को देखकर आँसू के साथ मन में) चित्त! तुम क्यों दूसरे प्रकार से कल्पना कर रहे हो अर्थात् लव को रामभद्र का पुत्र होने की सम्भावना कैसे कर रहे हो?

मनोरथस्य यद्बीजं तद्दैवेनादितो हृतम्।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्योद्भवः कुतः ॥20॥

अन्वय – मनोरथस्य यत् बीजं, तत् दैवेन आदितो हृतम्। लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्य उद्भवः कृतः? ॥20॥

अनुवाद – मनोरथ का जो बीज था, उसे भाग्य ने पहले ही नष्ट कर डाला। पहले ही लता के काट देने पर उससे पुष्प की उत्पत्ति कैसे होगी? (अर्थात् जैसे फूल लगने से पहले काटी गई लता से फूल की उत्पत्ति असम्भव है, उसी तरह प्रसव से पूर्व हिंस्र जन्तुओं से परिव्याप्त वन में विसर्जित अतएव नष्ट सीता से लव रूप सन्तान की उत्पत्ति असम्भव है ॥20॥

टिप्पणी – इस श्लोक में उदाहरण प्रस्तुत करके समझाये जाने के कारण दृष्टान्त अलंकार है ॥20॥

चन्द्रकेतुः – अवतराम्यार्य सुमन्त्र! स्यन्दनात्।

चन्द्रकेतु – आर्य सुमन्त्र! मैं रथ से उतर जाता हूँ।

सुमन्त्रः – कस्य हेतोः?

सुमन्त्र – किसलिए?

चन्द्रकेतु – एकस्तावदयं वीरपुरुषः पूजितो भवति। अपि च खलवार्य! क्षात्रधर्मः परिपालितो भवति। 'न रथिनः पादचारमभियुञ्जन्तीति शास्त्रविदः परिभाषन्ते'।

चन्द्रकेतु – आर्य! एक तो इस वीर पुरुष का सम्मान होता है और दूसरा क्षत्रियों के धर्म का परिपालन हो जाता है। क्योंकि शास्त्रकारों का कहना है–'रथारूढ़ होकर पैदल व्यक्ति से नहीं लड़ना चाहिए'।

टिप्पणी – पादचारम् – पादेन चारः गतिः अस्य तम्। शास्त्रविदः=शास्त्रवेत्ता मनु आदि। मनु ने कहा है–'न च हन्यात् स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलम्।' चतुर्वर्गचिन्तामणि में स्पष्ट वचन है–'रथी च रथिना सार्धे पदातिश्च पदातिना। कुञ्जरस्थो गजस्थेन योद्धव्यो भृगुनन्दन॥'

सुमन्त्रः – (स्वगतम्) आः! कष्टां दशामनुप्रपन्नोऽस्मि।

सुमन्त्र – (अपने आप) आह! कष्टकर अवस्था को प्राप्त हो गया हूँ।

कथं हीदमनुष्ठानं मादृशः प्रतिषेधतु।
कथं वाऽभ्यनुजानातु साहसैकरसां क्रियाम्॥21॥

अन्वय – हि मादृशः इदम् अनुष्ठानं कथं प्रतिषेधतु, साहसैकरसां क्रियां कथं वा अभ्यनुजानातु॥21॥

अनुवाद – क्योंकि मेरे जैसा व्यक्ति इस रथावतरणरूप उचित आचरण का निषेध कैसे करे? और एकमात्र साहस के काम की अनुमति भी कैसे दे?

टिप्पणी – यहाँ अर्थापत्ति अलंकार है॥21॥

चन्द्रकेतुः – यदा तातमिश्रा अपि पितुः प्रियसखं त्वामर्थसंशयेषु पृच्छन्ति, तत् किमार्यो विमृशति?

अनुवाद – चन्द्रकेतु – जब कर्तव्य कार्यों में संशय उपस्थित होने पर पूज्य पितृगण राम आदि भी पिता दशरथ के प्रिय मित्र आपसे पूछते हैं, तब क्यों आर्य सोच रहे हैं?

सुमन्त्रः – आयुष्मन्! एवं यथाधर्ममभिमन्यसे।

सुमन्त्र – चिरञ्जीव! इस प्रकार अर्थात् रथ से उतरने की बात तुम धर्म के अनुकूल जानते हो।

एष सांग्रामिकी न्याय एष धर्मः सनातनः।
इयं हि रघुसिंहानां वीरचारित्रपद्धतिः॥22॥

अन्वय – एष सांग्रामिकः न्यायः, एष सनातनः धर्मः, हि इयं रघुसिंहानां वीरचारित्रपद्धतिः॥22॥

अनुवाद – यह वीर-सम्मान रूप आचार युद्ध का नियम है, यह सनातन धर्म है और यह रघुकुल के श्रेष्ठ पुरुषों के वीरोचित व्यवहार की पद्धति है॥22॥

टिप्पणी – सांग्रामिक – संग्रामः प्रयोजनमस्य इति संग्राम + ठञ् इक। न्यायः–नितराम् अयते अनेन इति नि अय् + घञ् करणे। सनातनः– सनाभव इति सना + ट्युल्। चारित्र–चर् + इत्रण्, चरित्र + अण् स्वार्थे प्रज्ञादित्वात्। पद्धतिः–पादाभ्यां हन्यते इति पाद हन् + क्तिन् कर्मणि 'हिमषिहतिषु च' इति सूत्रेण पादस्य पद् आदेशः।

चन्द्रकेतुः – अप्रतिरूपं वचनमार्यस्य।

चन्द्रकेतु – आर्य का वचन अनुपम है।

इतिहासं पुराणं च धर्मप्रवचनानि च।
भवन्त एव जानन्ति रघूणां च कुलस्थितिम्॥23॥

अन्वय – भवन्त एव इतिहासं, पुराणं, धर्मप्रवचनानि रघूणां कुलस्थितिं च जानन्ति॥23॥

अनुवाद – आप जैसे विज्ञ ही इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र एवं रघुवंशियों की लौकिक रीति भी जानते हैं॥23॥

टिप्पणी – इतिहासम् – इतिह आस्ते अस्मिन् इति इतिह आस् + घञ् अधिकरणे। इसका लक्षण इस प्रकार है–'धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्। पुरावृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।' पुराणम्–पुरा भवम् इति पुरा + ट्युल, अनादेशः। इसका लक्षण यह है–'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥' धर्मप्रवचनानि = मन्वादि धर्मशास्त्र। धर्माः नित्यनैमित्तिकादयः प्रोच्यन्ते प्रकाश्यन्ते एभिः तानि। 'करणाधिकरण्योश्च' इति करणे ल्युट् प्रत्ययः। इस पद्य में एक ही ज्ञान रूप क्रिया में इतिहास आदि पदार्थों का सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है॥23॥

सुमन्त्रः – (सस्नेहास्त्रं परिष्वज्य)

सुमन्त्र – (स्नेह और अश्रुपात के साथ आलिंगन करके)

जातय ते पितुरपीन्द्रजितो निहन्तु-
र्वत्सस्य वत्स! कति नाम दिनान्यमूनि।
तस्याप्यपत्यमनुतिष्ठति वीरधर्म
दिष्ट्यागतं दशरथस्य कुलं प्रतिष्ठाम्॥24॥

अन्वय – वत्स! इन्द्रजित: निहन्तु: वत्सस्य ते पितु: अपि जातस्य अमूनि कति नाम दिनानि? तस्य अपत्यमपि वीरधर्मम् अनुतिष्ठति, दिष्ट्या दशरथस्य कुलं प्रतिष्ठाम् आगतम्॥24॥

अनुवाद – वत्स! मेघनाद के निहन्ता स्नेहास्पद तुम्हारे पिता को भी उत्पन्न हुए ये कितने दिन बीते हैं? अर्थात् वे भी मेरे सामने अल्प-वयस्क हैं, फिर उनका भी पुत्र वीरोचित धर्म का अनुष्ठान कर रहा है। अत: भाग्यवश दशरथ का वंश पतिष्ठा को प्राप्त अर्थात् स्थायी हो गया है॥24॥

टिप्पणी – प्रतिष्ठाम्=प्रतितिष्ठिति अनया इति प्रति स्था + अङ् भावे। इस पद्य में चौथे चरण के अर्थ के प्रति पूर्व चरणों का अर्थ हेतु है, अत: वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है। यह वसन्ततिलका छंद है॥24॥

चन्द्रकेतुः – (सकष्टम्)

चन्द्रकेतु – (खेद के साथ)

अप्रतिष्ठे कुलज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः।
इति दुःखेन तप्यन्ते त्रयो नः पितरोऽपरे॥25॥

अन्वय – कुल ज्येष्ठे अप्रतिष्ठे न: कुलस्य का प्रतिष्ठा? इति दु:खेन न: अपरे त्रय: पितर: तप्यन्ते॥25॥

अनुवाद – कुल में सर्वश्रेष्ठ (रामचन्द्रजी) के प्रतिष्ठाहीन अर्थात् सन्तानशून्य होने पर हमारे कुल की क्या स्थिति है अर्थात् कुछ नहीं। इसी दु:ख से हमारे अय पितृचरण सन्तप्त हो रहे हैं॥25॥

टिप्पणी – इस पद्य में करुण रस रामविषयक रतिभाव का अंग है, अत: रसवत् अलंकार है॥25॥

सुमन्त्रः – हृदयमर्मदारणान्येव चन्द्रकेतोर्वचनानि।

सुमन्त्र – चन्द्रकेतु के ये वचन हृदय के मर्मस्थान को विदीर्ण करने वाले हैं।

लव: – हन्त! मिश्रीकृतक्रमो रसो वर्तते।

लव – अहा! वात्सल्य रस वीररस से मिश्रित हो रहा है।

टिप्पणी – मिश्रीकृतक्रम: = जिसका क्रम मिलाया हुआ अर्थात् वीररस से संयुक्त किया गया हो। अमिश्र: मिश्र: कृत: इति मिश्रीकृत: = संयोजित: क्रम: = परिपाटी यस्य स:। रस: = अर्थात् वात्सल्य।

यथैन्दावानन्दं व्रजति समुपोढे कुमुदिनी
तथैवास्मिन् दृष्टिर्मम, कलह कामः पुनरयम्।
रणत्कारक्रूरक्कणितगुणगुञ्जद्गुरुधनु -
र्धृतप्रेमा बाहुर्विकचविकरालव्रणमुखः॥26॥

अन्वय – इन्दो समुपोढे कमुदिनी यथा आनन्दं व्रजति तथैव अस्मिन् मम दृष्टि:, पुन: कलहकाम: अयं बाहु: रणत्कारक्रूरक्कणितगुणगुञ्जद्गुरुधनुर्धतप्रेमा विकचविकरालव्रणमुख: (सञ्जात:)॥26॥

अनुवाद – चन्द्रमा के उदित होने पर जैसे कुमुदिनी प्रफुलित होती है उसी तरह चन्द्रकेतु के देखने पर मेरा नेत्र आनन्दित हो रहा है; किन्तु लड़ाई चाहने वाली यह मेरी भुजा, जिसके अग्रभाग पर सुस्पष्ट एवं

विकट घाव के चिह्न विद्यमान हैं, ऐसे विशाल धनुष के प्रति प्रेम प्रकट कर रही है, जो क्रूरतापूर्वक रणरणाती हुई मौर्वी से गूँज रहा है॥26॥

टिप्पणी – समुपोढे सम् उप वह् + क्त कर्मणि। कलहकामः–कलहं कामयते इति कलह कामि + ण कर्तरि। यहाँ परस्पर विरुद्ध स्नेह और वैर का एकत्र संघटन होने से विषमालंकार और कुमुदिनी के साथ अवैधर्म्यसमता का निरूपण करने से श्रौती उपमा अलंकार है। इन दोनों में अंगांगिभाव संबंध होने से संकर अलंकार हो जाता है। श्लोक के पूर्वार्द्ध में रत्याख्य स्थायिभाव, प्रसाद गुण तथा कैशिकी रीति है और उत्तरार्द्ध में वीर रस, ओज गुण एवम् आरभटी रीति है। इस प्रकार यहाँ मिश्रित रस समझना चाहिए। यह शिखरिणी छंद है॥26॥

चन्द्रकेतुः – (अवतरणं निरूपयन्) आर्य! अयमसावैक्ष्वाकश्चन्द्रकेतुरभिवादयते।

चन्द्रकेतु – (उतरने का अभिनय करता हुआ) आर्य! यह इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न चन्द्रकेतु आपको प्रणाम करता है।

सुमन्त्रः–

अजितं पुण्यमूर्जस्वि ककुत्स्थस्येव ते महः।
श्रेयसे शाश्वतो देवो वराहः परिकल्पताम्॥27॥

अन्वय – शाश्वतः वराहः देवः ककुत्स्थस्य इव ते अजितं पुण्यम् ऊर्जस्वि महः श्रेयसे परिकल्पताम्॥20॥

अनुवाद – सुमन्त्र – वराहशरीरधारी सनातन विष्णु विजय-मंगल के लिए तुम्हें पुरञ्जय की भाँति अजेय, पवित्र एवं बलवान् तेज प्रदान करें॥27॥

टिप्पणी – ककुत्स्थस्य – ककुदि तिष्ठति इति ककुट स्था + क कर्तरि = ककुत्स्थः, तस्य। पूर्वकाल में पुरञ्जय नामक इक्ष्वाकुवंशीय राजा ने वृषभरूपधारी इन्द्र के ककुट् कंधे पर आरूढ़ होकर असुरों से युद्ध किया था। अतः पुरञ्जय का नाम ककुत्स्थ पड़ा। ककुत्स्थ के शरीर में भगवान् विष्णु ने अपना तेज भर दिया था। अतएव वे असुरविजयी हुए थे।

अपि च,

और भी,

देवस्त्वां सविता धिनोतु समरे गोत्रस्य यस्ते पति-
स्त्वां मैत्रावरुणोऽभिनन्दतु गुरुर्यस्ते गुरूणामपि।
ऐन्द्रावैष्णवमाग्निमारुतमथो सौपर्णभोजोऽस्तु ते
देयादेव च रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रो जयम्॥28॥

अन्वय – सविता देवः समरे त्वां धिनोतु यः ते गोत्रस्य पतिः, मैत्रावरुणः त्वाम् अभिनन्दतु यः ते गुरूणाम् अपि गुरुः, अथो ऐन्द्रावैष्णवम् आग्निमारुत सौपर्णम् ओजः ते अस्तु, रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रः जयं देयात् एव॥28॥

अनुवाद – समर मे सूर्यदेव तुम्हें प्रसन्न रखें, जो तुम्हारे वंश के अधिपति हैं। वसिष्ठ जी तुम्हारा अभिनन्दन करें, जो तुम्हारे गुरुओं की भी गुरु हैं। इसके बाद तुम्हें इन्द्र, विष्णु, अग्नि, मरुत् तथा गरुड़ का तेज प्राप्त हो और राम-लक्ष्मण के धनुष की मोर्वी के शब्द से युक्त मन्त्र (अर्थात् ब्रह्मास्त्र-प्रयोग का मन्त्र) तुम्हें विजय प्रदान करे॥28॥

टिप्पणी – धिनोतु धिन्वि = लोट्–तु। 'धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्' इति किरात.। मैत्रावरुणः=वसिष्ठ। मित्रश्च वरुणश्च इति द्वन्द्वसमासे मित्रावरुणौ 'देवताद्वन्द्वे च' इत्यनेन आनङ् आदेशः, तयोः अपत्यम् इत्यर्थे अण्प्रत्ययः। ऐन्द्रावैष्णवम्–इन्द्रश्च विष्णुश्च इन्द्राविष्णू 'देवताद्वन्द्वे च' इत्यानङ्, तयोः इदम् ऐन्द्रावैष्णम् 'तस्येदम्' इत्यनेन अण् प्रत्ययः, 'देवदाद्वन्द्वे च' इत्यनेन उभयपदवृद्धिः। आग्निमारुतम्– अग्निश्च मरुच्च अग्नामरुतौ 'देवताद्वन्द्वे च' इत्यानङ्, तयोरिदम्। देयात्–दाधातोः आशीर्लिङ रूपम्। 'एतेर्लिङि' इति सूत्रेण एत्वम्। इस पद्य में असम्भवद्वस्तुसम्बन्धरूप निदर्शन अलंकार तथा रूपक अलंकार है। फिर दोनों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसष्टि अलंकार हो जाता है। यह शार्दूलविक्रीडित छंद है॥28॥

लवः – अतीव नाम शोभते रथस्य एव। कृतं कृतमत्यादरेण।

लव – आप रथ पर ही अत्यंत शोभित हो रहे हैं। अतिशय आदर प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है।

चन्द्रकेतुः – तर्हि महाभागोऽप्यन्यं रथमलङ्करोतु।

चन्द्रकेतु – तब आप भी दूसरे रथ को अलंकृत कीजिये।

लवः – आर्य! प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रम्।

लव – आर्य! राजकुमार को रथ पर चढ़ाएँ।

सुमन्त्रः – त्वमप्यनुरुध्यस्व वत्सस्य चन्द्रकेतोर्वचनम्।

सुमन्त्र – तुम भी वत्स चन्द्रकेतु की बात रख लो।

लवः – को विचारः स्वेषूपकरणेषु? किन्त्वरण्यसदो वयमनभ्यस्तरथचर्याः।

लव – अपनी व्यवहार की वस्तुओं में क्या हिचकिचाहट? किन्तु हम वनवासी लोगों को रथ से चलने का अभ्यास नहीं है (अर्थात् अभिन्न–हृदय चन्द्रकेतु की वस्तु मेरी अपनी ही है। अतः रथ स्वीकार करने में मुझे आपत्ति नहीं है। किन्तु रथ के व्यवहार में अनभ्यस्त होने के कारण मैं रथ पर चढ़ कर युद्ध करना नहीं चाहता हूँ।)।

टिप्पणी – उपकरणेषु=सामग्रीषु। उपक्रियते एभिः इति उप कृ + ल्युट् करणे–उपकरणानि, तेषु विषयाधिकरणे सप्तमी। रथचर्या–चर् + यत् भावे स्त्रियां=चर्या, रथस्य चर्या रथचर्या।

सुमन्तः – जानासि वत्स! दर्पसौजन्ययोर्यदाचरितम्। यदि पुनस्त्वामीदृशमैक्ष्वाको राजा रामभद्रः पश्येत्तदाऽस्य स्नेहेन हृदयमभिष्यन्देत।

अनुवाद – सुमन्त्र – वत्स! तुम अभिमान और विनय का आचरण करना जानते हो॥ यदि ऐसे शौर्यसौजन्यादिगुणभूषित तुमको इक्ष्वाकुवंशीय राजा रामभद्र देखते तो स्नेह से उनका हृदय पिघल जाता।

लवः – आर्य! सुजनः स राजर्षिः श्रूयते। (सलज्जमिव)

लव – आर्य! सुनते हैं, वे राजर्षि सज्जन पुरुष हैं। (लज्जित की तरह)

वयमपि न खल्वेवम्प्रायाः ऋतुप्रविघातिनः
क इह च गुणैस्तं राजानं न वा बहु मन्यते।
तदपि खलु मे स व्याहारस्तुरङ्गमरक्षिणां
विकृतिमखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डतयाऽकरोत्॥29॥

अन्वय – वयमपि एवम्प्रायाः ऋतुप्रविघातिनः न खलु, इह च कः गुणः तं राजानं न वा बहु मन्यते? तदपि तुरङ्गमरक्षिणां स व्याहारः खलु अखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डतया मे विकृतिम् अकरोत्॥29॥

अनुवाद – मैं भी कोई इस प्रकार का यज्ञविध्वंसक नहीं हूँ जो यज्ञीय अश्व का अपहरण करूँ और इस संसार में कौन व्यक्ति ऐसे गुणशाली राजा रामचन्द्र के प्रति सम्मान नहीं प्रकट करेगा? किन्तु अश्व रक्षकों की (योऽयमश्वः पताका वा' इत्यादि) उक्ति ने निखिल क्षत्रियों की अवमानना करके अत्यन्त उग्र रूप से मुझमें क्रोध उत्पन्न कर दिया है ॥29 ॥

टिप्पणी – इस पद्य में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। यह हरिणी छंद है ॥29 ॥

चन्द्रकेतुः – किन्नु भवतस्तातप्रतापोत्कर्षेऽप्यमर्षः?

चन्द्रकेतु – तो क्या पितृचरण के प्रभावोत्कर्ष के प्रति भी आप असहिष्णु हैं?

लवः – अस्त्विहामर्षो मा भूद्वा। अन्यदेतत्पृच्छामि। दान्तं हि राजानं राघवं शृणुमः। स किल नात्मना दृप्यति, नाप्यस्य प्रजा वा दृप्ता जायन्ते। तत् किं मनुष्यास्तस्य राक्षसीं वाचमुदीरयन्ति?

अनुवाद – लव – इस सम्बन्ध में मेरी असहिष्णुता हो या न हो। मैं यह दूसरी बात पूछता हूँ कि राजा राम को हमने जितेन्द्रिय सुना है। न तो वे स्वयं गर्व करते हैं और न उनकी प्रजायें ही गर्वित होती हैं। तब क्यों उनके अधिकृत पुरुष राक्षसी वाणी का उच्चारण करते हैं?

टिप्पणी – दान्तम् – दम् + णिच् + क्त कर्मणि, तम्। राक्षसीम्–राक्षस इयम् इति रक्षस् + अण् स्त्रियाम्–राक्षसी, ताम्। उदीरयन्ति–उद् ईर् + णिच् (चुरादि) + लट्–अन्ति।

ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः।
सा योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य निष्कृतिः ॥30 ॥

अन्वय – ऋषयः उन्मत्तदृप्तयोः वाचं राक्षसीम् आहुः, सा सर्ववैराणां योनिः सा हि लोकस्य निष्कृतिः ॥30 ॥

अनुवाद – मुनिगण उन्मत्त एवम् अभिमानी व्यक्ति की वाणी को राक्षसी कहते हैं। क्योंकि वह वाणी सब प्रकार के विरोधों तथा लोकतिरस्कार की जननी है ॥30 ॥

इति ह स्म तां निन्दन्ति। इतरामभिष्टुवन्ति।

अनुवाद – इसलिए वे उस राक्षसी वाणी की निन्दा और दूसरी विनयगुणभूषित वाणी की प्रशंसा करते हैं।

कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं कीर्तिं सूते दुर्हृदो निष्प्रलाति।
शुद्धां शान्तां मातरं मङ्गलानां धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ॥31 ॥

अन्वय – कामं दुग्धे अलक्ष्मीं विप्रकर्षति कीतिं सूते सुर्हृदो निष्प्रलाति। धीराः सूनृतां वाचं शुद्धां शान्तां मङ्गलानां मातरं धेनुम् आहुः ॥31 ॥

अनुवाद – सत्य और प्रिय वाणी मनोरथ को पूर्ण करती है, दरिद्रता को हटाती है, कीर्ति को उत्पन्न करती है और शत्रुओं को विनष्ट करती ह। अतः सुधीगण सत्य और प्रिय वाणी को शुद्ध, कल्याणदात्री एवं काम-धेनुतुल्य कहते है ॥31।

टिप्पणी – दुर्हृदः=शत्रुओं को। दुष्टं हृदयं येषां तान्, 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' इति सूत्रेण हृदयस्रू हृद्भावः। सूनृताम्=सत्य और प्रिय। 'सूनृतं प्रिये' इत्यमरः। 'सूनृतं मङ्गलेऽपि स्यात् प्रियसत्ये वचस्यपि' इत्यजयः। इस पद्य में 'दुग्धे' इत्यादि अनेक क्रियाओं का एक ही कर्ता कारक होने से दीपक अलंकार है। 'धेनु' शब्द के धेनुसादृश्य अर्थ में पर्यवसान होने से असम्भवद्वस्तुसम्बन्धना निदर्शना अलंकार है। फिर इन दोनों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यह शालिनी छंद है ॥31 ॥

सुमन्त्रः – परिभूतोऽयं बत कुमारः प्राचेतसान्तेवासी। वदत्ययमभ्युपपन्नामर्षेण संस्कारेण।

अनुवाद – खेद है कि वाल्मीकि मुनि का शिष्य यह कुमार अनादृत हुआ है। अतएव यह क्रोधाविष्ट संस्कार अनुभूति से बोल रहा है।

लवः – यत पुनश्चन्द्रकेतो! वदसि 'किन्नु भवतस्तातप्रतापोत्कर्षेऽप्यमर्ष' इति, तत् पृच्छामि 'किं व्यवस्थितविषयः क्षत्रधर्मः'? इति।

लव – चन्द्रकेतु जी! आपने जो यह कहा कि पितृचरण के प्रभावोत्कर्ष के प्रति भी आप असहिष्णु हैं क्या? तो मैं पूछता हूँ–'क्या क्षात्र धर्म नियताश्रय अथात् एक ही आश्रम या व्यक्ति में रहने वाला है'?

सुमन्त्रः – नैव खलु जानासि देवमैक्ष्वाकम्, तद्विरमातिप्रसङ्गात्।

सुमन्त्र – इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न महाराज राम को तुम नहीं जानते हो। अतः अनिष्ट प्रसंग अर्थात् अनर्थक बातों से विरत हो जाओ।

सैनिकानां प्रमाथेन सत्यमोजायितं त्वया।
जामदग्न्यस्य दमने न हि निर्बन्धमर्हसि ।32 ॥

अन्वय – सैनिकानां प्रमाथेन त्वया सत्यम् ओजायितम्। हि जामदग्न्यस्य दमने निर्बन्धं न अर्हसि ॥32 ॥

अनुवाद – सैनिकों का दलन कर तुमने सचमुच ओजस्विता का परिचय दिया है, पर परशुराम का दमन करने वाले रामभद्र के प्रति तुम कठोर वचन बोलने योग्य नहीं हो ॥32 ॥

टिप्पणी – ओजायितम्=तेजस्वी के समान आचरण किया। ओजस् शब्दात् 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' इति सूत्रेण 'क्यङ् प्रत्ययः सलोपश्च, ततः 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' इत्यनेन दीर्घः। दमने = दमनकर्ता। दमयतीति दमनः, दम् धातोः नन्द्यादित्वात् ल्युप्रत्ययः वा बहुलप्रकारेण कर्तरि ल्युट्। इस पद्य में क्यङ्प्रत्ययप्रतिपादित उपमा अलंकार है ॥32 ॥

लवः – (सहासम्) आर्य! जामदग्न्यस्य दमनः स राजेति कोऽयमुच्चैर्वादः?

लवः – (हँसी के साथ) आर्य! 'वे राजा परशुराम का दमन करने वाले हैं, यह कौन सी उच्च स्वर से बोलने की बात है? (अर्थात् यह कोई महावीरत्व-द्योतक बात नहीं है।)

सिद्धं ह्येतद्वाचि वीर्यं द्विजानां
बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत् क्षत्रियाणाम्।
शस्त्रग्राही ब्राह्मणो जामदग्न्य-
स्तस्मिन्दान्ते का स्तुतिस्तस्य राज्ञः ॥33 ॥

अन्वय – एतत् सिद्धं हि द्विजानां वाचि वीर्यम्, यत् ब्राह्वोः वीर्ये तत् क्षत्रियाणाम्। जामदग्न्यः शस्त्रग्राही ब्राह्मणः, तस्मिन् दान्ते तस्य राज्ञः का स्तुतिः ॥33 ॥

अनुवाद – यह प्रसिद्ध ही है कि ब्राह्मणों की वाणी में शक्ति होती है और क्षत्रियों की भुजाओं में। परशुराम जी ब्राह्मण होकर शस्त्र धारण किये हुए हैं। अतः उनके दमन करने पर राजा राम की क्या प्रशसा होगी? ॥33 ॥

टिप्पणी – **द्विजानाम्** – द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जायन्ते इति द्विजाः, द्वि जन् + ड कर्तरि, तेषाम्। जामदग्न्यः-जमदग्नेर्गोत्रापत्यं पुमान् इति जमदग्नि + यञ्। इस पद्य में 'भुजाओं का जो बल है, वह क्षत्रियों का है'। इससे 'भुजाबल ब्राह्मणों का नहीं है' इस अर्थ की सिद्धि होने से आर्थी परिसंख्या अलंकार है। यह शालिनी छन्द है ॥33।

चन्द्रकेतुः – (सोन्माथमिव) आर्य सुमन्त्र! कृतमुत्तरोत्तरेण।

चन्द्रकेतु – (मार्मिक वेदना के साथ) आर्य सुमन्त्र! उत्तर-प्रत्युत्तर करना निष्प्रयोजन है अर्थात् अब इसकी बातों का उत्तर मत दीजिये। इस धृष्ट के साथ उत्तर-प्रत्युत्तर करने से हमारा ही हलकापन सिद्ध होगा।)

कोऽप्येष सम्प्रति नवः पुरुषावतारो
वीरो न यस्य भगवान् भृगुनन्दनोऽपि
पर्याप्तसप्तभुवनाभयदक्षिणानि ।
पुण्यानि तातचरितान्यपि यो न वेद॥34॥

अव्यय – सम्प्रति एषः कोऽपि नवः पुरुषावतारः यस्य भगवान् भृगुनन्दनोऽपि न वीरः। यः पर्याप्तसप्तभुवनाभयदक्षिणानि पुण्यानि तातचरितानि अपि न वेद॥34॥

अनुवाद – वर्तमान समय में यह कोई नया पुरुष अवतीर्ण हुआ है, जो भगवान् परशुराम को भी वीर नहीं मानता है और सातों भुवनों को अभयदान देने वाले पितृचरण रामचन्द्र के पवित्र चरित्रों को भी नहीं जानता है॥34॥

टिप्पणी – पुरुषावतारः–अवतरन्त्यनेन इति अव तृ घञ् करणे=अवतारः, पुरुषस्य अवतारः। यस्य–अत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठी। दक्षिणा=दान। 'दक्षिणा निशि दाने च' इति त्रिकाण्डशेषः। इस पद्य में रूपक और छकानुप्रास अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यह वसन्ततिलका छंद है॥34॥

लवः – को हि रघुपतेश्चरितं महिमानं च न जानाति? यदि नाम किञ्चिदस्ति वक्तव्यम् अथवा शान्तम्।

लव – रघुपति के चरित्र और महिमा को कौन नहीं जानता है? यदि कुछ कहने योग्य है... अथवा नहीं कहना चाहिए।

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते?
सुन्दस्त्रीमथनेप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते।
यानि त्रीणि कुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः॥35॥

अन्वय – ते वृद्धाः, विचारणायचरिताः न तिष्ठन्तु, किं वर्ण्यते? सुन्दस्त्रीमथनऽपि अकुण्ठयशसः ते लोके महान्तः हि, खरायोधने यानि त्रीणि कुतोमुखानि पदानि अपि आसन् वा इन्द्र सूनुनिधने यत् कौशलं तत्र अपि जनः अभिज्ञः॥35॥

अनुवाद – व राम वृद्ध हैं। अतएव उनके चरित्र की आलोचना नहीं करनी चाहिए। अथवा क्या कहें! सुन्द राक्षस की स्त्री ताड़का के वध करने पर भी अक्षुण्ण यश वाले राम महान् ही हैं। खर राक्षस के साथ युद्ध में वे जो तीन पग पीछे हटे थे अथवा बाली के मारने में उन्होंने जो कौशल दिखाया था, उससे भी लोग परिचित हैं॥35॥

टिप्पणी – सुन्दस्त्री=ताड़का के वध में धर्मशास्त्र के अनुसार स्त्रीहत्या सर्वथा वर्जित है–'अवध्याञ्च स्त्रियं प्राहुस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि' अतएव लव ने यह आक्षेप किया है। खरायोधने=खर के साथ युद्ध करने में आयोधन=युद्ध। 'जन्यमायोधनं युद्धं प्रधनं प्रविदारणम्' इत्यमरः। कहते हैं कि युद्ध में खर रामचन्द्रजी के बिल्कुल समीप आ गया था, जिससे उन्होंने तीन पग पीछे हट कर उसे मारा था। किन्तु 'न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन्' इस वचन के अनुसार उनका पीछे हटना उचित नहीं कहा जा सकता। यही बात ध्यान में रखकर लव ने यह आक्षेप किया है। इन्द्रसूनुनिधने=बाली के मारने में। सुग्रीव के साथ युद्ध करते हुए बाली को राम पेड़ ने की ओट से मारा था। इस प्रकार की हत्या को मनु ने निषिद्ध बताया है–

'नायुष्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम्।' लव के आक्षेप का यही तात्पर्य है। इस पद्य में वक्ष्यमाण आक्षेप अलंकार है। यह शार्दूलविक्रीडित छंद है ॥35॥

चन्द्रकेतुः – आः, तातापवादिन्! भिन्नमर्याद! अति हि नाम प्रगल्भसे।

चन्द्रकेतु – आह! पिता जी के निन्दक! मर्यादा का उल्लंघन करने वाले! बड़ी ढिठाई कर रहे हो।

लवः – अये! मय्येव भृकुटीमुखः संवृत्तः।

लव – अरे! यह तो मेरे ही ऊपर त्योरी चढ़ा रहा है।

सुमन्त्रः – स्फुरितमनयोः क्रोधेन। तथाहि–

सुमन्त्र – इन दोनों का क्रोध भभक उठा है। क्योंकि–

क्रोधेनोद्धतधूतकुन्तलभरः सर्वाङ्गजो वेपथुः
किंचित्कोकनदच्छदस्य सदृशे नेत्रे स्वयं रज्यतः।
धत्ते कान्तिमिदं च वक्त्रमनयोर्भङ्गेन भीमं भ्रुवा-
श्चन्द्रस्योद्भटलाञ्छनस्य कमलस्योद्भ्रान्तभृङ्गस्य च ॥36॥

अन्वय – क्रोधेन उद्धतधूतकुन्तलभरः सर्वाङ्गजो वेपथुः, स्वयं कोकनदच्छदस्य किञ्चित् सदृशे नेत्रे रज्यतः। भ्रुवोः भंगेन भीमम् अनयोः इदं वक्त्रं च उद्भटलाञ्छनस्य चन्द्रस्य उद्भ्रान्तभृङ्गस्य कमलस्य च कान्तिं धत्ते ॥36॥

अनुवाद – क्रोध से दोनों के केशपाश अत्यन्त हिल रहे हैं, सकल अंगों में कम्पन हो रहा है और स्वभाव से ही रक्त कमल के पत्र के किंचित् सदृश दोनों नेत्र लाल हो रहे हैं। दोनों भौहों की भंगिमा से भयानक इन दोनों के मुख स्पष्ट कलंक वाले चन्द्रमा और मँडराते हुए भ्रमरों से युक्त कमल की शोभा धारण कर रहे हैं॥ ॥36॥

टिप्पणी – इस पद्य में असम्भवद्वस्तुसम्बन्धरूप निदर्शना अलंकार है और कम्पन तथा आँखों की लालिमा आदि हेतुओं से क्रोध रूप साध्य ज्ञान होने के कारण अनुमान अलंकार भी है। फिर इन दोनों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार उत्पन्न होता है। यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥36॥

लवः – कुमार! कुमार! एह्येहि। विमर्दक्षमां भूमिमवतराव:।

लव – कुमार! कुमार! आओ, आओ! युद्ध के उपयुक्त भूमि में अर्थात् लड़ाई के मैदान में हम दोनों उतर पड़ें।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।) (अनन्तर सब चले गये।)

इति श्रीमहाकविभवभूतिविरचित उत्तररामचरितं कुमारविक्रमो नाम पञ्चमोऽङ्कः ॥5॥

4.3 महाकवि श्रीभवभूतिप्रणीतम् उत्तररामचरितम् षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विमानेनोज्ज्वलं विद्याधरमिथुनम्)

(तदनन्तर देदीप्यमान विद्याधर-दम्पती विमान से प्रवेश करते हैं।)

टिप्पणी – विद्याधरमिथुनम्=विद्याधर और विद्याधरी युगल। विद्याधर एक देवियोनि है, जो इच्छानुसार रूप धारण कर आकाश में विचरण करता है। विद्याधरी च विद्याधरश्च इति विद्याधरौ 'पुमान् स्त्रिया' इति सूत्रेण पुंल्लिङ्गैकशेषः।

चूँकि 'दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लव:' इस नाटकीय नियम के अनसार रंगमंच पर युद्ध का दृश्य दिखाना वर्जित है। अत: इस अंक में विद्याधर-दम्पती के संलाप द्वारा चन्द्रकेतु और लव के युद्ध की तथा रामचन्द्र जी के आने की सूचना दी जाती है। फलत: यह अंक मिश्र विष्कम्भक से आरम्भ होता है।

विद्याधरः – अहो खल्वनयोर्विकर्तनकुलकुमारयोरकाण्डकलहप्रचण्डयोरुद्द्योतितक्षत्रलक्ष्मीकयोरत्यद्भुतोद्भ्रान्तदेवासुराणि विक्रान्तविलसितानि। तथा हि प्रिये! पश्य–

अनुवाद – विद्याधर – ओह! असमय के युद्ध से अत्यन्त उग्र एवं क्षत्रियोचित श्री सम्पन्न इन दोनों सूर्यवंशीय बालकों के वीर-चरित्र देवदानवों को किंकर्तव्यविमूढ़ बना रहे हैं। प्रिये! देखो–

झणज्झणितकङ्कणक्कणितकिङ्किणीकं धनु-
र्ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलम् ।
वितत्य किरतोः शरानविरतं पुनः शूरयो-
र्विचित्रमभिवर्तते भुवनभीममायोधनम् ॥1॥

अन्वय – झणज्झणितकङ्कक्कणितकिङ्किणीकं ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलं धनु: वितत्य शरान् अविरतं किरतो: शूरयो: पुन: विचित्रं भुवनभीमम् आयोधनम् अभिवर्तते ॥1॥

अनुवाद – झनझनाते हुए कंकणों की भाँति शब्दयुक्त किंकिणियों वाले तथा मौर्वी एवं दोनों नोकों से भीषण कोलाहल करने वाले धनुष को फैलाकर लगातार बाण छोड़ते हुए दोनों वीरों का पुन: आश्चर्यजनक तथा संसार के लिए भयोत्पादक युद्ध सामने हो रहा है॥1॥

टिप्पणी – झणज्झणित – झणत्झण: सञ्जात: अस्य इति झणज्झण + इतच् तदस्य संजातं...सूत्रेण इतच्। क्वणित–क्वण् + क्त। इस श्लोक में उपमा और वृत्त्यनुप्रास अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार पृथ्वी छंद है॥1॥

जृम्भितं च विचित्राय मङ्गलाय द्वयोरपि।
स्तनयित्नोरिवामन्ददुन्दुभेर्दुन्दुमायितम् ॥2॥

अन्वय – द्वयो: अपि विचित्राय मङ्गलाय स्तनयित्नो: इव अमन्ददुन्दुभे: दुन्दुमायित जृमिभतम्॥2॥

अनुवाद – दोनों लव और चन्द्रकेतु के अद्भुत मंगल के लिए बादल के समान गम्भीर नाद करने वाले विशाल नगाड़े का 'धम धम' शब्द उत्पन्न हो रहा है॥2॥

टिप्पणी – स्तनयित्रोः – स्तन् + णिच् + इत्नुच् कर्तरि (उणादि), तस्य। दुन्दुमायितम्–दुम् (अव्यक्तानुकरण), दुम् इति शब्दकरणम् इत्यर्थ:, दुम् + डाच्, द्वित्व + क्यष् + क्त भावे। यहाँ उपमा अलंकार है॥2॥

तत् प्रवर्त्यतामनयो: प्रवीरयोरनवरतमविरलमिलितविकचकनककमलकमनीयसंहतिरमरतरुतरुणमणिमुकुलनिकरमकरन्दसुन्दर: पुष्पनिपात:।

अनुवाद – इसलिए इन दोनों शूरवीरों के ऊपर घने, मिले तथा खिले हुए स्वर्णकमलों की मनोरम पंक्ति से शोभित हो देववृक्षों (पारिजात आदि) के नवीन मणिमय कलिकासमूह के पराग से सुन्दर पुष्प-वृष्टि आरम्भ करो।

विद्याधरी – तत् किमित पुर आकाशं दुर्दर्शतरलतडिच्छटाकडारमपरमिव झटिति संवृत्तम्?

अनुवाद – तो क्या कारण है कि सामने आकाश, जो कठिनाई से देखने योग्य एवं चंचल विद्युत्प्रभा के कारण पिंगल वर्ण ललाई लिये भूरे रंग का था, सहसा दूसरी वस्तु की तरह दिखाई पड़ने लगा है?

विद्याधरः – तत् किन्नु खल्वद्य?

विद्याधर – तो क्या आज?

त्यष्ट्रयन्त्र भ्रमिभ्रान्तमार्तण्डज्योतिरुज्वलः।
पुटभेदो ललाटस्थनीललोहितचक्षुषः॥3॥

अन्वय – ललाटस्थनीललोहितचक्षुषः ललाटस्थं भालगतं, नीललोहितस्य महादेवस्य यत् चक्षुः नेत्रं तस्य, त्वष्ट्रयन्त्रभ्रमिभ्रान्तमार्तण्डज्योतिरुज्वलः त्वष्टुः विश्वकर्मणः यन्त्रस्य शारणयन्त्रस्य भ्रमिभिः आवर्तनैः भ्रान्तस्य घूर्णितस्य मार्तण्डस्य सूर्यस्य यत् ज्योतिः तेजः तदिव, उज्वलः देदीप्यमानः, पुटभेदः पुटयोः आच्छादनयोः भेदः अपसारणं जातः किम्?॥3॥

अनुवाद – क्या शंकर के भाल-स्थित नेत्र का विश्वकर्मा के शाणयन्त्र के चक्करों से घूमे हुए अर्थात् शणयन्त्र पर चढ़ाकर खरादे हुए सूर्य की ज्योति के समान जाज्वल्यमान तेज निकला है?॥3॥

टिप्पणी – नीललोहित=शिव। नीलः कण्ठे लोहितः जटासु यः स नीललोहितः, जिनका कंठ नीला हो जटा लाल हो। त्वष्ट्रयन्त्र.=एक बार सूर्य के प्रखर तेज का सहन न कर सकने के कारण उनकी पत्नी संज्ञा ने अपने पिता विश्वकर्मा से सूर्य का तेज तीक्ष्ण कर देने के लिए प्रार्थना की थी। तदनन्तर सूर्य की आज्ञा से विश्वकर्मा ने उन्हें अपने शणयन्त्र पर चढ़ाकर घुमाते-घुमाते तेज घटा दिया था। इस पद्य में लुप्तोपमा और शुद्ध सन्देह अलंकार है॥3॥

(विचिन्त्य) आं ज्ञातम्। जातक्षोभेण चन्द्रकेतुना प्रयुक्तमप्रतिरूपमाग्नेयास्त्रम्, यस्यायमग्निवच्छरसम्पातः। सम्प्रति हि–

अनुवाद – (सोचकर) अच्छा, समझ गया। क्षुब्ध होकर चन्द्रकेतु ने अनुपम आग्नेय अस्त्र छोड़ा है, जिससे यह अग्निसदृश बाणों की धारा है। क्योंकि इस समय–

अवदग्धकर्बुरितकेतुचामरैरपयातमेव हि विमानमण्डलैः।
दहति ध्वजांशुकपटावलीमिमां नवकिंशुकद्युतिसविभ्रमः शिखी॥4॥

अन्वय – अवदग्धकर्बुरितकेतुचामरैः विमानमण्डलैः अपयातम् एव हि। नवकिंशुकद्युतिसविभ्रमः शिखी इमां ध्वजांशुकपटावलीं दहति॥4॥

अनुवाद – कुछ जल जाने के कारण रंग-बिरंगी पताकाओं तथा चामरों वाले विमान निश्चित रूप से भाग गये हैं और ताजे पलाश की कान्ति के विलास के सदृश अग्नि ध्वजों के सूक्ष्म एवं मनोहर वस्त्रों की इस कतार को भस्मसात् कर रही है॥4॥

टिप्पणी – अवदग्ध = किचिन्मात्र जले हुए। यहाँ 'व्रीहीन् अवहन्ति' में की तरह 'अव' उपसर्ग किंचिदर्थक है।–कर्बुरितानि = चितकबरे किये हुए। 'चित्रं किर्मीरकल्माषशवलैताश्च कर्बुरे' इत्यमरः। कर्बुर + णिच् + क्तः। अशुंक = सूक्ष्म वस्त्र। 'उत्तरीये वस्त्रमाने सूक्ष्मवस्त्रेऽपि चांशुकम्' इति रत्नमाला। इस पद्य में उपमा अलंकार है।

आश्चर्यम्! प्रवृत्त एवायमुच्चण्डवज्रखण्डावस्फोटपटुरटत्स्फुलिङ्गगुरुत्तालतुमुललेलिहानोज्वलज्वालासम्भारभैरवो भगवानुषर्बुधः। प्रचण्डश्चास्य सर्वतः सम्पातः। तत् प्रियामंशुकेनाच्छाद्य सुदूरमपसरामि। (तथा करोति।)

अनुवाद – आश्चर्य है! अतिभीषण वज्र-खण्डों के विदारण में पटु तथा शब्दकारी स्फुलिंगों चिनगारियों के कारण महान् और विकराल, धनी एवं बारम्बार ग्रास करने वाली प्रदीप्त ज्वालाओं के समूह से भयावह य भगवान् अग्निदेव प्रकट हुए हैं। इनका तीव्रतापूर्वक प्रसरण सब दिशाओं में प्रचंड रूप धारण कर रहा है। इसलिए प्रियतमा को वस्त्र से आच्छादित करके बहुत दूर चला जाता हूँ। (वैसा ही करता है।)

टिप्पणी – लेलिहाना:–पुन: पुन: लिहन्ति इति लिह् + यङ् + शानच्। उषर्बुध: = अग्नि। 'शौचिष्केश उषर्बुध:' इत्यमर:। उषसि सन्ध्यायाम् बुध्यते प्रकाशते, यत: आहिताग्नय: अग्निम् उषसि प्रादुष्कुर्वन्ति। 'उष: प्रभाते सन्ध्यायाम्' इति विश्व:। उषस् बुध् + क:, 'अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफ:' इति रेफादेश:।

विद्याधरी – दिष्ट्या एतेन विमलमुक्ताशैलशीतलस्निग्धमसृणमांसलेन नाथदेहस्पर्शेनानन्दसन्दलित-घूर्णमानवेदनाया अर्धोदित एवान्तरितो मे सन्ताप:।

अनुवाद – विद्याधरी – दैवयोग से पतिदेव के विमल मुक्ता-गिरि के समान शीतल, स्निग्ध कोमल तथा मांसल शरीर के स्पर्श ने मेरी फैलती हुई वेदना को आनन्द द्वारा दूर करके अर्धोत्पन्न दाह का भी शमन कर दिया।

विद्याधरः – अयि! किमत्र मया कृतम्? अथवा।

विद्याधर – अरी! इसमें मैंने क्या किया? अथवा!

न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ।।5 ।।

(यह श्लोक द्वितीय में भी पठित है। अत: वहीं इसका अन्वय आदि देखना चाहिए।)

विद्याधरी – कथमविरलविलोलघूर्णमानविद्युल्लताविलासमांसलैर्मत्तमयूरकण्ठश्यामलैरवस्तीर्यते नभोऽङ्गणं जलधरैः?

अनुवाद – विद्याधरी – सतत चंचल एवं घूमती हुई विद्युत के प्रकाश से शोभित तथा मस्त मयूरों के कंठ के समान श्यामवर्ण मेघ आकाश प्रांगण को क्यों व्याप्त कर रहे हं?

विद्याधरः – कुमारलवप्रयुक्तवारुणास्त्रप्रभाव: खल्वेष:। कथमविरलप्रवृत्तवारिधारासम्पातै: प्रशान्तं पावकास्त्रम्।

अनुवाद – विद्याधर – निश्चय ही यह कुमार लव के छोड़े हुए वारुणास्त्र का प्रभाव है। कैसे निरन्तर उत्पन्न होने वाली जलधाराओं के गिरने से आग्नेयास्त्र बिल्कुल शान्त हो गया है।

विद्याधरी – प्रियं मे, प्रियं मे।

विद्याधरी – यह दारुण आग्नेय अस्त्र का प्रशमन मुझे प्रिय है, मुझे प्रिय है।

विद्याधरः – हन्त भो:! सर्वमतिमात्रं दोषाय। यत् प्रलयवालोत्क्षोभगम्भीरगुलुगुलायमानमेघमे-दुरिताान्धकारनीरंध्रनद्धमिव एकवारविश्वग्रसन - विकचविकरालकालमुखकन्दरविवर्तमानमिव युगान्तयोगनिद्रानिरुद्धसर्वद्वारनारायणोदर-निविष्टमिव भूतं विपद्यते। साधु चन्द्रकेतो! साधु। स्थाने वायव्यमस्त्रमीरितम्। यत:–

अनुवाद – विद्याधर – अरे कष्ट है! सभी वस्तुएँ अतिमात्रा में अनिष्टकर होती हैं। जिसलिए प्रलयकालीन पवन द्वारा विक्षुब्ध, गम्भीर एवं गुलगुल शब्द करने वाले बादलों के कारण घने अंधकार से बँधे हुए की तरह, एक ही बार में जगत् को लील जाने के लिए फैलाये हुए भयानक तथा गुफा के सदृश काल के मुख में अवस्थित होते हुए की तरह और प्रलयकाल में योगनिद्रा द्वारा मुख, नासिका आदि निर्गम द्वारों को आवृत्त किये हुए महाविष्णु के उदर में विद्यमान की तरह प्राणियों का समूह विपत्तिग्रस्त हो रहा है। वाह! चन्द्रकेतो! वाह! वायव्य अस्त्र छोड़कर आपने अच्छा किया। क्योंकि–

टिप्पणी – अतिमात्रम् – मात्रा का अतिक्रमणकरने वाला। अतिक्रान्तं मात्राम्–इति अतिमात्रम्। 'अत्यादय: क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इत्यनेन समास:। भूतम्=प्राणि-समूह। 'जात्याख्यायामेकस्मिन्

बहुवचनमन्यतरस्याम्' इत्यनेन जातवेकवचनम्'। वायव्यम् = वायुदेवतासम्बन्धी। वायु + यत् 'वाय्वृतुपित्रषसो यत्' इत्यनेन। स्थाने=युक्त, संगत। 'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इत्यमरः।

विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि।
ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि प्रविलयः कृतः ॥6॥

अन्वय – विद्याकल्पेन मरुता भूयसाम् अपि मेघानां विवर्तानां ब्रह्मणि इव क्वापि प्रविलयः॥6॥

अनुवाद – जैसे तत्त्वज्ञान जगत्प्रपञ्चों घट, पट आदि पदार्थों को ब्रह्म में लीन कर देता है उसी तरह वायु अर्थात् वायव्यास्त्र ने प्रचुर मेघों को कहीं में विलीन कर दिया है॥6॥

टिप्पणी – इस पद्य में दो उपमा अलंकारों में परस्पर सापेक्ष्य भाव होने से संकर अलंकार है॥6॥

विद्याधरी – नाथ! क इदानीमेष ससम्भ्रमोत्क्षिप्त करभ्रमदुत्तरीयाञ्चलो दूरत एव मधुरस्निग्धवचन-प्रतिषिद्धयुद्धव्यापार एतयोरन्तरे विमानवरमवतारयति?

अनुवाद – विद्याधरी – स्वामिन्! इस समय यह कौन शीघ्रतापूर्वक उठाये हुए हाथ से दुपट्टे के छोर को हिला कर दूर से ही मधुर एवं स्नेहपूर्ण वचन द्वारा युद्ध-कार्य का निषेध करके इन दोनों लव और चन्द्रकेतु के मध्य में पुष्पक विमान को उतार रहा है?

विद्याधरः – (दृष्ट्वा) एष शम्बूकवधान्निवृत्तो रघुपतिः।

विद्याधर – (देखकर) ये तो शम्बूक का वध करके लौटे हुए श्रीराम हैं।

टिप्पणी – शम्बूकवधात् – शम्बूकवधं विधाय इति ल्यब्लोपे कर्मणि पञ्चमी।

शान्तं महापुरुषसंगदितं निशम्य
तद्गौरवात्समुपसंहृतसम्प्रहारः।
शान्तो लवः प्रणत एव च चन्द्रकेतुः
कल्याणमस्तु सुतसङ्गमनेन राज्ञः॥7॥

अन्वय – शान्तं महापुरुषसंगदितं निशम्य तद्गौरवात् समुपसंहृतसम्प्रहारः लवः शान्तः, चन्द्रकेतुश्च प्रणत एव, सुतसङ्गमनेन राज्ञः कल्याणम् अस्तु॥7॥

अनुवाद – महापुरुष का शान्तिपूर्ण वाक्य सुनकर उनके गौरव के कारण युद्ध का परित्याग करके लव शान्त हो गये हैं और चन्द्रकेतु रामचन्द्रजी को अभिवादन कर रहे हैं। पुत्रों के समागम से राजा राम का मंगल हो॥7॥

तदितस्तावदेहि। (इति निष्क्रान्तौ)

इसलिए इधर से आओ। (यह कहकर दोनों चले जाते हैं)

(विष्कम्भकः।) (विष्कम्भक समाप्त।)

(ततः प्रविशति रामो लवः प्रणतश्चन्द्रकेतुश्च)

(तदनन्तर राम, लव और प्रणाम करते हुए चन्द्रकेतु प्रवेश करते हैं।)

रामः – (पुष्पकादवतरन्)

राम – (पुष्पकविमान से उतरते हुए)

दिनकरकुलचन्द्र चन्द्रकेतो!
सरभसमेहि दृढं परिष्वजस्व।

तुहिनशकलशीतलैस्तवाङ्गैः ।
शममुपयातु ममापि चित्तदाहः ॥8 ॥

अन्वय – दिनकरकुलचन्द्र चन्द्रकेतो:! सरभसम् एहि, दृढं परिष्वजस्व। तुहिनशकलशीतलै: तव अङ्गै: मम चित्तदाह: अपि शमम् उपयातु ॥8 ॥

अनुवाद – सूर्यवंश के चन्द्रतुल्य आह्लादकारक! चन्द्रकेतो! वेग से आओ और गाढ़ आलिंगन करो। ताकि हिम-खंड की भाँति शीतल तुम्हारे अंगों से मेरे मन का ताप भी शान्त हो ॥8 ॥

टिप्पणी – सरभसम् – वेग के साथ। 'रभसो हर्षवेगयो:' इति मेदिनी। इस पद्य में उपमा, अर्थापत्ति और लाटानुप्रास अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है ॥8 ॥

(उत्थाप्य सस्नेहास्त्रं परिष्वज्य) अप्यनामयं नूतनदिव्यास्त्रायोधनस्य तव?

(उठाकर स्नेह और अश्रुपात के साथ आलिंगन करके) नवीन दिव्य अस्त्र से युद्ध करने वाले तुम स्वस्थ तो हो न?

चन्द्रकेतुः – अभिवादये। कुशलमत्यद्भुतप्रियवयस्यलाभाभ्युदयेन। तद्विज्ञापयामि मामिव विशेषेण स्निग्धेन चक्षुषा पश्यत्वमुं वीरमनरालसाहसं तात:।

अनुवाद – चन्द्रकेतु – मैं प्रणाम करता हूँ। अत्यन्त विस्मयकारक कार्य करने वाले प्रिय मित्र की प्राप्ति रूप अभ्युदय से मेरा कुशल है। अत: निवेदन करता हूँ कि पितृचरण जैसे आप मुझे देखते हैं उसी तरह विशेष स्नेहपूर्ण दृष्टि से कुटिलतारहित दुष्कर कर्म करने वाले इस वीर को देखें।

राम: – (लवं निरूप्य) दिष्ट्या अतिगम्भीरमधुरकल्याणाकृतिरयं वयस्यो वत्सस्य।

अनुवाद – राम – (लव को विशेष रूप से देखकर) हर्ष की बात है कि तुम्हारे इस मित्र की आकृति अत्यन्त गम्भीर, सुन्दर और मंगलसूचक है।

त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः
क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै।
सामर्थ्यानामिव समुदयः सञ्चयो वा गुणाना-
माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः ॥9 ॥

अन्वय – लोकान् त्रातुं कायवान् परिणत: अस्त्रवेद इव, ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै तनुं श्रित: क्षात्रो धर्म इव, सामर्थ्यानां समुदय इव, गुणानां सञ्चयो वा, जगत्पुण्यनिर्माणराशि: इव आविर्भूय स्थित: ॥9 ॥

अनुवाद – यह लोकों की रक्षा करने के लिए शरीरधारी के रूप में परिणत धनुर्वेद के समान, वेद रूप रत्न-राशि की रक्षा के लिए मूर्तिमान् क्षात्र धर्म के समान, शक्तियों के समुदाय के समान, शौर्य, धैर्य आदि गुणों के पुञ्ज के समान और लोकों के पवित्र कार्यों के समूह के समान प्रकट होकर विद्यमान है ॥9 ॥

टिप्पणी – इस पद्य में पाँचों गुणोत्प्रेक्षा अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यहाँ मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥9 ॥

लवः – (स्वगतम्) अहो! पुण्यानुभावदर्शनोऽयं महापुरुष:।

लव – (मन में) अहा! इन महापुरुष का दर्शन पवित्र है।

आश्वासस्नेहभक्तीनामेकमायतनं महत्।
प्रकृष्टस्येव धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसञ्चर: ॥10 ॥

अन्वय – आश्वासस्नेहभक्तीनाम् एकं महत् आयतनं प्रकृष्टस्य धर्मस्य मूर्तिसञ्चर: प्रसाद इव ॥10 ॥

अनुवाद – ये सान्त्वना, स्नेह और भक्ति के मुख्य एवं महान् आधार हैं तथा उत्कृष्ट धर्म ही देहधारी प्रसन्नता के समान हैं॥10॥

टिप्पणी – इस पद्य में उत्प्रेक्षा अलंकार है॥10॥

आश्चर्यम्!

आश्चर्य है!

विरोधी विश्रान्तः प्रसरति रसो निर्वृतिघन-
स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति विनयः प्रह्वयति माम्।
झटित्यस्मिन् दृष्टे किमिति परवानस्मि, यदि वा
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः॥11॥

अन्वय – अस्मिन् विरोधो विश्रान्तः निर्वृतिघनो रसः प्रसरति, तत् औद्धत्यं क्वापि व्रजति, विनयो मां प्रह्वयति, किमिति झटिति परवान् अस्मि, यदि वा हि तीर्थानाम् इव महतां कोऽपि महार्घः अतिशयः॥11॥

अनुवाद – इन महापुरुष का दर्शन होने पर विरोध शान्त हो गया, आनन्दपूर्ण अनुराग फैल रहा है, यह युद्धकालिक उच्छृंखलता कहीं चली गयी, विनय मुझे नम्र बना रहा है और मैं न जाने क्यों परतन्त्र हो गया हूँ? अथवा निश्चय ही तीर्थों की तरह महापुरुषों का कोई अमूल्य प्रभाव होता है॥11॥

टिप्पणी – रस=अनुरागः। 'गुणे रागे द्रवे रसः' इत्यमरः। प्रह्व=नम। 'प्रह्वो नम्रः' इत्युणादिकोशः। परवान्=पराधीन। 'परतन्त्रः पराधीनः परवान् नाथवानपि' इत्यमरः। अर्घ=मूल्य। 'मूल्ये पूजाविधावर्घः' इत्यमरः। इस पद्य में उपमा, समुच्च और अर्थान्तरन्यास अलंकार हैं। यह शिखरिणी छन्द है॥11॥

रामः – तत् किमयमेकपद एव मे दुःखविश्रामं ददात्युपस्नेहयति च कुतोऽपि निमित्तादन्तरात्मानम्? अथवा 'स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष' इति विप्रतिषिद्धमेतत्।

अनुवाद – राम – क्यों यह बालक एक क्षण में ही दुःख को मिटा रहा है और किसी कारण से अन्तरात्मा को स्नेहार्द कर रहा है? अथवा 'स्नेह भी हेतुसापेक्ष होता है' यह कहना असंगत है अर्थात् स्नेह किसी हेतु की अपेक्षा नहीं रखता है, अपितु वह स्वाभाविक होता है।

टिप्पणी – दःखविश्रामम्=दुःखनिवृत्ति। विश्रामः शब्द की व्युत्पत्ति=श्रम एव श्रामः स्वार्थे अण् प्रत्ययः, विशिष्टः श्रामः विश्रामः गतिसमासः। वि श्रम् + घञ् करने पर 'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः' सूत्र से वृद्धि का निषेध हो जायगा।

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः॥12॥

अन्वय – आन्तरः कोऽपि हेतुः पदार्थान् व्यतिषजति, प्रीतयः बहिरुपाधीन् खलु न संश्रयन्ते। हि पतङ्गस्य उदये पुण्डरीकं विकसति, च हिमरश्मौ उद्गते चन्द्रकान्तो द्रवति॥12॥

अनुवाद – कोई अन्तर्वर्ती कारण पदार्थों को परस्पर मिलाता है, किन्तु प्रीति निश्चित रूप से बाहरी सम्पर्कों की अपेक्षा नहीं करती है। क्योंकि सूर्य के उदित होने पर कमल खिलता है और चन्द्रमा के उदय होने पर चन्द्रकान्त मणि पिघलता है॥12॥

टिप्पणी – इस पद्य में दो विशेषों स सामान्य का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा मालिनी छंद है॥12॥

लवः – चन्द्रकेतो! क एते?

लव – चन्द्रकेतु जी! ये कौन हैं?

चन्द्रकेतुः – प्रियवयस्य! ननु तातपादाः।

चन्द्रकेतु – प्रिय मित्र! ये पूज्य पिताजी हैं।

लवः – ममापि तर्हि धर्मतस्तथैव, यतः प्रियवयस्येति भवतोक्तम्। किन्तु चत्वारः किल भवन्त्येवंव्यपदेशभागिनस्तत्रभवन्तो रामायणकथापुरुषाः। तद्विशेषं ब्रूहि।

अनुवाद – लव – तब लोकाचार रूप धर्म से ये मेरे भी पिता ही हैं, जिसलिए कि आपने मुझे 'प्रिय मित्र' कहकर सम्बोधित किया है। किन्तु रामायण-कथा के चार पूजनीय पुरुष आपके 'पिता' शब्द से व्यवहार करने योग्य हैं। इसलिए विशेषरूप से बताइये अर्थात् उनमें से ये कौन हैं, यह निदेश कीजिये।

चन्द्रकेतुः – ज्येष्ठतात इत्यवेहि।

चन्द्रकेतु – ये बड़े पिता जी हैं, यह समझिये।

लवः – (सोल्लासम्) कथं रघुनाथ एव? दिष्ट्या सुप्रभातमद्य, यदयं देवो दृष्टः। (सविनयं निर्वर्ण्य) तात! प्राचेतसान्तेवासी लवोऽभिवादयते।

लव – (आनन्द के साथ) क्या रघुनाथ जी हैं? भाग्य से आज (मेरे लिए) सुप्रभात है, जिससे इन महाराज के दर्शन हुए। (विनय के साथ अवलोकन करके) तात! वाल्मीकि मुनि का शिष्य लव आपको प्रणाम करता है।

रामः – आयुष्मन्! एह्येहि। (इति सस्नेहमालिङ्ग्य) अयि वत्स! कृतमत्यन्तविनयेन। अनेकवारमपरिश्लथं परिरम्भस्व।

राम – चिरञ्जीव! आआ, आओ। (स्नेहपूर्वक आलिंगन करके) हे वत्स! अत्यंत विनय की आवश्यकता नहीं है। अनेक बार दृढ़तापूर्वक आलिंगन करो।

परिणतकठोरपुष्करगर्भच्छदपीनमसृणसुकुमारः।
नन्दयति चन्द्रचन्दननिष्यन्दजडस्तव स्पर्शः ॥13॥

अन्वय – परिणतकठोरपुष्करगर्भच्छदपीनमसृणसुकुमारः चन्द्रचन्दननिष्यन्दजडः तव स्पर्शः नन्दयति ॥13॥

अनुवाद – पूर्णविकसित कमल के भीतरी पत्र के समान पुष्ट, चिकना तथा कोमल और चंद्रमा एवं चंदन के द्रव की भाँति शीतल तुम्हारा शरीर-स्पर्श मुझे नन्दित कर रहा है॥13॥

टिप्पणी – इस पद्य में दो उपमा अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संतुष्टि अलंकार है। यह आर्या छंद है॥13॥

लवः–(स्वगतम्) ईदृशो मां प्रत्यमीषामकारणस्नेहः। मया पुनरेभ्य एवाभिद्रोग्धुमज्ञेनायुधपरिग्रहः कृतः। (प्रकाशम्) मृष्यन्तां त्विदानी लवस्य बालिशतां तातपादाः।

अनुवाद–लव–(मन में) मेरे प्रति इन लोगों का ऐसा अकारण स्नेह है। किन्तु मूर्ख होकर मैंने इन्हीं से द्रोह करने के लिए हथियार उठा लिया। (प्रकट) अब पितृचरण लव की मूर्खता को क्षमा कर दें।

टिप्पणी–एभ्यः–यहाँ 'तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या' से चतुर्थी हुई। बालिशताम् = मूर्खता को। 'मूर्खवैधेयबालिशाः' इत्यमरः। मृष्यन्ताम्–दैवादिक मृष् तितिक्षायाम् धातु के लोट् लकार का यह रूप है।

रामः–किमपराद्धं वत्सेन?

राम—वत्स ने क्या अपराध किया?

चन्द्रकेतुः—अश्वानुयात्रिकेभ्यस्तातप्रतापाविष्करणमुपश्रुत्य वीरायितमनेन।

अनुवाद—चन्द्रकेतु—यज्ञिय अश्व के अनुगामी दल के पिता जी के पराक्रम की घोषणा सुनकर इन्होंने वीर की तरह आचरण किया।

रामः — नन्वयमलङ्कारः क्षत्रियस्य।

राम — यह तो क्षत्रिय का आभूषण ही है।

न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते
स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः।
मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः
किमाग्नेया ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति॥14॥

अन्वय — तेजस्वी अपरेषां प्रसृतं तेजः न विषहते, तस्य स प्रकृतिनियतत्वात् अकृतकः स्वो भावः। यदि देवो दिनकरः मयूखैः अश्रान्तं तपति आग्नेयो ग्रावा निकृत इव किं तेजांसि वमति?॥14॥

अनुवाद — तेजस्वी पुरुष दूसरों के फैले हुए तेज का सहन नहीं करता है। क्योंकि वह असहनशीलता उसका अपना **स्वभाव** - सिद्ध धर्म है। यदि सूर्यदेव अपनी किरणों से जगत् को निरन्तर सन्तप्त करते हैं तो सूर्यकान्त मणि क्यों अपमानित हुए की भाँति आग उगलता है? अर्थात् जैसे सूर्य-किरणों से सन्तप्त होने पर सूर्यकान्त मणि अग्नि उत्पन्न करता है उसी तरह इस वीर ने हमारे प्रताप से सन्तप्त होकर अपना सामर्थ्य प्रकट किया है॥14॥

टिप्पणी — इस पद्य में विशेष द्वारा सामान्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है और 'निकृत इव' में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। यह शिखरिणी छंद है॥14॥

चन्द्रकेतुः — अमर्षोऽप्यस्यैव शोभते महावीरस्य। पश्यन्तु हि तातपादाः। प्रियवयस्यनियुक्तेन जृम्भकास्त्रेण विक्रम्य स्तम्भितानि सर्वसैन्यानि।

अनुवाद—चन्द्रकेतु — क्रोध या असहिष्णुता भी इसी महावीर को शोभा दे रही है। पिता जी देखें। प्रिय मित्र के छोड़े हुए जृम्भकास्त्र ने पराक्रम करके सम्पूर्ण सेना को जड़ बना दिया है।

रामः — (सविस्मयखेदं निर्वर्ण्य स्वगतम्) अहो, वत्सस्य ईदृशः प्रभावः! (प्रकाशम्) वत्स! संह्रियतामस्त्रम्। त्वमपि चन्द्रकेतो! निर्व्यापारतया विलक्षाणि सान्त्वय बलानि।

राम— (आश्चर्य और खेद के साथ देखकर मन में) अहा! वत्स का ऐसा प्रभाव! (प्रकट) वत्स! अस्त्र को लौटा लो। चन्द्रकेतो! तुम भी निष्क्रियता के कारण विस्मयापन्न सैनिकों को आश्वस्त करो।

(लवः प्रणिधानं नाटयति।) (लव समाधि के ध्यान का अभिनय करता है)

चन्द्रकेतुः—यथानिर्दिष्टम्। (इति निष्क्रान्तः।)

चन्द्रकेतु—जैसी आज्ञा। (यह कह कर चला जाता है।)

लवः—तात! प्रशान्तमस्त्रम्।

लव—तात! अब शान्त हो गया।

रामः—सरहस्यप्रयोगसंहारजृम्भकास्त्राणि दिष्ट्या वत्सस्यापि सम्पद्यन्ते।

अनुवाद—हर्ष की बात है कि वत्स भी गोपनीय मंत्र समेत जृम्भक अस्त्र को चलाना तथा लौटाना जानता है।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा परःसहस्रं शरदस्तपांसि।
एतान्यपश्यन्गुरवः पुराणाः स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि॥15॥

(यह श्लोक प्रथम अंक के 15वें श्लोक के रूप में है अतः इसे वहीं देखें।)

अथैतामस्त्रमन्त्रोपनिषदं भगवान् कृशाश्वः परःसहस्राधिकसंवत्सरपरिचर्यानिरतायान्तेवासिने कौशिकाय प्रोवाच। स भगवान् मह्यमिति गुरुपूर्वानुक्रमः। कुमारस्य कृतः सम्प्रदायः? इति पृच्छामि।

अनुवाद—इस जृम्भकास्त्र की मन्त्रमयी गुह्यविद्या को भगवान् कृशाश्व ने एक हजार वर्षों से अधिक काल तक परिचर्या में निरत रहने वाले शिष्य विश्वामित्र जी को बताया था। भगवान् विश्वामित्र ने मुझे उसका उपदेश किया। इस प्रकार इसके बारे में गुरुओं की प्राचीन उपदेशपम्परा अर्थात् सम्प्रदाय है। तुम्हें उपदेशपरम्परा कहाँ से प्राप्त हुई है? यह मैं पूछता हूँ।

लवः—स्वतःप्रकाशान्यावयोरस्त्राणि।

लव—ये अस्त्र अपने आप हम दोनों को प्रकाशित हुए हैं अर्थात् हम दोनों के हृदय में आविर्भूत हुए हैं।

रामः—(विचिन्त्य) किं न सम्भाव्यते? प्रकृष्टपुण्योपादानकः कोऽपि महिमा स्यात्। द्विवचनं तु कथम्?

अनुवाद—राम—(सोच कर) क्या नहीं सम्भव है? अत्यन्त पुण्य से उत्पन्न होने वाली कोई महिमा होगी? किन्तु (हम दोनों, यह कहकर) द्विवचन का प्रयोग क्यों?

लवः—भ्रातरावावां यमौ।

लव—हम दोनों जुड़वे भाई हैं।

रामः—स तर्हि द्वितीयः क?

राम—तो वह दूसरा भाई कहाँ है?

(नेपथ्ये = नेपथ्य में)

दण्डायन!

आयुष्मतः किल लवस्य नरेन्द्रसैन्यै-
रायोधनं ननु किमात्थ सखे तथेति।
अद्यास्तमेतु भुवनेषु च राजशब्दः
क्षत्रस्य शस्त्रशिखिनः शममद्य यान्तु॥16॥

अन्वय—ननु आयुष्मतः लवस्य नरेन्द्रसैन्यैः आयोधनं किल, सखे? किम् आत्थ,–तथा इति? अद्य भुवनेषु राजशब्दः अस्तम् एतु, क्षत्रस्य शस्त्रशिखिनः अद्य शमं यान्तु॥16॥

अनुवाद—दण्डायन! क्या राज-सैनिकों के साथ आयुष्मान् लव का युद्ध छिड़ गया है? मित्र! तुम क्या कहते हो? क्या यह सत्य है? आज तीनों लोक से 'राजा' शब्द लुप्त हो जाय और क्षत्रिय जाति का शस्त्र रूप अग्नि शान्त हो जाय॥16॥

टिप्पणी—इस पद्य में रूपक अलंकार है। यह वसन्ततिलका छंद है॥16॥

रामः—

अथ कोऽयमिन्द्रमणिमेचकच्छविर्ध्वनिनैव दत्तपुलकं करोति माम्।
नवनीलनीरधरधीरगर्जितक्षणबद्धकुड्मलकदम्बडम्बरम्॥17॥

अनुवाद–राम–नीलकान्त मणि के सदृश श्यामल कान्ति युक्त यह कौन शब्दमात्र से मुझको नवीन और नील बादल के गम्भीर गर्जन के समय कली धारण करने वाले कदम्बवृक्ष की तरह रोमांचित कर रहा है॥17॥

टिप्पणी–इस पद्य में दो उपमा अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार है। यह मञ्जुभाषिणी छंद है॥17॥

लवः–अयमसौ मम ज्यायानार्यः कुशो नाम भरताश्रमात् प्रतिनिवृत्तः।

लव–ये मेरे ज्येष्ठ भ्राता आर्य कुश भरत मुनि के आश्रम से लौटे हैं।

रामः–(सकौतुकम्) तर्हि वत्स! इत एवैतमाह्वयायुष्मन्तम्।

राम–(कौतूहल के साथ) वत्स! तब इस आयुष्मान् को यहीं बुलाओ।

लवः–यदाज्ञापयति। (इति निष्क्रान्तः।)

लव–जो आज्ञा। (यह कह कर निकल जाता है)

(ततः प्रविशति कुशः) (तब कुश प्रवेश करता है)

कुशः–(सक्रोधं कृतधैर्ये धनुरास्फाल्य)

कुश–(क्रोध के साथ धैर्यपूर्वक धनुष को हिला कर)

दत्तेन्द्राभयदक्षिणैर्भगवतो वैवस्वतादामनो-
र्दृप्तानां दमनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः।
आदित्यैर्यदि विग्रहो नृपतिभिर्धन्यं ममैतत्ततो
दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं धनुः॥18॥

अन्वय–भगवतो वैवस्वतात् मनोः आ दत्तेन्द्राभयदक्षिणैः दृप्तानां दमनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः आदित्यै नृपतिभिः यदि विग्रहः ततः दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं मम एतत् धनुः धन्यम्॥18॥

अनुवाद–भगवान् वैवस्वत मनु से लेकर इन्द्र तक को अभयदान देने वाले और घमण्डियों का दमन करने के लिए अपने क्षत्रिय-प्रताप रूप अग्नि को प्रज्वलित करने वाले सूर्यवंशीय राजाओं से यदि युद्ध हो जाय तो उज्वल अस्त्रों की चमकती हुई तीक्ष्ण किरण-ज्वलाओं द्वारा आरती की हुई मौर्वी से मेरा धनुष कृतकृत्य हो जायेगां।18॥

टिप्पणी–मनोः–इसमें 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' से पञ्चमी हुई। नीराजित = नीराजन किया हुआ। नीरजन = आरती। वाहनायुधादेः निःशेषेण राजनं यत्र तत् नीराजनम्। विजयादशमी आदि अवसरों पर युद्ध के उपकरणों का नीराजन किया जाता है। इस पद्य में दो रूपक अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यह शार्दूलविक्रीडित छंद है॥18॥

(विकटं परिक्रामति।) (भयानक रूप से चक्कर लगाता है।)

रामः–कोऽप्यस्मिन् क्षत्रियपोतके पौरुषातिरेकः।

राम–इस क्षत्रिय बालक में सामर्थ्य की पराकाष्ठा है।

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा।
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्।

कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो
वीरो रसः किमयमित्युत दर्प एव ॥19॥

अन्वय – दृष्टिः तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा, धीरोद्धता गतिः धरित्रं नमयति इव, कौमारकेऽपि गिरिवत् गुरुतां दधानः अयं किं वीरः रसः? उत दर्प एव ऐति॥19॥

अनुवाद – इसकी दृष्टि तीनों लोकों के प्राणियों की सामर्थ्य को तृण के समान तुच्छ बना रही है, धीर तथा दर्प-युक्त गति पृथ्वी को अवनत-सी कर रही है, बाल्यावस्था में भी पर्वत के समान गुरुत्व वहन करता हुआ यह क्या साक्षात् वीर रस है? अथवा दर्प ही मूर्तिमान् होकर चला आ रहा है॥19॥

टिप्पणी – इस पद्य में उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार है। यह वसन्ततिलका छंद है॥19॥

लवः – (उपसृत्य) जयत्वार्यः।

लव – (निकट जाकर) आर्य की जय हो।

कुशः – नन्वायुष्मन्! किमियं वार्ता युद्ध युद्धमिति?

कुश – अहो चिरञ्जीव! 'युद्ध-युद्ध' यह क्या समाचार है?

लवः – यत्किञ्चिदेतत्। आर्यस्तु दृप्तं भावमुत्सृज्य विनयेन वर्तताम्।

लव – यह जो कुछ है। आप गर्व-पूर्ण भाव का परित्याग कर नम्रता से व्यवहार करें।

कुशः – किमर्थम्?

कुश – किसलिए?

लवः – यदत्र देवो रघुनन्दनः स्थितः। स रामायणकथानायको ब्रह्मकोशस्य गोप्ता।

लव – जिसलिए कि यहाँ महाराज रामचन्द्र जी अवस्थित हैं। वे रामायणकथा के नायक तथा वेदरूप निधि के रक्षक हैं।

कुशः – आशंसनीयपुण्यदर्शनः स महात्मा। किन्तु स कथमस्माभिरुपगन्तव्यः? इति सम्प्रधारयामि।

अनुवाद – वे महापुरुष स्पृहणीय पवित्र दर्शन वाले हैं अर्थात् उनका पावन दर्शन वांछनीय है। किन्तु किस प्रकार मैं उपस्थित होऊँ, इसका निश्चय करना है।

लवः – यथैव गुरुस्तथोपसदनेन।

लव – जिस प्रकार गुरु के निकट जाना चाहिए उसी प्रकार उपस्थित होइये।

कुशः – कथं हि नामैतत्?

कुश – क्यों इस प्रकार जाना चाहिए?

लवः – अत्युदात्तः सुजनश्चन्द्रकेतुरौर्मिलेयः प्रियवयस्येति सख्येन मामुपतिष्ठते। तेन सम्बन्धेन धर्मतस्तात एवायं राजर्षिः।

अनुवाद – लव-सज्जन तथा अत्यन्त उदार चरित्र वाले ऊर्मिलापुत्र चन्द्रकेतु मुझे प्रिय सखा कह कर मित्र-भाव से व्यवहार कर रहे हैं। इस सम्बन्ध से ये राजर्षि हमारे धर्म पिता ही हुए।

टिप्पणी – ओर्मिलेयः=चन्द्रकेतु। ऊर्मिलायाः पुत्रः और्मिलेयः, ऊर्मिला + ढक्-एय। सख्येन= मित्रता से। सख्युर्भावः सख्यम्, सखि + यत्। उपतिष्ठते = उपस्थित होते हैं। उपपूर्वक स्था धातु से मैत्रीकरण अर्थ में 'उपात्रेवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्' इस वार्तिक से आत्मनेपद हुआ।

कुशः – सम्प्रत्यवचनीयो राजन्येऽपि प्रश्रयः।

अनुवाद – कुश – अब धर्म-पिता का सम्बन्ध सिद्ध हो जाने पर क्षत्रिय के प्रति भी विनय प्रकट करना अनुचित नहीं है।

(उभौ परिक्रामतः।) (दोनों चल पड़ते हैं।)

लवः – पश्यत्वेनमार्यो महापुरुषमाकारानुभावगाम्भीर्यसम्भाव्यमानविविधलोकोत्तरसुचरितातिशयम्।

अनुवाद – लव – आकृति, प्रभाव तथा गम्भीरता द्वारा अनुमान किये जाने योग्य अनेक प्रकार के लोकोत्तर-सुचरित्रों के आधिक्य से सम्पन्न इन महापुरुष का आप दर्शन करें।

कुशः– (निर्वर्ण्य)

कुश– (गौर से देखकर)

अहो प्रासादिकं रूपमनुभावश्च पावनः।
स्थाने रामायणकविर्देवीं वाचमवीवृधत्॥20॥

अन्वय – अहो प्रासादिकं रूपं, पावनः अनुभावश्च, रामायणकविः स्थाने वाचं देवीम् अवीवृधत्॥20॥

ओह इनकी आकृति प्रसादपूर्ण और प्रभाव निर्मल है। वस्तुतः कविवर (वाल्मीकि) ने अपनी वाणी को उचित स्थान में संवर्धित किया है॥20॥

टिप्पणी – इस पद्य में वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है॥20॥

(उपसृत्य) तात! प्राचेतसान्तेवासी कुशोऽभिवादयते।

(समीप जाकर) तात! वाल्मीकि मुनि का शिष्य कुश आपको प्रणाम करता है।

रामः – एह्येह्यायुष्मन्!

राम – चिरञ्जीव! आओ, आओ।

अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य ते।
परिष्वङ्गाय वात्सल्यादयमुत्कण्ठते जनः॥21॥

अन्वय – अयं जनः वात्सल्यात् अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य ते परिष्वङ्गाय उत्कण्ठते॥21॥

अनुवाद – यह व्यक्ति वात्सल्य प्रेम के कारण, जल से परिपूर्ण मेघ के समान तुम्हारे चिकने शरीर का आलिंगन करने के लिए उत्कण्ठित हो रहा है॥21॥

टिप्पणी – अमृत=जल। 'पयः कीलालममृतम्' इत्यमरः। जीमूत=बादल। 'घनजीमूतमुदिरजल-मुग्धूमयोनयः' इत्यमरः। संहनन=शरीर। 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः। परिष्वङ्गाय- इसमें 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' सूत्र से चतुर्थी हुई। इस पद्य में समासगत उपमा अलंकार है॥21॥

(परिष्वज्य, स्वगतम्) तत् किमपत्यमयं दारकः?

(आलिंगन करके मन में) तब क्या यह बालक मेरी सन्तान है?

अङ्गादङ्गात्सृत इव निजः स्नेहजो देहसारः
प्रादुर्भूय स्थित इव बहिश्चेतनाधातुरेकः॥
सान्द्रानन्दक्षुभितहृदयप्रस्रवेणावसिक्तो ।
गाढाश्लेषः स हि मम हिमच्योतमाशंसतीव॥22॥

अन्वय – अङ्गात् अङ्गात् सृतः स्नेहजो निजो देहसार इव, एकः चेतनाधातुः बहिः प्रादुर्भूय स्थित इव, सान्द्रानन्दक्षुभितहृदयप्रस्रवेण अवसिक्तः हि सः गाढाश्लेषः मम हिमच्योतम् आशंसति इव॥22॥

अनुवाद – (मेरे) प्रत्येक अंग से च्युत, स्नेह से उत्पन्न तथा अपने शरीर के उत्कृष्ट अंश के सदृश और देह से बाहर प्रादुर्भूत होकर अवस्थित चैतन्य पदार्थ के समान, प्रगाढ़ आनन्द द्वारा उद्वेलित हृदय के रस से सिक्त किया हुआ यह बालक गाढ़ आलिंगन करने पर मानो तुषार से मुझे सींचने की सूचना दे रहा है अर्थात् मेरे सन्तप्त हृदय को तुषार से सींचकर शीतल कर रहा है।।22।।

टिप्पणी – इस पद्य के पहले, दूसरे और चौथे चरणों में तीन उत्प्रेक्षा अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यह मन्दाक्रान्ता छंद है।।22।।

लवः – ललाटन्तपस्तपति घर्मांशुः। तदत्र सालच्छाये मुहूर्त्तमासनपरिग्रहं करोतु तातः।

अनुवाद – सूर्य ललाट को तपाते हुए तप रहे हैं अर्थात् दोपहर का समय हो गया है। इसलिए पिताजी इस साल वृक्ष की छाया में दो घडो आसन ग्रहण करें अर्थात् कुछ देर विश्राम करें।

टिप्पणी – **ललाटन्तपः** – ललाटं तपतीति ललाटन्तपः ललाट तप्+खश् 'असूर्यललाटयोर्दृशितपोः' इत्यनेन, ततः 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इत्यनेन मुमागमः। सालच्छाये–सालानां छाया इति सालच्छायं तस्मिन्। 'छायाबाहुल्ये' इति सूत्रेण नपुसकत्वम्। मुहूर्त्तम्–अत्र 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इत्यनेन द्वितीया।

रामः – यदभिरुचितं वत्सस्य।

राम – वत्स की जैसी रुचि।

(सर्वे परिक्रम्य यथोचितमुपविशन्ति।) (सभी चलकर यथोचित प्रकार से बैठ जाते हैं।)

रामः – (स्वगतम्)

राम – (अपने आप)

अहो प्रश्रययोगेऽपि गतिस्थित्यासनादयः।
साम्राज्यशंसिनो भावाः कुशस्य च लवस्य च।।23।।

अन्वय – अहो! प्रश्रययोगेऽपि कुशस्य लवस्य च गतिस्थित्यासनादयो भावाः साम्राज्यशंसिनः (सन्ति)।।23।।

अनुवाद – आश्चर्य है कि विनय का सम्बन्ध होने पर भी अर्थात् नम्र होते हुए भी कुश और लव का चलना, रुकना और बैठना आदि क्रियायें सम्राट् होने की सूचना देती हैं।।23।।

वपुरविहितसिद्धा एव लक्ष्मीविलासाः
प्रतिकलकमनीयां कान्तिमुद्भेदयन्ति।
अमलिनमिव चन्द्रं रश्मयः स्वे यथा वा
विकसितमरविन्दं विन्दयो माकरन्दाः।।24।।

अनवय – यथा वा स्वे रश्मयः अमलिनं चन्द्रम् इव माकरन्दा बिन्दवो विकसितम् अरविन्दम् इव अविहितसिद्धा एव लक्ष्मीविलासाः वपुः प्रतिकलकमनीयां कान्तिं च उद्भेदयन्ति।।24।।

अनुवाद – जैसे अपीन किरणें निर्मल चन्द्र को और पुष्परस के कण खिले हुए कमल को प्रकाशित करते हैं उसी तरह नैसर्गिक सौन्दर्यविलास शरीर एवं प्रतिक्षण कमनीय कान्ति को भी (क्रमशः) उद्भासित एवम् उत्पन्न करते हैं।।24।।

टिप्पणी – इस पद्य में दो उपमा अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार है। यह मालिनी छंद है।।24।।

भूयिष्ठं च रघुकुलकौमारमनयोः पश्यामि।

अनुवाद – इन दोनों बालकों में रघुवंशीय कुमार के लक्षण अत्यधिक हैं।

कठोरपारावतकण्ठमेचकं वपुर्वृषस्कन्धसुबन्धुरांसयोः।
प्रसन्नसिंहस्तिमितं च वीक्षितं ध्वनिश्च माङ्गल्यमृदङ्गमांसलः॥25॥

अन्वय – वृषस्कन्धसुबन्धुरांसयोः वपुः कठोरपारावतकण्ठमेचकं, वीक्षितं प्रसन्नसिंहस्तिमितं, ध्वनिश्च माङ्गल्यमृदङ्गमांसलः॥25॥

अनुवाद – बैल के कंधों के समान अत्यन्त सुन्दर कंधों वाले कुश और लव का शरीर तरुण कपोत के गले के समान श्यामवर्ण है, दृष्टिपात निर्मल तथा सिंह के समान अथवा प्रशान्तसिंह के समान निश्चल है और शब्द मांगलिक मृदंग की ध्वनि के समान गम्भीर है॥25॥

टिप्पणी – इस पद्य में चार उपमा अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने से संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यह वंशस्थविल छंद है॥25॥

(निपुणं निरूप्य) अये! न केवलमस्मद्वंशसंवादिन्याकृतिः।

अनुवाद – (भलीभाँति अवलोकन करके) अरे! इन दोनों की आकृति न केवल हमारे वंश के अनुरूप है, प्रत्युत

अपि जनकसुतायास्तच्च तच्चानुरूपं
स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति।
ननु पुनरिव तन्मे गोचरीभूतमक्ष्णो-
रभिनवशतपत्रश्रीमदास्यं प्रियायाः॥26॥

अन्वय – इह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयम् तच्च तच्च जनकसुताया अपि अनुरूपं स्फुटम् अस्ति। ननु अभिनवशतपत्रश्रीमत् तत् प्रियाया आस्यं पुनः मे अक्ष्णोः गोचरीभूतम् इव॥26॥

अनुवाद – इन दोनों शिशुओं में निपुणता से जानने योग्य अंग आदि तथा गुण-समूह स्पष्ट रूप से जानकी के समान हैं। निश्चित है कि नवविकसित कमल के सदृश शोभा-सम्पन्न वह प्रियतमा का मुख फिर मेरी आँखों के सामने आ गया है॥26॥

टिप्पणी – शतपत्र=कमल। 'सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम्' इत्यमरः। आस्यं=मुख। पुत्र का मातृमुख होना शुभ माना गया है–'धन्या पितृमुखी कन्या धन्यो मातृमुखः सुतः'। इस पद्य में उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार हो जाता है और स्मरणालंकार व्यंग्य है। यह मालिनी छंद है॥26॥

शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरीयं सैवोष्ठमुद्रा स च कर्णपाशः।
नेत्रे पुनर्यद्यपि रक्तनीले तथापि सौभाग्यगुणः स एव॥27॥

अन्वय – शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरी इयम् ओष्ठमुद्रा सा एव, स च कर्णपाशः, पुनः नेत्रे यद्यपि रक्तनीले तथापि सौभाग्यगुणः स एव॥27॥

अनुवाद – शुक्ल एवं निर्मल दाँतों की कान्ति से मनोहर यह ओठों की मुद्रा वही सीता के सदृश ही है। वही सीता के समान ही दोनों कान प्रशस्त हैं। यद्यपि नेत्र लाल और काले हैं तो भी सौन्दर्य का प्रकर्ष वही सीता के सदृश ही है॥27॥

टिप्पणी – कर्णपाशः=उत्तम कान। 'पाशः केशादिपूर्वः स्यात्तत्सङ्घे कर्णपूर्वकः। सुकर्णे च स्वसामर्थ्यात् मृगपक्ष्यादिबन्धने'॥ इति मेदिनी। इस पद्य में असम्भवद्वस्तुसम्बन्धरूपा निदर्शना अलंकार प्रथमचरणस्थ

उपमा अलंकार से संकीर्ण है और प्रथम चरण में छेकानुप्रास अलकार भी है। फिर समूह में संसृष्टि अलंकार हो जाता है। यह उपजाति छंद है॥27॥

(विचिन्त्य) तदेतत्प्राचेतसाध्युषितमरण्यं, यत्र किल देवी परित्यक्ता। इयं चानयोराकृतिर्वयोऽनुभावश्च। यत् स्वतः प्रकाशान्यस्त्राणीति च, तत्रापि स्मरामि खलु तदपि चित्रदर्शनप्रासङ्गिकमस्त्राभ्यनुज्ञानं प्रबुद्धं स्यात्। न ह्यसाम्प्रदायिकान्यस्त्राणि पूर्वेषामपि शुश्रुमः। अयं विस्मयसम्प्लवमानसुखदुःखातिशयो हृदयस्य मे विप्रलम्भः। यमाविति च भूयिष्ठमात्मसंवादः। जीवद्वयापत्यचिह्नो हि देव्या गर्भिणीभाव आसीत्। (सास्त्रम्)

अनुवाद – (सोचकर) वाल्मीकि मुनि का निवास किया हुआ यह वही वन है, जहाँ सीता छोड़ दी गई थी। इन दोनों की आकृति, अवस्था और प्रभाव भी वही है अर्थात् आकृति सीता की जैसी है, अवस्था बारह वर्ष की है जितने वर्ष कि सीता-परित्याग के बाद से अभी तक बीते हैं और प्रभाव भी उसी के सदृश है। यह जो कहा है कि हमें जृम्भकास्त्र स्वतः प्रकाशित हुए हैं, इस सम्बन्ध में भी मुझे स्मरण हो रहा है कि चित्र देखने के समय मेरी दी हुई अस्त्र-प्राप्ति की अनुमति इनमें प्रकट हो गई है अर्थात् चित्रदर्शन के समय मैंने सीता से जो कहा था कि ये जृम्भकास्त्र तुम्हारे पुत्र को प्राप्त होंगे, उसी के अनुसार इनको जृम्भकास्त्र की प्राप्ति हुई है-ऐसी संभावना है। क्योंकि ऐसा हम लोगों ने सुना है कि बिना गुरु परम्परा के ये अस्त्र पुराने लोगों को भी प्राप्त नहीं हुए थे फिर इन बालकों को कैसे प्राप्त होंगे? यह मेरे हृदय का विप्रलम्भ हो गया है, जिसमें सुख-दुःख की अतिशयता आश्चर्य में डूब रही है। ये दोनों जुड़वे हैं-इसमें भी काफी बुद्धि का सामञ्जस्य है अर्थात् यम होने के कारण कुश और लव सीता के पुत्र हैं-यह मानना बुद्धिसंगत है। क्योंकि सीता का गर्भ दो सन्तानों के चिह्न से युक्त था। (अश्रुपात सहित)

परां कोटिं स्नेहे परिचयविकासादधिगते
रहो विस्रब्धाया अपि सहजलज्जाजडदृशः।
मयैवादौ ज्ञातः करतलपरामर्शकलया
द्विधा गर्भग्रन्थिस्तदनु दिवसैः कैरपि तया॥28॥

अन्वय – स्नेहे परिचयविकासात् परां कोटिम् अधिगते रहो विस्रब्धाया अपि सहजलज्जाजडदृशः आदौ करतलपरामर्शकलया मया एव द्विधा गर्भग्रन्थिः ज्ञातः, तदनु कैः दिवसैः तया अपि॥28॥

अनुवाद – प्रेम में परिचय की पराकाष्ठा हो जाने से एकान्त में विश्वस्ततापूर्वक रहने पर भी स्वाभाविक लज्जावश मूँदे हुए नेत्रों वाली प्रिया के गर्भ-कोश-बन्धन को पहले मैंने ही हथेली से स्पर्श करने की कला द्वारा दो भागों में विभक्त समझा था। पश्चात् कुछ दिनों के बाद उन्होंने भी जान लिया था॥28॥

टिप्पणी – दिवसैः – इसमें 'अपवर्गे तृतीया' से तृतीया हुई। इस पद्य में 'ज्ञातः' इस एक ही क्रिया के साथ सीता और राम का कर्तृत्वेन सम्बन्ध होने के कारण तुल्ययोगिता अलंकार है। यह शिखरिणी छंद है॥28॥

(रुदित्वा) तत् किमेतौ पृच्छामि केनचिदुपायेन?

(रो कर) तो क्या किसी उपाय के इन दोनों को पूछूँ?

लवः – तात! किमेतत्?

लव – तात! यह क्या?

वाष्पवर्षेण नीतं वो जगन्मङ्गलमाननम्।
अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम्॥29॥

अन्वय – जगन्मङ्गलं वः काननं वाष्पवर्षेण अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुतां नीतम्॥29॥

अनुवाद – विश्व का कल्याण करने वाले आपके मुख को आँसुओं की वृष्टि ने पालों से सींचे हुए श्वेत कमल की रमणीयता को प्राप्त करा दिया है ॥29॥

टिप्पणी – अवश्याय=तुषार, पाला। 'अवश्यास्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिमम्' इत्यमरः। इस पद्य में असम्भवद्वस्तुसम्बन्धरूप निदर्शना अलंकार है ॥29॥

कुशः – अयि वत्स!

कुश – अये चिरञ्जीव

विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः!
प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति।
स च स्नेहस्तावानयमपि वियोगो निरवधिः
किमेवं त्वं पृच्छस्यनधिगतरामायण इव ॥30॥

अन्वय – सीतादेव्या विना रघुपतेः किमिव हि दुःखं न? हि प्रियानाशे कृत्स्नं जगत् अरण्यं भवति किल। स च स्नेहः तावान्, अयमपि वियोगो निरवधिः, त्वम् अनधिगतरामायण इव किम् एवं पृच्छसि? ॥30॥

अनुवाद – सीता देवी के बिना रघुनाथ श्रीराम के लिए कौन वस्तु दुःख-जनक नहीं है? क्योंकि के अभाव होने पर सम्पूर्ण जगत् अरण्य-सा प्रतीत होता है। वह सीता देवी के प्रति रामचन्द्र जी का स्नेह उतने पारिमाण में था और यह वर्तमान वियोग अवधिरहित है। फिर तुम रामायण पढ़े हुए की तरह क्यों इस प्रकार पूछ रहे हो? ॥30॥

टिप्पणी – इस श्लोक में द्वितीय चरण के सामान्य अर्थ से प्रथम चरण के विशेष अर्थ का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है। 'जगदरण्यं भवति' इसमें परिणाम अलंकार है। फिर इन दोनों में अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार उत्पन्न होता है। यह शिखरिणी छंद है ॥30॥

रामः – (स्वगतम्) अये, तटस्थ आलापः। कृतं प्रश्नेन। मुग्धहृदय! कोऽयमाकस्मिकस्ते सम्प्लवाधिकारः? एवं निर्भिन्नहृदयावेगः शिशुजनेनाप्यनुकम्पितोऽस्मि। भवतु तावदन्तरयामि। (प्रकाशम्) वत्सौ! 'रामायणं रामायणमिति श्रूयते भगवतो वाल्मोकेः सरस्वती-निष्यन्दः प्रशस्तिरादित्यवंशस्य'। तत्कौतूहलेन यत्किञ्चिच्छ्रोतुमिच्छामि।

अनुवाद – **राम** – (मन में) अरे! (इन दोनों का पारस्परिक) वार्तालाप उदासीन है अर्थात् सीता इनकी माता है–इस बात की सूचना इनके संभाषण से नहीं मिलती है; अन्यथा कुश 'सीता देवी' की जगह 'जननी' शब्द का उच्चारण करते। अतः तुम 'दोनों सीता के पुत्र हो क्या' यह प्रश्न करना व्यर्थ है। मूढ़ हृदय! यह सहसा दूर चले जाने का तेरा क्या अधिकार है? अर्थात् दुर्लभ मनोरथ के लिए आयास करना तेरा अनधिकार चेष्टा है। इस प्रकार मन का शोकजनित क्षोभ प्रकट हो जान से अर्थात् रोदन करने से मैं बालक से भी अनुगृहीत हो गया हूँ। अस्तु, हृदय के आवेग पर आवरण डाल देता हूँ। (प्रकट) वत्सयुगल! 'रामायण रामायण, यह भगवान् वाल्मीकि की वाणी का प्रवाह और सूर्यवंश की प्रशस्ति अर्थात् प्रशंसासूचक ग्रन्थविशेष है' ऐसा सुना जाता है। इसलिए मैं कुतूहलवश उसका कुछ अंश सुनना चाहता हूँ।

कुशः – कृत्स्न एव सन्दर्भोऽस्माभिरावृत्तः, स्मृतिप्रत्युपस्थितौ तावदिमौ बालचरितस्यासाते द्वौ श्लोकौ।

अनुवाद – **कुश** – हम लोगों ने समस्त ग्रन्थ का अभ्यास किया है, किन्तु बालचरित के ये दो श्लोक स्मृति-पथ पर उपस्थित हैं।

रामः – उदीरयतं वत्सौ!

राम – बच्चों! बोलो।

कुशः–

प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति।
गुणै रूपगुणैश्चापि प्रीतिर्भूयोऽप्यवर्धत॥31॥

अन्वय – पितृकृताः दाराः इति सीता रामस्य प्रिया तु गुणैः रूपगुणैश्चापि प्रीतिः भूयोऽपि अवर्धत॥31॥

अनुवाद – (पहले श्लोक का अर्थ) कुश–पिता (महाराज जनक) द्वारा पत्नी के रूप में दी हुई सीता राम को प्रिय थीं। फिर सरलता, विनय आदि प्राकृतिक गुणों से तथा छवि, आदि आकृतिक गुणों से सीता के प्रति राम का प्रेम और भी बढ़ा हुआ था।

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः।
प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्द्धितः॥31॥

अन्वय – सीता प्रकृत्या एव महात्मनः रामस्य प्रिया आसीत्। स तु प्रियभावः तथा स्वगुणैः एव वर्द्धितः॥31॥

(दूसरे श्लोक का अर्थ) सीता देवी स्वभाव से ही महात्मा राम की प्रिय थीं, किन्तु उस प्रियभाव (प्रियत्व) को सीता देवी ने अपने गणों से ही बढ़ाया था॥31॥

तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्॥32॥

अन्वय – तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियः अभवत्। तु हृदयम् एव परस्परं प्रीतियोगं जानाति॥32॥

अनुवाद – उसी प्रकार राम सीता के प्राणों से प्रिय थे। किन्तु उन दोनों का हृदय ही पारस्परिक प्रेम–सम्बन्ध को जानता है॥32॥

टिप्पणी – इस पद्य में आर्थी परिसंख्या अलंकार है।

रामः – कष्टमतिदारुणो हृदयमर्मोद्घातः। हा देवि! एवं किलैतदासीत्। अहो निरन्वयविपर्यासविप्रलम्भस्मृतिपर्यवसायिनस्तावकाः संसारवृत्तान्ताः।

अनुवाद – राम – ओह! हृदय के मर्मस्थल पर अत्यन्त दारुण प्रहार हुआ है। हा देवि! वह इसी प्रकार का था अर्थात् यह वर्णन हमारी प्राचीन स्थिति के अनुरूप ही हुआ है। हाय! तुम्हारी सांसारिक घटनायें अकारण अवस्था–परिवर्तन से उत्पन्न वियोग और स्मरण में परिणत हो गई हैं।

क्व तावानानन्दो निरतिशयविस्रम्भबहुलः?
क्व वाऽन्योन्यप्रेम? क्व च नु गहनाः कौतुकरसाः!
सुखे वा दुःखे वा क्व नु खलु तदैक्यं हृदययो-
स्तथाप्येष प्राणः स्फुरति, न तु पापो विरमति॥33॥

अन्वय – निरतिशयविस्रम्भबहुलः तावान् आनन्दः क्व? वा अन्योन्यप्रेम क्व? गहनाः कौतुकरसाश्च क्व नु? सुखे वा दुःखे वा हृदययोः तत् ऐक्यं क्व नु खलु? तथापि एषः पापः प्राणः स्फुरति, न तु विरमति॥33॥

अनुवाद – अत्यधिक विश्वास के कारण प्रगाढ़ एवम् अपरिमेय आनन्द पारस्परिक प्रेम कहाँ गया? कुतूहलजनक वस्तुओं के प्रति अत्यधिक अनुराग कहाँ गया? सुख में या दुःख में हम दोनों के हृदयों की

वह अभिन्नता कहाँ गई? तो भी इन सबके गत हो जाने पर भी यह मेरा पापी प्राणवायु चल रहा है, किन्तु विरत नहीं होता है ॥33 ॥

टिप्पणी – प्राण: = हृदयस्थ वायुविशेष। 'प्राणो हृन्मारुते बोले काव्यजीवेऽनिले बले' इति मेदिनी। प्राण शब्द का बहुवचन में प्रयोग तब किया जाता है जब उससे पाँचों प्राण विवक्षित होते हैं। यहाँ तो एक ही हृदय–वायु विवक्षित है। अत: एकवचनान्त प्रयोग हुआ है। विरमति–इसमें 'व्याङ्परिभ्यो रम:' से परस्मैपद होता है। इस पद्य में विशेषोक्ति अलंकार है। यह शिखरिणी छंद है ॥33 ॥

भो:! कष्टम्।

हाय! कष्ट है।

प्रियागुणसहस्त्राणां क्रमोन्मीलनतत्पर:।
य एव दु:सहः कालस्तमेव स्मारिता वयम् ॥34 ॥

अन्वय – प्रियागुणसहस्त्राणां क्रमोन्मीलनतत्परो य एव काल: दु:सह: तम् एव वयं स्मारिता: ॥34 ॥

अनुवाद – प्रियतमा के सहस्त्रों गुणों को क्रमपूर्वक प्रकाशित करने में तत्पर रहने वाला जो ही समय दु:सह है उसी समय का स्मरण मुझे करा दिया गया ॥34 ॥

तदा किञ्चित् किञ्चित् कृतपदमहोभि: कतिपयै–
स्तदीषद्विस्तारि स्तनमुकुलमासीन्मृगदृश:।
वय:स्नेहाकूतव्यतिकरघनो यत्र मदन:
प्रगल्भव्यापार: स्फुरति हृदि मुग्धश्च वपुषि ॥35 ॥

अन्वय – तदा किञ्चित् किञ्चित् कृतपदं मृगदृश: तत् स्तनमुकुलं कतिपयै: अहोभि: ईषद्विस्तारि (अभवत्), यत्र वय:स्नेहाकूतव्यतिकरघन: मदन: हृदि प्रगल्भव्यापार: वपुषि च मुग्ध: स्फुरति ॥35 ॥

अनुवाद – जिस समय अवस्था, प्रेम और विशेष अभिप्राय के मेल से प्रगाढ़ या दुर्दान्त कामदेव लोगों के हृदय में प्रौढ़ क्रियाशील और शरीर मं कोमल क्रियाशील होकर अवस्थान करता है, उस समय उठने वाले मृगनयनी सीता के कली के सदृशकुच कुछ दिनों में किंचित् विस्मृत हो गये थे ॥35 ॥

टिप्पणी – आकूत=अभिप्राय। 'आकूतं स्यादभिप्राय:' इति हेमचन्द्र:। इस पद्य में एक कामदेव के हृदय और शरीर रूप स्थानद्वय मं रहने के कारण पर्याय अलंकार है और प्रगल्भत्व तथा मुग्धत्व रूप विरुद्ध धर्मों का एक शरीर में अविरुद्धभाव से समावेश होने के कारण विरोधाभास अलंकार भी है ॥35 ॥

लव: – अयं तु चित्रकूटवर्त्मनि मन्दाकिनीविहारे सीतादेवीमुद्दिश्य रघुपते: श्लोक:–

लव – चित्रकूट के मार्ग में मन्दाकिनी गंगा में विहार करते समय सीता देवी को लक्ष्य करके रघुनाथ ने यह श्लोक कहा था–

त्वदर्थमिव विन्यस्त: शिलापट्टोऽयमायत:।
यस्यायमभित: पुष्पै: प्रवृष्ट इव केसर: ॥36 ॥

अन्वय – अयम् आयत: शिलापट्ट: त्वदर्थे विन्यस्त इव, यस्य अभित: अयं केसर: पुष्पै: प्रवृष्ट इव ॥36 ॥

अनुवाद – यह लम्बा शिलाखंड मानों तुम्हारे लिए स्थापित किया गया है, जिसके चारों ओर यह मौलसिरी का वृक्ष मानो पुष्पों की वर्षा कर रहा है ॥36 ॥

टिप्पणी – यस्य – यहाँ 'अभितः' के योग में द्वितीया होनी चाहिए थी, किन्तु आर्षत्वात् सम्बन्ध विवक्षा में षष्ठी हुई। **प्रवृष्टः –** यहाँ 'आदि कर्मणि क्तः कर्तरि च' इससे कर्ता में क्त प्रत्यय हुआ। यह श्लोक रामायण में नहीं मिलता है। इसमें दो उत्प्रेक्षा अलंकार हैं॥36॥

अनुवाद–राम – (लज्जा, मंद मुस्कान, स्नेह और करुणा के साथ) लड़के लोग बहुत ही मूढ़ या सरल स्वभाव के होते हैं, विशेषकर जंगल में रहने वाले। हाय देवी! उस प्रदेश की उस समय विश्वास के साथ अर्थात् किसी प्रकार की विघ्न–बाधाओं की आशंका से रहित होकर किये गये विहार की याद आती है तुम्हें?

टिप्पणी – तस्य.... प्रसङ्गस्य–यहाँ 'अधीगर्थयदयेशां कर्मणि' इस सूत्र से कर्म में षष्ठी हुई ह।

श्रमाम्बुशिशिरीभवत् प्रसृतमन्दमन्दाकिनी -
मरुत्तरलितालकाकुलललाटचन्द्रद्युति।
अकुङ्कमकलङ्कितोज्ज्वलकपोलमुत्प्रेक्ष्यते।
निराभरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धं मुखम्॥37॥

अन्वय – श्रमाम्बुशिशिरीभवत् प्रसृतमन्दमन्दाकिनीमरुत्तरलितालकाकुलललाटचन्द्रद्युति अकुङ्कुमकलङ्कितोज्ज्वलकपोलं निरभरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धं मुखम् उत्प्रेक्ष्यते॥37॥

अनुवाद – श्रम से उत्पन्न स्पर्श किये गये पसीने से ठंडा होने वाला, धीरे–धीने बहने वाले मन्दाकिनी के जल से स्पृष्ट पवन द्वारा कम्पित केश–कलापों से व्याप्त ललाटरूप चन्द्रमा की कान्ति वाला, कुङ्कुम का लेप न लगने पर भी रक्ताभ कपोलों वाला और बिना आभूषण के भी मनोहर कर्णयुगल द्वारा सुन्दर दिखने वाला तुम्हारा मुख मानों सामने देख रहा हूँ॥37॥

टिप्पणी – कलङ्कित=चिह्नित। 'कलङ्कोऽङ्कापवादयोः' इत्यमरः। मुग्ध=सुन्दर। 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इति विश्वः। इस श्लोक में प्रतीयमान क्रियोत्प्रेक्षा, रूपक तथा विभावना अलंकार है। इनमें अंगांगिभाव सम्बन्ध होने से संकर अलंकार सिद्ध होता है। यह पृथ्वी छन्द है॥37॥

(स्तम्भित इव स्थित्वा सकरुणम्) अहो न खलु भोः!

(स्तब्ध जड़ की भाँति स्थित होकर खेद के साथ) हाय हाय!

चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः
प्रवासे चाश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः।
जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव॥38॥

अन्वय – प्रवासे च चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निर्माय पुरतः निहित इव प्रियजनः आश्वासं न करोति (इति) न खलु। कलत्रे उपरते जगत् जीर्णारणयं भवति हि, तदनु कुकूलानां राशौ हृदयं पच्यत इव॥38॥

अनुवाद – दूर देश में अवस्थित होन पर लम्बे समय तक बार–बार चिन्तन करके कल्पना से रचकर सामने स्थापित किये गये की तरह प्रेमी व्यक्ति क्या सान्त्वना नहीं देता है? (अपितु अवश्य देता है। अर्थात् जैसे मनुष्य अपने प्रवासी प्रियजन को कल्पना द्वारा सामने उपस्थित करके उससे सान्त्वना प्राप्त करता है उसी तरह मैं भी सीता के अभाव में कल्पना से उसका रूप निर्माण करके आश्वस्त हुआ हूँ।) किन्तु पत्नी का देहान्त हो जाने पर संसार जीर्ण–शीर्ण अरण्य की भाँति हो जाता है और उसके बाद हृदय मानों तुषाग्नि के ढेर में जलने लगता है॥38॥

टिप्पणी – कुकूल = भूसी की आग। 'कुकूलं शङ्कुभिः कीर्णे श्वभ्रे ना तु तुषानले' इत्यमरः। पच्यते–स्वयं दग्ध हो जाता है। यहाँ कर्मकर्ता में लकार हुआ है। इस श्लोक में दो उत्प्रेक्षा अलंकार हैं और

'जगज्जीर्णारण्यम्' इसमें व्यस्तरूपक भी है। फिर तीनों अलंकारों की स्थिति परस्पर निरपेक्ष होने संसृष्टि अलंकार उत्पन्न होता है। यह शिखरिणी छन्द है।।38।।

(नेपथ्ये) (नेपथ्य में)

वसिष्ठो वाल्मीकिर्दशरथमहिष्योऽथ जनकः
सहैववारुन्धत्या शिशुकलहमाकर्ण्य सभयाः।
जराग्रस्तैर्गात्रैरथ खलु सुदूराश्रमतया
चिरेणागच्छन्ति त्वरितमनसो विश्लथजटाः।।39।।

अन्वय – शिशुकलहम् आकर्ण्य वसिष्ठः वाल्मीकिः दशरथमहिष्यः अथ जनकः अरुन्धत्या सह एव सभयाः (सन्तः) त्वरितमनसाः विश्लथजटाः (सन्तः) अथ सुदूराश्रमतया जराग्रस्तैः गात्रैः चिरेण आगच्छन्ति खलु।।39।।

अनुवाद – बालकों का झगड़ा सुनकर अरुन्धती के साथ ही वसिष्ठ, वाल्मीकि, दशरथ की रानियाँ और जनक भय, मानसिक शीघ्रता तथा शिथिल जटाओं से युक्त होकर आश्रम दूर होने के कारण जराजीर्ण शरीरों से देर सेआ रहे हैं।।39।।

टिप्पणी – गात्रैः = शरीरों से। 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः। इसमें 'इत्थंभूतलक्षणे' से तृतीया हुई। इस श्लोक में विलम्ब से आने के प्रति जराग्रस्त गात्र हेतु है। अतः पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है। यह शिखरिणी छन्द है।।39।।

रामः – कथं भगवन्तावरुन्धतीवसिष्ठौ, अम्बाः जनकश्चात्रैव। कथं खलु ते द्रष्टव्याः? (सकरुणं विलोक्य) तातजनकोऽप्यत्रैवायात इतिवज्रेणेव ताडितोऽस्मि मन्दभाग्यः।

राम – क्या भगवती अरुन्धती, भगवान् वसिष्ठ, मातायें और विदेहराज भी यहीं उपस्थित हैं? कैसे मैं इनसे मिलूँ? (करुण भाव से देखकर) तात जनक जी भी यहीं आये हुए हैं–इससे मानों मुझ अभागे के ऊपर वज्र-प्रहार हो गया है।

सम्बन्धस्पृहर्दृणीयताप्रमुदितैर्जुष्टेवसिष्ठादिभि -
दृष्ट्वापत्यविवाहमङ्गलविधौ तत्तातयोः सङ्गमम्।
पश्यन्नीदृशमीदृशः पितृसखं वृत्ते महावैशसे
दीर्ये किं न सहस्त्रधाऽहमथवा रामेण किं दुष्करम्।।40।।

अन्वय – सम्बन्धस्पृहणीयताप्रमुदितैः वसिष्ठादिभिः जुष्टे अपत्यविवाहमङ्गलविधौ तत्तातयोः सङ्गमं दृष्ट्वा महावैश से वृत्ते ईदृशं पितृसखं पश्यन् ईदृशः अहं किं सहस्त्रधा न दीर्ये? अथवा रामेण किं दुष्करम्।।40।।

अनुवाद – विवाह - सम्बन्ध की स्पृहा से अत्यधिक प्रसन्नः होते हुए वसिष्ठ आदि मुनियों द्वारा निर्देशित सन्तानों के विवाह की मांगलिक विधि में तात जनक और दशरथ का वह महान मिलन देखकर अब सीता की हत्या रूप महानृशंस कार्य हो जाने पर पिता के सखा जनक को ऐसी महाशोकाकुल अवस्था में देखता हुआ मैं क्यों नहीं सहस्त्रधा विदीर्ण हो जाता हूँ? अथवा राम के लिए क्या दुष्कर है? अर्थात् सीताविवासनपटु राम सब कुछ सहन कर सकता है।।40।।

टिप्पणी– दीर्ये – यह कर्मकर्ता का प्रयोग है। इस पद्य में सकल कार्य करने की योग्यता रूप हेतु से दारुण शोक सहन रूप कार्य का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है, जो अर्थापत्ति अलंकार से संकीर्ण है। यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है।।40।।

(नेपथ्ये = नेपथ्य में)

भो भोः! कष्टम्।

हाय हाय! कष्ट है।

अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियं सहसैव वीक्ष्य रघुनाथमीदृशम्।
प्रथमप्रबुद्धजनकप्रबोधिता विधुराः प्रमोहमुपयान्ति मातरः ॥41॥

अन्वय – अनुभवमात्रसमवस्थितश्रियम् ईदृशं रघुनाथं सहसा एव वीक्ष्य प्रथमप्रबुद्धजनकप्रबोधिताः मातरः विधुराः प्रमोहम् उपयान्ति ॥41॥

अनुवाद – जो केवल तेजोमात्र से शोभासम्पन्न हैं अर्थात् जिनके शरीर में सौन्दर्य-द्योतक केवल नैसर्गिक तेज बच गया है ऐसे रामचन्द्र को अकस्मात् देखकर पहले चैतन्यभाव को प्राप्त किये हुए जनक द्वारा होश में लायी गईं मातायें शोक-विह्वल होकर बार-बार मूर्छित हो रही हैं। आशय यह है कि सीता के वियोग से अत्यन्त क्षीणकाय राम को केवल शारीरिक तेज के कारण ही जनक आदि ने पहचाना। पहचानने के बाद सभी मूर्च्छित हो गये, जिनमें पहले होश में आये हुए जनक ने राम की माताओं को होश कराया। किन्तु शोक के आवेग से मातायें पुनः मूर्च्छित हो गईं ॥41॥

टिप्पणी – इस पद्य में पर्यायोक्त अलंकार है। यह मंजुभाषिणी छन्द है ॥41॥

रामः–

जनकानां रघूणाञ्च यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्।
तत्राप्यकरुणे पापे वृथा वः करुणा मयि ॥42॥

अन्वय – जनकानां रघूणाञ्च यत् कृत्स्नं गोत्रमङ्गलं, तत्र अपि अकरुणे पापे मयि यः करुणा वृथा ॥43॥

अनुवाद – राम-जो सीता जनकवंशी राजाओं तथा रघुवंशी राजाओं के मंगलस्वरूप थीं, उनके प्रति भी निर्दय तथा पापाचारी मुझ पर आप लोगों की कृपा व्यर्थ है ॥43॥

टिप्पणी – इस पद्य में करुणा की व्यर्थता के प्रति निर्दयत्व तथा पापाचारिता के हेतु होने से पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है ॥42॥

यावत्सम्भावयामि। (इत्युत्तिष्ठति)

अनुवाद – अस्तु, मैं इन लोगों की अगवानी करता हूँ। (यह कहकर उठ जाते हैं।)

टिप्पणी – सम्भावयामि – यहाँ 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' सूत्र से भविष्यत् के अर्थ में लट् लकार हुआ है।

कुशलवौ – इत इतस्तातः।

कुश और लव – पिता जी इधर से चलें, इधर से।

(सकरुणं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे।)

(करुणापूर्वक सभी चले गये।)

इति महाकविभवभूतिविरचितोत्तररामचरिते कुमारप्रत्यभिज्ञानं नाम षष्ठोऽङ्कः ॥6॥

4.4 महाकवि श्रीभवभूतिप्रणीतम् उत्तररामचरितम् सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति लक्ष्मणः।)

(तब लक्ष्मण प्रवेश करते हैं।)

लक्ष्मणः – भो भोः! अद्य खलु भगवता वाल्मीकिना सब्रह्मक्षत्रपौरजानपदाः प्रजाः सहास्माभिराहूय कृत्स्न एव सदेवासुरतिर्यङ्निकायः सचराचरो भूतग्रामः स्वप्रभावेण सन्निधापितः। आदिष्टश्चाहमार्येण– 'वत्स लक्ष्मण! भगवता वाल्मीकिना स्वकृतिमप्सरोभिः प्रयुज्यमानां द्रष्टुमुपनिमन्त्रिताः स्मः।

गङ्गातीरमातोद्यस्थानमुपगम्य क्रियतां समाजसन्निवेश:' इति। कृतश्च मर्त्यामर्त्यस्य भूतग्रामस्य समुचितस्थानसन्निवेशो मया। अयन्तु–

अनुवाद – अहो! आज भगवान् वाल्मीकि ने अपने तप के प्रभाव से ब्राह्मणों, क्षत्रियों, नगरवासियों तथा ग्रामवासियों समेत प्रजाओं को हम लोगों के साथ बुलाकर देवों, असुरों तथा पशु–पक्षियों के समूह के साथ स्थावर–जंगम रूप प्राणियों के समुदाय को अपने निकट उपस्थित कर लिया है। आर्य राम ने मुझे आदेश दिया है–'वत्स लक्ष्मण! भगवान् वाल्मीकि ने अप्सराओं द्वारा अभिनीत की जाने वाली अपनी कृति नाटक देखने के लिए हम लोगों को बुलाया ह। अतएव गंगाजी के तट पर चार प्रकार के वाद्यों के स्थान रंगभूमि में जाकर सभा की स्थापना करो। मैंने भी मरने वाले मनुष्य आदि और न मरने वाले देवरूप प्राणियों के यथायोग्य आसन आदि की व्यवस्था कर ली है। ये तो–

टिप्पणी – आतोद्यस्थानम् = रंगशाला। आ समन्तात् तुद्यते ताड्यते इति आतोद्यं, तस्य स्थानम्। रंगशाला में प्राय: चार प्रकार के बाजे बजाये जाते हैं–वीणा आदि, जो तन्तुवाद्य हैं; बाँसुरी आदि जो मुखवाद्य हैं; मृदंग आदि, जो ठोककर बजाये जाते हैं और मजीरा आदि जो टुनटुना कर बजाये जाते हैं।

राज्याश्रमनिवासोऽपि प्राप्तकष्टमुनिव्रत:।
वाल्मीकिगौरवादार्य इत एवाभिवर्तते ॥1॥

अन्वय – राज्याश्रमनिवास: अपि प्राप्तकष्टमुनिव्रत: आर्य: वाल्मीकिगौरवात् इत एव अभिवर्तते ॥1॥

अनुवाद – प्रजाव्यवस्थापनरूप गृहस्थाश्रम में निवास करते हुए भी दु:खजनक मुनि–व्रत ब्रह्मचर्य आदि का पालन करने वाले आर्य वाल्मीकि मुनि की महत्ता के कारण इधर ही आ रहे हैं ॥1॥

टिप्पणी – इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है ॥1॥

(तत: प्रविशति राम:।)(अनन्तर राम प्रवेश करते हैं।)

राम: – वत्स लक्ष्मण! अपि स्थिता रङ्गप्राश्निका:?

राम – प्रिय लक्ष्मण! नाट्यालय में विद्वान् सामाजिक वृन्द उपस्थित हो गये हैं न?

टिप्पणी – रङ्गप्राश्निका: = रंगशाला में विद्वान् दर्शक। प्रश्नं ज्ञातव्यार्थजिज्ञासामर्हन्ति इति प्राश्निका:, प्रश्न + ठञ्–इक, रङ्गस्य प्राश्निका: रङ्गप्राश्निका:।

लक्ष्मण: – अथ किम्।

लक्ष्मण – अस्तु आर्य।

राम: – इमौ पुनर्वत्सौ कुशलवौ कुमारचन्द्रकेतुसमां स्थानप्रतिपत्तिं लम्भयितव्यौ।

अनुवाद– राम – ये दोनों स्नेहास्पद कुश और लव कुमार चन्द्रकेतु के समान सम्मानित आसन पर बैठाये जायें।

लक्ष्मण: – प्रभुस्नेहप्रत्ययात्तथैव कृतम्। इदञ्चास्तीर्ण राजासनम्। तदुपविशत्वार्य:।

अनुवाद – लक्ष्मण – (इन दोनों के प्रति) प्रभु की वत्सलता के बोध (या विश्वास) के कारण वैसा ही किया है। सिंहासन बिछा हुआ है। अत: आर्य इस पर बिराजमान हों।

राम: – (उपविश्य) प्रस्तूयतां भो:।

राम – (बैठकर) अभिनेताओं! आरम्भ कोजिये।

सूत्रधारः – (प्रविश्य) भगवान् भूतार्थवादी प्राचेतसः सजङ्गमस्थावरं जगदाज्ञापयति– 'यदिदमस्माभिरार्षेण चक्षुषा समुद्वीक्ष्य पावनं वचनामृतं करुणाद्भुतरसञ्च किञ्चिदुपनिबद्धम्। तत्र काव्यगौरवादवधातव्यम्' इति।

अनुवाद – सूत्रधार –(प्रवेश करके) यथार्थवादी भगवान् वाल्मीकि सचराचर विश्व को आदेश देते हैं कि–'मैंने दिव्य दृष्टि द्वारा देख करके जो यह पवित्र एवं करुण तथा अद्भुत रस से युक्त वचनामृत उपनिबद्ध किया है अर्थात् दृश्य काव्य का प्रणयन किया है, उसमें काव्य के गौरव से आप सब लोग मन को एकाग्र करें।

टिप्पणी – भूतार्थवादी=सत्यवक्ता। भूतं सत्यम् अर्थे वस्तु वदितुं भाषितुं शीलमस्य इति भूतार्थवादी। 'युक्ते क्ष्मादावृते भूतं प्राण्यतीते समे त्रिषु' इत्यमरः॥

रामः – एतदुक्तं भवति। साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः। तेषामृतम्भराणि भगवतां परोरजांसि प्रज्ञानानि न क्वचिद्व्याहन्यन्त इति न हि शङ्कनीयानि।

अनुवाद – राम–यह कहा जाता है कि महर्षि लोग धर्म का साक्षात्कार किये होते हैं। उन महात्माओं के, सत्य का धारण करने वाले एवं रजोगुण से परे रहने वाले तत्त्वज्ञान किसी भी काल में अवरुद्ध नहीं होते हैं। अतः उनमें संदेह नहीं करना चाहिए।

टिप्पणी – ऋतम्भराणि–ऋतं सत्यं बिभर्ति धारयति यत् तत् ऋतम्भरं तानि, ऋत भृ + खच्, मुम्। परोरजांसि–रजसः पराणि इति 'राजदन्तादिषु परम्' इत्यनेन रजःशब्दस्य परनिपातः, पारस्करादित्वात् सुट्।

(नेपथ्ये) (नेपथ्ये में)

हा आर्यपुत्र! कुमार–लक्ष्मण! एकाकिनीमशरणामासन्नप्रसववेदनामरण्ये हताशां श्वापदा अभिलषन्ति। हा! इदानीं मन्दभाग्या भागीरथ्यामात्मानं निक्षिपामि।

अनुवाद – हा आर्यपुत्र! कुमार लक्ष्मण! वन में अकेली, रक्षकरहित, प्रसव–वेदना को प्राप्त और आशा–शून्य मुझको हिंसक जंतु खाना चाहते हैं। हाय! अब मंदभागिनी मैं गंगाजी में अपना शरीर त्याग देती हूँ।

टिप्पणी – एकाकिनी=असहाय। एक + आकिनिच् 'एकादाकिनिच्चसहाये' इत्यनेन, ततः नान्तत्वात् ङीप्। 'एकाकी त्वेक एककः' इत्यमरः। आत्मा=शरीर। 'आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च' इत्यमरः।

लक्ष्मणः – कष्टं बतान्यदेव किमपि।

लक्ष्मण – कष्ट है। यह कुछ और ही है।

सूत्रधारः –

विश्वम्भरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गङ्गादेव्यां विमुञ्चति ॥2 ॥

अन्वय – राज्ञा महावने त्यक्ता विश्वम्भरात्मजा देवी प्राप्तप्रसवम् आत्मानं गङ्गादेव्या विमुञ्चति ॥2 ॥

अनुवाद – महाराज राम द्वारा महावन में निर्वासित पृथ्वीपुत्री सीता प्रसव–वेदना के उपस्थित होने पर अपने शरीर को गंगा जो की धारा में छोड़ रही हैं ॥2 ॥

(इति निष्क्रान्तः।) (यह कहकर निकल जाता है।)

रामः – (सावेगम्) देवि! देवि! लक्ष्मणमवेक्षस्व।

राम – (आवेग के साथ) देवि! देवि! लक्ष्मण को देखो अर्थात् मेरे अपराधी होने पर भी लक्ष्मण को देखकर गंगा में प्रवाहित होने से बचो।

लक्ष्मणः – आर्य! नाटकमिदम्।

लक्ष्मण – आर्य! यह नाटक है।

रामः – हा देवि! दण्डकारण्यवासप्रियसखि! एष ते रामाद्विपाकः।

राम – हा देवि! दण्डकारण्य के निवास-काल की प्रिय सखी! राम से तुम्हारा यह हाल हुआ अर्थात् राम के द्वारा तुम्हारी यह दुर्दशा हुई।

लक्ष्मणः – आर्य! आश्वस्य दृश्यताम् प्रबन्धस्त्वार्षः।

लक्ष्मण – आर्य! आश्वस्त होकर ऋषि-प्रणीत दृश्य काव्य देखिये।

रामः – एष सज्जोऽस्मि वज्रमयः।

राम – यह मैं कठोर होकर (सीता-विनाशरूप नाटक देखने के लिए) प्रस्तुत हूँ।

(ततः प्रविशति उत्सङ्गितैकैकदारकाभ्यां पृथिवीगङ्गाभ्यामालम्बिता प्रमुग्धा सीता।)

अनुवाद – (तदनन्तर एक-एक बालक को गोद में लिये हुई पृथ्वी और भागीरथी द्वारा अवलंबनप्राप्त तथा अतिशय मूर्च्छायुक्त सीता आती है।)

रामः – वत्स! असंविज्ञातपदनिबन्धने तमसीवाहामद्य प्रविशामि, धारय माम्।

अनुवाद – राम - वत्स! आज मैं अन्धकार में, जहाँ पैर रखना भी नहीं मालूम हो रहा है, निमग्न-सा हो रहा हूँ। मुझे सहारा दो।

देव्यौ–

समाश्वसिहि कल्याणि दिष्ट्या वैदेहि वर्धसे।
अन्तर्जले प्रसूतानि रघुवंशधरौ सुतौ॥3॥

अन्वय – कल्याणि वैदेहि समाश्वसिहि, दिष्ट्या वर्धसे, अन्तर्जले रघुवंशधरौ सुतौ प्रसूता असि॥3॥

अनुवाद – दोनों देवियाँ–हे मङ्गलमयि जानकि! आश्वस्त होवो। भाग्य से बढ़ रही हो। (जिसलिए कि) रघुवंश को धारण करने वाले दो पुत्रों को तुमने जल के भीतर जन्म दिया है॥3॥

टिप्पणी – अन्तर्जले–जलस्य अन्तः इति अन्तर्जलम् तस्मिन्, विभक्त्यर्थेऽव्ययीभावः। प्रसूता–आदिकर्मविवक्षया कर्तरि क्तः। इस पद्य में आश्वासन के प्रति पुत्र-प्रसव हेतु है, अतः वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है॥3॥

सीता – (आश्वस्य) दिष्ट्या दारकौ प्रसूतास्मि। हा आर्यपुत्र!

सीता – (आश्वस्त होकर) भाग्य से दो बालकों को उत्पन्न किया है। हा आर्यपुत्र!

लक्ष्मण – (पादयोर्निपत्य) आर्य! दिष्ट्या वर्धामहे, कल्याण-प्ररोहो रघुवंशः। (विलोक्य) हा! कथं क्षुभितबाष्पोत्पीडनिर्भरः प्रमुग्ध एवार्यः। (इति वीजयति।)

अनुवाद – लक्ष्मण-(चरणों पर गिर कर) आर्य! भाग्य से हम लोग बढ़ रहे हैं। रघुकुल में कल्याणकारी अंकुर उत्पन्न हुआ है। (देखकर) हाय! क्यों आर्य बहते हुए आँसुओं के समूह से व्याप्त होकर मूर्च्छित हो गये हैं। (यह कहकर पंखा झलने लगते हैं।)

देव्यौ – वत्से! समाश्वसिहि।

दोनों देवियाँ – वत्से! आश्वस्त होओ।

सीता – (समाश्वस्य) भगवत्यौ! के युवाम्? मुञ्चतम्।

सीता – (आश्वस्त होकर) देवियो! आप दोनों कौन हैं? मुझे छोड़ दें।

पथिवी – इयं ते श्वशुरकुलदेवता भागीरथी।

पृथिवी – यह तुम्हारे श्वशुर-कुल की देवता गंगाजीहै।

सीता – नमस्ते भगवति!

सीता – भगवति! आपको नमस्कार है।

भागीरथी – चारित्रोचितां कल्याणसम्पदमधिगच्छ।

अनुवाद – भागीरथी-(पातिव्रत्य रूप) चरित्र के अनुकूल मंगल-सम्प्रति लाभ करो।

लक्ष्मणः – अनुगृहीताः स्मः।

लक्ष्मण – हम लोग अनुगृहीत हैं।

भागीरथी – इयन्ते जननी विश्वम्भरा।

भागीरथी – ये तुम्हारी माता पृथ्वी है।

सीता – हा अम्ब! ईदृश्यहं त्वया दृष्टा?

सीता – हाय माता! तुमने इस अवस्था में मुझे देखा?

पृथ्वी – एहि पुत्रि वत्से सीते!

पृथिवी – प्यारी बेटी सीता! आओ।

(उभौ आलिंग्य मूर्च्छतः।) (दोनों आलिंगन करके मूर्च्छित हो जाती हैं।)

लक्ष्मणः–(सहर्षम्) कथमार्या गङ्गापृथिवीभ्यामभ्युपपन्ना।

लक्ष्मण – (हर्ष के साथ) कैसे आर्या गंगा और पृथिवी के द्वारा अनुगृहीत हुई?

रामः – दिष्ट्वा खल्वेतत्। करुणान्तरं तु वर्तते।

राम – भाग्य से यह हुआ। परन्तु यह दूसरी शोकोद्दीपक घटना है।

भागीरथी – अत्रवती विश्वम्भरा व्यथत इति जितमपत्यस्नेहेन। यद्वा सर्वसाधारणो ह्येष मनसो मूढग्रन्थिरान्तरश्चेतनावतामुपप्लवः संसारतन्तुः। सखि भूतधात्रि! वत्से वैदेहि! समाश्वसिहि।

अनुवाद – पूज्य पृथ्वी भी पुत्र के दुःख से व्यथित हो रही हैं इसलिए सन्तान के स्नेह ने सबको जीत लिया अथवा यह स्नेह सबमे समान भाव से रहने वाला, मन को मोह में बाँधने वाला, प्राणियों की आभ्यन्तरिक चंचलता का कारण और संसार का सूत्रस्वरूप है। सखि वसुन्धरे! वात्सल्य-भाजन सीते! आश्वस्त होओ।

पृथ्वी – (आश्वस्य) देवि! सीतां प्रसूय कथमाश्वसिमि?

पृथ्वी – (आश्वस्त होकर) देवि! सीता को जन्म देकर कैसे आश्वस्त होऊँ?

सोढश्चिरं राक्षसमध्यवासस्त्यागो द्वितीयस्तु सुदुःसहोऽस्याः।

अनुवाद – इसका चिरकाल तक राक्षसों के बीच में रहना तो सहन कर लिया, किन्तु दूसरा परित्याग अर्थात् पति द्वारा किया गया निर्वासन अत्यन्त असह्य हो रहा है।

गंगा–

को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे? ॥4 ॥

अन्वय – को नाम जन्तुः पाकाभिमुखस्य दैवस्य द्वाराणि पिधातुम् ईष्टे? ॥4 ॥

अनुवाद–फल देने के लिए तैयार अदृष्ट के द्वारों को बन्द करने में कौन प्राणी समर्थ होता ह॥4 ॥

टिप्पणी–पिधातुम् = वन्द करने या रोकने के लिए। अपि धा + तुमुन्। भागुरि आचार्य के मत से अपि में अकार का लोप हो जाता है। इस श्लोक में अर्थापत्ति और अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यह इन्द्रवज्रा छंद है॥4 ॥

पृथिवी–भगवति भागीरथि! युक्तमेतत्सर्वं वो रामभद्रस्य?

पृथ्वी–भगवति गङ्गे! क्या आपके रामभद्र का यह सब आचरण ठीक है?

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः।
नाहं न जनको नाग्निर्न तु वृत्तिर्न सन्ततिः॥5 ॥

अन्वय–बाल्ये बालेन पीडितः पाणिः न प्रमाणीकृतः, अहं न, जनकः न, अग्निः न, तु वृत्तिः न, सन्ततिः न॥5 ॥

अनुवाद–न तो बाल्यावस्था में बालक रामभद्र द्वारा किया गया पाणिग्रहण प्रामाणिक माना गया और न मैं, न जल, न अग्नि, न (सीता का पातिव्रत्यपूर्ण) आचरण और न सन्तान ही प्रामाणिक मानी गई॥5 ॥

टिप्पणी–इस श्लोक में प्रमाणीकरणरूप एक क्रिया के साथ पाणि आदि का सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है॥5 ॥

सीता – हा आर्यपुत्र! स्मरसि?

सीता – हाय आर्यपुत्र! स्मरण करते हैं?

पृथिवी – आः, कस्तवार्यपुत्रः?

सीता – (सलज्जास्रम्) यथाम्बा भणति।

सीता – (लज्जा और आँसू के साथ) अम्माँ जैसा कहें।

रामः – अम्ब पृथिवि! ईदृशोऽस्मि।

राम – माता पृथिवी! मैं ऐसा ही हूँ अर्थात् सीता से आर्यपुत्र कहलाने योग्य नहीं हूँ।

गंगा – भगवति वसुन्धरे! शरीरमसि संसारस्य। तत् किमसंविदानेव जामात्रे कुप्यसि?

गंगा – भगवती पृथिवी! आप संसार की देह हैं। फिर क्यों अनजान की तरह जामाता पर क्रोध कर रही हैं?

टिप्पणी – असंविदाना=न जानती हुई। 'सम्' उपसर्गपूर्वक विद् धातु से 'विदिप्रच्छिस्वरती-नामुपसंख्यानम्' इस वार्तिक से आत्मनेपद होने पर शानच् होता है। जामात्रे–इसमें 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' सूत्र से चतुर्थी होती है।

घोरं लोके विततमयशो या च वह्नौ विशुद्धि-
र्लङ्काद्वीपे कथमिव जनस्तामिह श्रद्दधातु।
इक्ष्वाकूणां कुलधनमिदं यत् समाराधनीयः
कृत्स्नो लोकस्तदिह विषमे किं स वत्सः करोतु॥6 ॥

अन्वय – लोके घोरम् अयश: विततम् लङ्काद्वीपे वह्नौ या च विशुद्धि:, ताम् इह जन: कथम् इव श्रद्दधातु? इदम् इक्ष्वाकूणां कुलधनं, यत् कृत्स्नो लोक: समाराधनीय:, तत् इह विषमे स वत्स: किं करोतु? ॥6 ॥

अनुवाद – लोक में दारुण अपयश फैल गया। लंकाद्वीप में जो अग्निपरीक्षा हुई थी, उस पर अत्यन्त दूर होने के कारण यहाँ की प्रजा कैसे विश्वास करे? यह इक्ष्वाकुवंशियों का कुलव्रत है कि सकल प्रजाओं को सन्तुष्ट रखना चाहिए। इसलिए इस धर्म-संकट में वह वत्स रामभद्र क्या करे? ॥6 ॥

टिप्पणी – इस श्लोक में सीता-निर्वासन रूप कार्य का लोक-निन्दा रूप एक कारण होने पर भी लोकाराधनरूप कारणान्तर का निरूपण हो जाने से समुच्च अलंकार है। यह मन्दाक्रान्ता छंद है ॥6 ॥

लक्ष्मण: – अव्याहतान्त:प्रकाशा हि देवता: सत्त्वेषु।

अनुवाद – लक्ष्मण – निश्चय ही प्राणियों के विषय में देवताओं की अन्तर्यामिता (मनोविज्ञान) अकथनीय होती है।

गंगा – तथाप्येष तेऽञ्जलि:।

गंगा – तो भी अर्थात् दोष न रहने पर भी रामभद्र के ऊपर अनुग्रह करने के लिए आपको हाथ जोड़ती हूँ।

टिप्पणी – अञ्जलि:=हाथ जोड़कर प्रणाम करना। श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम करने से देवता शीघ्र प्रसन्न होते हैं। कहा भी है–'अञ्जलि: परमा मुद्रा क्षिप्रं देवप्रसादिनी'। किन्हीं पुस्तकों में 'गंगा–तथाप्येष तेऽञ्जलि:' के स्थान में लक्ष्मण की ही उक्ति के साथ 'विशेषण गंगा, तदयमञ्जलिस्ते' इस प्रकार पाठ मिलता है। अर्थ स्पष्ट की है।

राम: – अम्ब! अनुवृत्तस्त्वया भगीरथकुले प्रसाद:।

अनुवाद – माँ! भगीरथ-वंश के प्रति आपने अपना अनुग्रह अविच्छिन्न रखा।

पृथ्वी – नित्यं प्रसन्नास्मि व:। किन्त्वसावापातदु:सह: स्नेहसंवेग:। न पुनर्न जानामि सीतास्नेहं रामभद्रस्य।

अनुवाद – मैं सर्वदा आप लोगों से प्रसन्न रहती हूँ। किन्तु यह स्नेहजन्य क्षोभ आपातत: दु:सह होता है। मैं सीता के प्रति रामभद्र का प्रेम नहीं जानती हूँ, ऐसी बात नहीं है।

टिप्पणी – आपातदु:सह:=सुनते ही सहन-शक्ति से बाहर हो जाने वाला। 'दर्शनक्षण आपातस्तथैवाकर्णनक्षणे' इति कोश:। 'तदात्वे पात आपात:' इति वैजयन्ती। न जानामि न=न जानती हूँ, यह बात नहीं अर्थात् जानती ही हूँ। 'द्वौ नञौ प्रकृत्यर्थे गमयत:' इति नय:।

दह्यमानेन मनसा दैवाद्वत्सां विहाय स:।
लोकोत्तरेण सत्त्वेन प्रजापुण्यैश्च जीवति ॥7 ॥

अन्वय– देवात् वत्सां विहाय स: दह्यमानन मनसा लोकोत्तरेण सत्त्वेन प्रजापुण्यैश्च जीवति ॥7 ॥

अनुवाद– भाग्यवश सीता का परित्याग करके रामभद्र जलते हुए चित्त, अलौकिक धैर्य और प्रजाओं के धर्म से जीवन धारण कर रहे हैं ॥7 ॥

टिप्पणी–इस पद्य में कारणभूत पुण्य प्रजा में रहने वाला है और उसका कार्यभूत जीवन राम में विद्यमान है, इस प्रकार कार्य और कारण के भिन्न-देश-वृत्ति होने से असंगति अलंकार है ॥7 ॥

राम:–सकरुणा हि गुरवो गर्भरूपेषु।

अनुवाद–गुरुजन सन्तानों के प्रति अर्थात् हम लोगों पर दयालु ही हैं।

सीता–(रुदती कृताञ्जलिः) नयतु मामात्मनोऽङ्गेषु विलयमम्बा।

सीता–(रोतो हुई अञ्जलि बाँधकर) माँ मुझे अपने अंगों में समा लो।

गंगा–किं ब्रवीषि? अविलीना वत्से! संवत्सरसहस्राणि भूयाः।

अनुवाद–बेटी! क्या कह रही हो? तुम हजार वर्ष तक आयुष्मती रहो।

पृथिवी–वत्से! अवेक्षणीयौ ते पुत्रौ।

पृथिवी–बेटी! तुम्हें दोनों पुत्रों का परिपालन करना चाहिये।

टिप्पणी–ते–यहाँ 'अवेक्षणीयौ' इस पद के योग में 'कृत्यानां कर्तरि वा' सूत्र से षष्ठी हुई।

सीता–किमेताभ्यामनाथाभ्याम्?

सीता–ये दोनों अनाथ बालक कैसे रहेंगे?

टिप्पणी–किन्हीं पुस्तकों में 'अणाधम्हि। (अनाथास्मि)' यह पाठ है। अर्थ स्पष्ट है।

रामः–हृदय! वज्रमसि।

राम–हृदय! तू वज्र है।

गङ्गा–कथं वत्सौ सनाथावप्यनाथौ?

गङ्गा–बच्चे सनाथ होते हुए भी अनाथ क्यों है?

टिप्पणी–कहीं 'कथं त्वं' सनाथाप्यनाथा?' यह पाठ है।

सीता–कीदृशं मे अभाग्यायाः सनाथत्वम्?

सीता–मुझ अभागिनी की सनाथता कैसी?

देव्यौ–

जगन्मङ्गलमात्मानं कथं त्वमवमन्यसे?
आवयोरपि यत्सङ्गात् पवित्रत्वं प्रकृष्यते ॥8॥

अन्वय – त्वं जगन्मंगलम् आत्मानं कथम् अवमन्यसे? सत्सङ्गात् आवयोः अपि पवित्रत्वं प्रकृष्यते ॥8॥

अनुवाद – दोनों देवियाँ–तुम क्यों विश्व का कल्याण करने वाली अपनी आत्मा का अपमान कर रही हो? जिसके संसर्ग से हम दोनों गंगा और पृथ्वी की भी पवित्रता उत्कृष्ट हो रही है ॥8॥

टिप्पणी – प्रकृष्यते–यहाँ कर्मकर्त्ता से लट् लकार हुआ है। इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार है ॥8॥

लक्ष्मणः – आर्य! श्रूयताम्।

लक्ष्मण – आर्य! सुनें।

रामः – लोकः शृणोतु।

राम – लोक सुने।

(नेपथ्ये कलकलः) (नेपथ्य में शोरगुल होता है।)

रामः – अद्‌भुततरं किमपि।

राम – कोई अत्यन्त आश्चर्यजनक पदार्थ है।

सीता – किमित्याबद्धकलकलं प्रज्वलितमन्तरिक्षम्?

अनुवाद – सीता–क्यों आकाश कोलाहल से व्याप्त तथा प्रज्वलित हो रहा है?

देव्यौ – ज्ञातम्।

दोनों देवियाँ – समझ गईं।

कृशाश्वः कौशिको राम इति येषां गुरुक्रमः।
प्रादुर्भवन्ति तान्येव शस्त्राणि सह जृम्भकैः ॥9॥

अन्वय – कृशाश्वः कौशिको राम इति येषां गुरुक्रमः, तानि एव शस्त्राणि जृम्भकैः सह प्रादुर्भवन्ति ॥9॥

अनुवाद – जिनकी परम्परा कृशाश्व, विश्वामित्र और रामचन्द्र से है, वे ही शस्त्र जृम्भक नामक अस्त्रों के साथ प्रकट हो रहे हैं। इसी से आकाश जाज्वल्यमान दिखाई दे रहा है ॥9॥

(नेपथ्ये) (नेपथ्य में)

देवि सीते! नमस्तेऽस्तु गतिर्नः पुत्रकौ हि ते।
आलेख्यदर्शनादेव ययोर्दाता रघूद्वहः ॥10॥

अन्वय – हे देवि सीते! ते नमः अस्तु, ते पुत्रकौ नः गतिः, हि ययोः आलेख्यदर्शनात् एव दाता रघूद्वहः ॥10॥

अनुवाद – देवि सीते! आपको प्रणाम है। आपके दोनों नवजात बालक हमारे पास हैं। क्योंकि चित्र देखने के समय से ही रामचन्द्र जी ने हमें इनके पास कर दिया है ॥10॥

सीता – दिष्ट्या अस्त्रदेवता एताः। आर्यपुत्र! अद्यापि ते प्रसादाः परिस्फुरन्ति।

सीता – हर्ष की बात है कि ये अस्त्रदेवता हैं। आर्यपुत्र! आज भी आपके अनुग्रह प्रकाशित हो रहे हैं।

लक्ष्मणः – उक्तमासीदार्येण 'सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ती'ति।

लक्ष्मण – आर्य ने कहा था–ये अस्त्र अभी सब प्रकार से तुम्हारी सन्तान को मिलेंगे।

देव्यौ–

दोनों देवियाँ–

नमो वः परमास्त्रेभ्यो धन्याः स्मो वः परिग्रहात्।
काले ध्यातैरुपस्थेयं वत्सयोर्भद्रमस्तु वः ॥11॥

अन्वय – परमास्त्रेभ्यः वः नमः, वः परिग्रहात् धन्या स्मः, काले ध्यातैः वत्सयोः उपस्थेयं, वो भद्रम् अस्तु ॥11॥

अनुवाद – उत्कृष्ट अस्त्र रूप आप जृम्भकाधिष्ठातृदेवों को नमस्कार है। आप लोगों के ग्रहण करने से हम लोग कृतकृत्य हो गये। समय पर ध्यान किये जाने पर आप लोग वत्सों सीता के पुत्रों के पास आ जाया करें। आप लोगों का कल्याण हो ॥11॥

रामः–

क्षुभिताः कामपि दशां कुर्वन्ति मम सम्प्रति।
विस्मयानन्दसन्दर्भजर्जराः करुणोर्मयः ॥12॥

अन्वय–सम्प्रति क्षुभिताः विस्मयानन्दसन्दर्भजर्जराः करुणोर्मयः मम काम् अपि दशां कुर्वन्ति ॥12॥

अनुवाद–राम–इस समय विस्मय एवं हर्ष के सम्मिश्रण से जर्जर तथा क्षोभयुक्त शोक की लहरें मेरी अवर्णनीय अवस्था उत्पन्न कर रही हैं ॥12॥

टिप्पणी–विस्मयानन्द.–यहाँ राम को पृथ्वी और गंगा के अनुग्रह–लाभ रूप अलौकिक वृत्तान्त से आश्चर्य और पुत्र–रत्न की प्राप्ति से आनन्द हुआ ॥12॥

देव्यौ–मोदस्व वत्से! मोदस्व। रामभद्रतुल्यौ ते पुत्रकाविदानीं संवृत्तौ।

दोनों देवियाँ–आनन्दित होवो बेटी! आनन्दित होवो। तुम्हारे दोनों पुत्र अब रामभद्र के तुल्य (सामर्थ्यवान्) हो गये हैं।

सीता–भगवत्यौ! क एतयोः क्षत्रियोचितविधिं कारयिष्यति?

सीता–देवियो! कौन इन दोनों का क्षत्रियोचित संस्कार कराएगा?

रामः–

एषा वसिष्ठशिष्याणां रघूणां वंशनन्दिनी।
कष्टं सीतापि सुतयोः संस्कर्तारं न विन्दति ॥13॥

अन्वय – वसिष्ठशिष्याणां, रघूणां वंशनन्दिनी एषा सीतापि सुतयोः संस्कर्तारं न विन्दति, कष्टम् ॥13॥

अनुवाद–राम–(भगवान्) वसिष्ठ के शिष्य रघुवंशीय राजाओं के कुल को आनन्द देने वाली वह सीता भी पुत्रों के संस्कार करने वाले व्यक्ति को नहीं पा रही है, यह दुःख की बात है॥13॥

गङ्गा–भद्रे! किं तवानया चिन्तया? एतौ हि वत्सौ स्तन्यत्यागात्परेण भगवतो वाल्मीकेरर्पयिष्यामि।

अनुवाद–भद्रे! तुम्हें यह चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? क्योंकि दूध छोड़ने के बाद इन दोनों चिरञ्जीवों को मैं भगवान् वाल्मीकि को सौंप दूँगी।

टिप्पणी–वाल्मीकेः–यहाँ 'कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव' इस नियम के अनुसार चतुर्थी के अर्थ में षष्ठी हुई। किन्हीं पुस्तकों में यह उक्ति गंगा और पृथ्वी दोनों की मानी गईहै। तदनुसार पाठ इस प्रकार है–देव्यौ–पुत्रि! किं... अथर्पयिष्याव:।' अन्त में 'स एवैतयोः क्षत्रकृत्यं करिष्यति।' यह अधिक पाठ है, किन्तु निम्नलिखित श्लोक नहीं है।

वसिष्ठ एव ह्याचार्यो रघुवंशस्य सम्प्रति।
स एव चानयोर्ब्रह्मक्षत्रकृत्यं करिष्यिति॥14॥

अन्वय–सम्प्रति वसिष्ठ एव हि रघुवंशस्य आचार्यः, स एव च अनयोः ब्रह्मक्षत्रकृत्यं करिष्यति॥14॥

अनुवाद–इस समय भगवान् वसिष्ठ ही रघुकुल के गुरु हैं। वे ही इन दोनों (शिशुओं) का ब्राह्मणोचित (वेदाध्यापन) और क्षत्रियोचित धनुर्वेदाध्यापन कर्म सम्पन्न करेंगे॥14॥

टिप्पणी–इस श्लोक का प्रसंग यहाँ उपयुक्त नहीं प्रतीत होता है, कारण ऊपर 'वाल्मीकेरर्पयिष्यामि' कहने के बाद वसिष्ठजी द्वारा संस्कार कराने की बात 'वदतो व्याघातः' होगी॥14॥

यथा वसिष्ठाङ्गिरसावृषिः प्राचेतसस्तथा।
रघूणां जनकानां च वंशयोरुभयोर्गुरुः॥15॥

अन्वय – रघूणां जनकानां च यथा वसिष्ठाङ्गिरसौ तथा प्राचेतसः ॠषिः उभयोः वंशयोः गुरुः॥15॥

अनुवाद – रघुवंशी तथा जनकवंशी राजाओं के जैसे (क्रमशः) वसिष्ठ जी तथा शतानन्द जी गुरु हैं उसी प्रकार वाल्मीकि मुनि भी दोनों वंशों के गुरु हैं॥15॥

रामः – सुविचिन्ततं भगवत्या।

राम – भगवती ने ठीक सोचा।

लक्ष्मणः – आर्य! सत्यं विज्ञापयामि। तैस्तैरुपायैरिमौ वत्सौ कुशलवावुत्प्रेक्षे।

लक्ष्मण – आर्य! मैं सत्य निवेदन करता हूँ कि उन-उन उपायों से ये दोनों कुश और लव सीता-पुत्र हैं–ऐसी मैं सम्भावना करता हूँ।

एतौ हि जन्मसिद्धास्त्रौ प्राप्तप्राचेतसावुभौ।
आर्यतुल्याकृती वीरौ वयसा द्वादशाब्दकौ ॥16॥

अन्वय–हि एतौ उभौ जन्मसिद्धास्त्रौ प्राप्तप्राचेतसौ आर्यतुल्याकृती वीरौ वयसा द्वादशाब्दकौ ॥16॥

अनुवाद–क्योंकि इन दोनों कुश और लव को जृम्भकास्त्र जन्मसिद्ध हैं, इन्होंने वाल्मीकि मुनि को प्राप्त किया है अर्थात् वाल्मीकि मुनि इनके संस्कर्ता तथा शिक्षक है, ये दोनों वीर हैं, आपके समान आकृति वाले हैं और दोनों की अवस्था बारह वर्ष की है॥16॥

रामः–वत्सावित्येवाहं परिप्लूवमानहृदयः प्रमुग्धोऽस्मि।

राम–ये दोनों वत्स (अर्थात् सीता-पुत्र) हैं–यही सोचकर मैं चञ्चलचित्त तथा अत्यन्त मुग्ध हो रहा हूँ।

पृथिवी–एहि वत्से! पवित्रीकुरु रसातलम्।

पृथिवी–आओ बेटी! पाताल को पवित्र करो।

रामः–हा प्रिये! लोकान्तरं गतासि?

राम–हाय प्यारी! दूसरे लोक में चली गई हो?

सीता–नयतु मामात्मनोऽङ्के विलयमम्बा। न शक्तास्मि ईदृशं जीवलोकस्य परिभवमनुभवितुम्।

अनुवाद–माँ मुझे अपने अन्दर विलीन कर लें। मैं जगत् का ऐसा तिरस्कार सहन करने में असमर्थ हूँ।

लक्ष्मणः–किमुत्तरं स्यात्?

लक्ष्मण–क्या उत्तर होगा? अर्थात् पृथिवी सीता के कथन का क्या उत्तर देंगी, यह सुनने के लिए व्याकुल हूँ।

पृथिवी–मन्नियोगतः स्तन्यत्यागं यावत्पुत्रयोरवेक्षस्व। परेण तु यथा रोचिष्यते तथा करिष्यामि।

अनुवाद–पृथिवी–मेरे आदेश से तुम दूध छोड़ने के समय तक पुत्रों की देखभाल करो। बाद में तुम्हें जैसा अच्छा लगेगा वैसा मैं करूँगी।

गङ्गा–एवं तावत्।

गङ्गा–ऐसा ही करो।

(इति निष्क्रान्ते देव्यौ सीता च।) (यह कहकर दोनों देवियाँ तथा सीता जी चली गई।)

रामः–कथं प्रतिपन्न तावत्। हा चारित्रदेवते! लोकान्तरे पर्यवसिताऽसि? (इति मूर्च्छति।)

राम–क्या पाताल जाना स्वीकार ही कर लिया? अरे चरित्र की देवता! तुम दूसरे लोक में चली गई हो? (यह कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं।)

लक्ष्मणः–भगवन् वाल्मीके! परित्रायस्व, परित्रायस्व। एष ते काव्यार्थः।

अनुवाद–लक्ष्मण–भगवन् वाल्मीके! बचाइये। क्या आपके काव्य का यही प्रयोजन है अर्थात् अभिनय द्वारा राम का विनाश ही आपका उद्देश्य है?

(नेपथ्ये = नेपथ्य में)

अपनीयतामातोद्यम्। भो जङ्गमस्थावराः प्राणभृतो मर्त्यामर्त्याः! पश्यन्त्विदानीं वाल्मीकिनाभ्यनुज्ञातं पवित्रमाश्चर्यम्।

लक्ष्मणः–(विलोक्य)

लक्ष्मण–(देखकर)

मन्थादिव क्षुभ्यति गाङ्गमम्भो
व्याप्तं च देवर्षिभिरन्तरिक्षम्।
आश्चर्यमार्य सह देवताभ्यां
गङ्गामहीभ्यां सलिलादुपैति ॥17॥

अन्वय–गाङ्गम् अम्भः मन्थात् इव क्षुभ्यति, अन्तरिक्षं च देवर्षिभिः व्याप्तम्। आश्चर्यम्! आर्या गङ्गामहीभ्यां देवताभ्यां सह सलिलात् उपैति ॥17॥

अनुवाद–गंगा जी का जल मानों मन्थन के कारण उद्वेलित चंचल हो रहा है, आकाश देवों और ऋषियों से व्याप्त हो गया है और आश्चर्य की बात है कि आर्या सीता गंगा तथा पृथिवी देवियों के साथ जल से उठ रही हैं ॥17॥

टिप्पणी–इस श्लोक में भावाभिमानिनी वाच्या क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। यह इन्द्रव्रजा छन्द है ॥17॥

(नेपथ्ये) (नेपथ्य में)

अरुन्धति! जगद्वन्द्ये! गंगापृथ्व्यौ जुषस्व नौ।
अर्पितेयं तवावाभ्यां सीता पुण्यव्रता वधूः ॥18॥

अन्वय–जगद्वन्द्ये अरुन्धति! नौ गंगापृथ्वी जुषस्व। आवाभ्याम् इयं पुण्यव्रता वधूः सीता तब अर्पिता ॥18॥

अनुवाद–जगद्वन्दनीय अरुन्धती जी! हम दोनों गंगा और पृथिवी हैं, हमें आप्यायित कीजिये। हम दोनों इस पवित्र व्रत वाली वधू सीता को आपको सौंपती हैं ॥18॥

लक्ष्मणः–अहो आश्चर्यमाश्चर्यम्! आर्य! पश्य, पश्य। कष्टमद्यापि नोच्छ्वसित्यार्यः।

लक्ष्मण–अहा आश्चर्य है, आश्चर्य है। आर्य! देखिये, देखिये। कष्ट है! आर्य अब भी होश में नहीं आ रहे हैं।

(ततः प्रविशत्यरुन्धती सीता च।) (इसके बाद अरुन्धती और सीता आती है।)

अरुन्धती–

त्वरस्व वत्से! वेदैहि! मुञ्च शालीनशीलताम्।
एहि जीवय मे वत्सं सौम्यस्पर्शेन पाणिना ॥19॥

अन्वय–वत्से वैदेहि! त्वरस्व, शालीनशीलतां मुञ्च, एहि, सौम्यस्पर्शेन पाणिना मे वत्सं जीवय ॥19॥

अनुवाद–अरुन्धती–बेटी जानकी! शीघ्रता करो। लज्जाशीलता त्यागो। आओ। कोमल स्पर्शवाले हाथ से मेरे वात्सल्य-भाजन (रामभद्र) को चैतन्य करो ॥19॥

सीता–(ससम्भ्रमं स्पृशति) समाश्वसितु समाश्वसित्वार्यपुत्रः।

सीता–(हड़बड़ी के साथ स्पर्श करती है) आर्यपुत्र आश्वस्त हों, आश्वस्त हों।

रामः–(समाश्वस्य सानन्दम्) भोः! किमेतत्? (दृष्ट्वा सहर्षादद्भुतम्) कथं देवी जानकी? (सलज्जम्) अये! कथमम्बाऽरुन्धती? कथं सर्वे ऋष्यशृङ्गादयोऽस्मद्गुरवः?

राम–(आश्वस्त होकर आनन्द के साथ) अहो! यह क्या है? (देखकर हर्ष और आश्चर्य के साथ) देवी जानकी कैसे? (लज्जा के साथ) अरे! माता अरुधन्ती कैसे? और कैसे ऋष्यशृङ्ग आदि सभी हमारे गुरुजनवर्ग?

अरुन्धती–वत्स! एषा भागीरथी रघुकुलदेवता देवी गङ्गा सुप्रसन्ना।

अरुन्धती—वत्स! भगीरथ द्वारा लायीं गईं तथा रघुकुल की देवता ये गङ्गा देवी अत्यन्त प्रसन्न हैं।

(नेपथ्ये = नेपथ्य में)

जगत्पते रामभद्र! स्मर्यतामालेख्यदर्शने मां प्रत्यात्मवचनम्। 'सा त्वमम्ब! स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भवे'ति। तदनृणास्मि।

अनुवाद—जगत्पति रामभद्र! चित्र देखने के समय मुझे उद्देश्य करके आपने जो वचन कहा था, उसका स्मरण कीजिये–मातः! आप अरुन्धती की तरह वधू सीता के कल्याण-चिन्तन में तत्पर रहें। सो मैं इस सम्बन्ध में ऋणमुक्त हो गई हूँ।

अरुन्धती—इयं ते श्वश्रूर्भगवती वसुन्धरा।

अरुन्धती—ये आपकी सास भगवती पृथ्वी हैं।

(नेपथ्ये = नेपथ्य में)

उक्तमासीदायुष्मता वत्सायाः परित्यागे 'भगवति वसुन्धरे! सुश्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्' इति। तदधुना कृतवचनास्मि प्रभोर्वत्सस्येति।

अनुवाद—सीता का परित्याग करने के समय आयुष्मान् ने कहा था–'भगवति पृथिवि! श्लाघनीय कन्या जानकी की देखभाल करना'। इसलिए इस समय प्रभु वत्स (आप) के वचन का पालन मैंने किया है।

रामः—कृतापराधोऽपि भगवति! त्वयानुकम्पयितव्यो रामः प्रणमति।

राम—भगवति! अपराध करने पर भी आपके द्वारा अनुगृहीत राम प्रणाम करता है।

अरुन्धती—भो भोः पौरजानपदाः! अधुना वसुन्धराजाह्नवीभ्यामेवं प्रशस्यमाना ममारुन्धत्याः समर्पिता, पूर्वम् भगवता वैश्वानरेण निर्णीतपुण्यचारित्रा, सब्रह्मकैश्च देवैः स्तुता सावित्रकुलवधूर्देवयजनसम्भवा जानकी परिगृह्यताम्। कथमिह भवन्तो मन्यन्ते?

अनुवाद—अरुन्धती–हे नागरिकों तथा ग्रामवासियों! इस समय पृथ्वी और भागीरथी द्वारा इस प्रकार प्रशंसा करके मुझे सौंपी हुई, पहले भगवान् अग्नि द्वारा निर्णीत पवित्र चरित्र वाली, ब्रह्मा आदि देवों से स्तुति को प्राप्त, सूर्यवंश की कुलवधू और यज्ञभूमि से उत्पन्न जानकी का ग्रहण करें–इस सम्बन्ध में आप लोगों की क्या राय है?

लक्ष्मणः—आर्य! एवमम्बयाऽरुन्धत्या च निर्भर्त्सिताः पौरजानपदाः कृत्स्नश्च भूतग्राम आर्यां नमस्कुर्वन्ति। लोकपालाः सप्तर्षयश्च पुष्पवृष्टिभिरुपतिष्ठन्ते।

लक्ष्मण—आर्य! इस प्रकार माता अरुन्धतो से तिरस्कृत होकर पुरवासी तथा ग्रामवासी जन और सकल प्राणिसमूह आर्या को प्रणाम कर रहे हैं। लोक-पाल और सप्तर्षिगण पुष्पों की वर्षा से उनकी पूजा कर रहे हैं।

टिप्पणी—आर्याम्–इसमें 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी' इस न्याय के बल से नमः शब्द के योग में भी द्वितीया हुई। लोकपालाः–'इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत, वुरण, मरुत्, कुबेर और ईश' लोकपाल कहलाते हैं, ये क्रमशः पूर्व आदि दिशाओं और विदिशाओं के अधिपति हैं। सप्तर्षयः–'मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, ऋतु, अंगिरा और वसिष्ठ' सप्तर्षि कहलाते हैं। उपतिष्ठन्ते–यह 'उप' उपसर्गपूर्वक स्था धातु से बनता है। इसमें 'उपात्रेवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्' इस वार्तिक से आत्मनेपद हुआ।

अरुन्धती—जगत्पते रामचन्द्र।

अरुन्धती—जगदीश्वर रामभद्र!

नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम्।
हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे॥20॥

अन्वय—त्वं हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिं प्रियां धर्मचारिणीम् अध्वरे यथाधर्मे नियोजन॥20॥

अनुवाद—स्वर्णमयी प्रतिमा की मूलभूत प्रिय सहधर्मिणी सीता को यज्ञ में धर्मानुसार नियुक्त करें॥20॥

टिप्पणी—हिरण्मय्याः—हिरण्य + मयट् 'तस्य विकारः' इत्यनेन, ततः टित्त्वान्ङीप् 'दाण्डिनायने' –त्यादिसूत्रेण यलोपनिपातः॥20॥

सीता—(स्वगतम्) अपि जानात्यार्यपुत्रः सीताया दुःखं परिमार्ष्टुम्।

सीता—(मन में) आर्यपुत्र सीता का दुःख मिटाना भी जानते हैं।

रामः—भगवती की जैसी आज्ञा।

लक्ष्मणः—कृतार्थोऽस्मि।

लक्ष्मण—मैं कृतार्थ हुआ।

सीता—प्रत्युज्जीविताऽस्मि।

सीता—मेरा पुनर्जीवन हुआ है।

लक्ष्मणः—आर्ये! अयं लक्ष्मणः प्रणमति।

लक्ष्मण—आर्ये! यह लक्ष्मण आपको प्रणाम करता है।

सीता—वत्स! ईदृशस्त्वं चिरं जीव।

सीता—वत्स! तुम ऐसे वियुक्त भाई-भावी के मिलन से आनन्दित होते हुए चिरकाल तक जीते रहो।

अरुन्धती—भगवन् वाल्मीके! उपनयेदानीं सीतागर्भसम्भवौ रामभद्रस्य कुशलवौ। (इति निष्क्रान्ता।)

अरुन्धती—भगवन् वाल्मीके! अब सीता के गर्भ से उत्पन्न कुश और लव को रामभद्र के पास ले आएँ। (यह कहकर चली जाती हैं।)

टिप्पणी—यहाँ गर्भाङ्क अन्तर्नाटक समाप्त हो जाता है। गर्भाङ्क का लक्षण यह है–'अङ्कोदरप्रविष्टो यो रङ्गोद्वारामुखादिमान्। अङ्कोऽपरः स गर्भाङ्कः सबीजः फलवानपि॥' इस लक्षण के अन्तर्वर्ती बीज का लक्षण इस प्रकार है–अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यत् विसर्पति। फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते॥' प्रकृत गर्भाङ्क में 'हा! दाणिं मन्दभाइणी...' यह बीज है, 'प्रविश्य सूत्रधारः' यहाँ से लेकर 'विश्वम्भरात्मजा देवी' इस श्लोक के अन्त तक प्रस्तावना है और सीता-राम का सम्मेलन रूप फल है।

रामलक्ष्मणौ—दिष्ट्या तथैवैतत्।

राम और लक्ष्मण—भाग्य से यह वैसा ही हुआ।

सीता—(सबाष्पाकूतम्) क्व तौ पुत्रकौ?

सीता—(आँसू और अभिप्राय के साथ) कहाँ हैं दोनों पुत्र?

(ततः प्रविशति वाल्मीकिः कुशलवौ च।)

(तदनन्तर वाल्मीकि, कुश और लव आते हैं।)

वाल्मीकिः—वत्सौ! एष वां रघुपतिः पिता। एष लक्ष्मणः कनिष्ठतातः। एषा सीता जननी। एष राजर्षिर्जनको मातामहः।

वाल्मीकि–वत्सयुगल! ये रघुनाथ जी तुम्हारे पिता हैं ये लक्ष्मण जी चाचा हैं, ये सीता जी माता हैं और ये राजर्षि जनक मातामह हैं।

टिप्पणी–वाम्=युवयोः। तुम दोनों के। यहाँ युष्मद् शब्द को 'युष्मदस्मदोः–' सूत्र से वाम् आदेश हुआ है। मातामहः = नाना। मातृ + डामहच् 'मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्' इत्यनेन।

सीता–(सहर्षकरुणाद्भुतं विलोक्य) कथं तातः? कथं जातौ?

सीता–(हर्ष, करुणा और आश्चर्य के साथ देखकर) कैसे पिता जी? और कैसे दोनों पुत्र उपस्थित हैं?

टिप्पणी–यहाँ पिता, पुत्र आदि के देखने से हर्ष, पूर्वानुभूत दुःख के स्मरण से करुणा और अकस्मात् पिता के साक्षात्कार होने से आश्चर्य हुआ है।

वत्सौ–हा तात! हा अम्ब! हा मातामह!

वत्सद्वय–हाय पिता जी! हाय माता जी! हाय नाना जी!

रामलक्ष्मणौ–(सहर्षमालिंग्य) ननु वत्सौ! पुण्यैः युवां प्राप्तौ स्थः।

राम और लक्ष्मण–(आनन्द के साथ आलिंगन करके) वत्स युगल! पुण्य से तुम दोनों मिले हो।

सीता–एहि जात कुश! एहि जात लव! चिरस्य परिष्वजेथां लोकान्तरादागतां जननीम्।

सीता–बेटा कुश! आओ, बेटा लव! आओ। दूसरे लोक से आयी हुई माता का बहुत देर तक आलिंगन करो।

टिप्पणी–चिरस्य=बहुत समय तक। 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः' इत्यमरः। परिष्वजेथाम्=आलिंगतम्=आलिंगन करो।

कुशलवौ–(तथा कृत्वा) धन्यौ स्वः।

कुश और लव–(वैसा करके) हम दोनों धन्य हुए।

सीता–भगवन्! एषाऽहं प्रणमामि।

सीता–भगवन्! यह मैं प्रणाम करती हूँ।

वाल्मीकिः–वत्से! एवमेव चिरं भूयाः।

वाल्मीकि–वत्से! इसी प्रकार (पतिपुत्रादि से युक्त होकर) चिरकाल तक रहो।

सीता–आश्चर्यम्! तातः, कुलगुरुः, आर्याजनः, सभर्तृका शान्तादेवी सलक्ष्मणाः सुप्रसन्ना आर्यपुत्रचरणाः, समं कुशलवावपि दृश्यते, तन्निर्भरास्मि आनन्देन।

सीता–आश्चर्य है कि पिता जी, कुलगुरु, सभी सासें, पति समेत शान्ता देवी, लक्ष्मण सहित अत्यंत प्रसन्न आर्यपुत्र और साथ में कुश तथा लव भी दिखाई पड़ रहे हैं। इसलिए मैं आनन्दविभोर हो रही हूँ।

(नेपथ्ये कलकलः) (नेपथ्य में कोलाहल होता है।)

वाल्मीकिः–(उत्थायावलोक्य च) उत्खातलवणो मधुरेश्वरः' प्राप्तः।

वाल्मीकि–(उठकर और देखकर) लवणासुर का उन्मूलन करके मथुरा के अधिपति (शत्रुघ्न) आ गये हैं।

लक्ष्मणः–सानुषङ्गाणि कल्याणानि।

अनुवाद–लक्ष्मण–मंगल दूसरे मंगल सहित उपस्थित हुए हैं।

रामः–सर्वमिदमनुभवन्नपि न प्रत्येपि। यद्वा प्रकृतिरियमभ्युदयानाम्।

अनुवाद–राम–इन सब बातों का अनुभव करते हुए भी मुझे विश्वास नहीं हो रहा है। अथवा मंगलों की यह प्रकृति है।

वाल्मीकिः–रामभद्र! उच्यताम्, किन्ते भूयः प्रियमुपहरामि?

वाल्मीकि–रामभद्र! कहिये, और क्या मैं आपका हितकर सम्पादन करूँ?

रामः–अतः परमपि प्रियमस्ति? किन्त्विदं भरतवाक्यमस्तु।

राम–क्या इससे भी बढ़कर कोई अभीष्ट है? (अर्थात् मुझे पत्नी, पुत्र आदि की प्राप्ति से अधिक कुछ भी अभीष्ट नहीं है।) किन्तु यह भरतमुनि का वाक्य हो।

टिप्पणी–भरतवाक्यम् = नाटक के अन्त में आशीर्वाद रूप में गाया जाने वाला पद्य।

पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गंगेव च।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम्॥21॥

अन्वय–माता इव गङ्गा इवं च जगतः मङ्गल्या च मनोहरा च सा इयं कथा पाप्मभ्यः पुनाति, श्रेयांसि वर्धयति च। अभिनयैः विन्यस्तरूपां शब्दब्रह्मविदः प्राज्ञस्य कवेः परिणताम् इमां ताम् एतां वाणीं बुधाः परिभावयन्तु॥21॥

अनुवाद–माता और गंगा की तरह विश्व का कल्याण करने वाली यह मनोहर तथा प्रसिद्ध रामायण की कथा पापों सेपवित्र करती है एवं मंगलों को बढ़ाती है। इस सुप्रसिद्ध कथा रूप वाणी का, जो विद्वान् कवि भवभूति द्वारा रूपान्तरित की गई है तथा जिसका रूप अभिनयों द्वारा प्रदर्शित किया गया है, पण्डितगण परिचिन्तन करं॥21॥

टिप्पणी–अभिनयैः=मनोगत भाव रूक्त करने वाली शरीरचेष्टा आदि से। अभिनय का लक्षण साहित्यदर्पणकार ने इस प्रकार दिया है। 'भवेदभिनयोऽवस्थाऽनुकारः स चतुर्विधः। आंगिको वाचिकश्चैमाहार्यः सात्त्विकस्तथा॥' इस श्लोक में पूर्णोपमा अलंकार है। यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है॥21॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे।) (सबका प्रस्थान।)

इति श्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते 'सम्मेलनं' नामसप्तमोऽङ्कः॥7॥

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

नेपथ्यान्तःस्थित - अंक के प्रारम्भ में पद्य की समाप्ति तक का सन्दर्भ चूलिका है। कहा भी है– 'नेपथ्यान्तःस्थितैः पात्रैश्चूलिकाऽङ्कस्य सूचनम्॥1॥

पंचचूड - पाँच शिखाओं से युक्त। 'पञ्चचूडा अङ्गिरसः' इस वचन के अनुसार पहले बटुओं के पाँच शिखायें भी रखी जाती थीं।

घटा - हाथियों का झुण्ड। 'गजानां घटना घटा' इत्यमरः।

वडवावक्त्रहुतभुक् = वडवानल। एक बार और्व नामक मुनि अग्नि में अपना ऊरु (जाँघ) डालकर कुशा से मन्थन करने लगे। अनन्तर उनके ऊरु से अग्नि उत्पन्न हुई जो संसार को जलाने लगी। जब ब्रह्मा ने यह देखा तो मुनि को किसी तरह शान्त किया और उस अग्नि को समुद्र-गर्भ-स्थित वडवा (घोड़ी) के मुँह में स्थापित करके उसके भक्ष्य के लिए समुद्र का जल निर्दिष्ट कर दिया। (मत्स्य पुराण)

यदृच्छासंवादः – आकस्मिक मिलन या ॠच्छा यदृच्छा या सवादः।

इतिहासम् – इतिह आस्ते अस्मिन् इति इतिह आस् + घञ् अधिकरणे। इसका लक्षण इस प्रकार है– ' धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्। पुरावृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।

द्विजानाम् – द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जायन्ते इति द्विजा:, द्वि जन् + ड कर्तरि, तेषाम्। जिसका दोबारा जन्म होता है उन्हें द्विज कहते है। जैसे ब्राह्मण का एक बार माता के गर्भ से तथा दूसरा यज्ञोपवित होने के बाद।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोधगम्य प्रश्न

अधोलिखित श्लोकों का ससन्दर्भ अनुवाद करते हुए तत्सम्बन्धी व्याकरणात्मक टिप्पणी प्रस्तुत कीजिये–

1. अयं हि शिशुरेको मदभरेण भूरिस्फुरत्
   .....रमन्दमददुर्दिनद्विरदडामरैरावृत:॥ (5-5)
2. यदृच्छासंवाद: किमु किमु गुणानामतिशय:
   .....ममैतस्मिन् दृष्टे हृदयमवधानं रचयति॥ (5-16)
3. देवस्त्वां सविता धिनोतु समरे गोत्रस्य यस्ते पिता
   .....देयादेव च रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रो जयम्॥ (5-27)
4. वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते
   .....यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जन:॥ (5-34)
5. त्रातुं लोकानिव परिणत: कायवानस्त्रवेद:
   .....माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्य निर्माणराशि:॥ (6-9)
6. विरोधो विश्रान्त: प्रसरति रासे निर्वृतिघन:
   .....महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशय:॥ (6-11)
7. व्यतिषजति पदार्थानन्तर: कोऽपि हेतु–
   .....द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्त:॥ (6-12)
8. सम्बन्धस्पृहणीयताप्रमुदितैर्जुष्टे वसिष्ठादिभि–
   .....दीर्यें किं न सहस्त्रधाहमथवा रामेण कि दुष्करम्॥6-40)
9. घोरं लोके विततमयशो या च वह्नौ विशुद्धि–
   .....कृत्स्नो लोकस्तदिति विषमे किं स वत्स: करोतु॥ (7-6)
10. पापेभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा
    .....शब्दब्रह्मविद: कवे: परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम्॥ (7-20)

4.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हम श्री हर्षदेव के ऐतिहासिक परिचय रत्नावली की कथावस्तु तथा कथावस्तु के प्रमुख स्रोत का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया । इसके साथ ही नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से रत्नावली नाटिका का मूल्यांकन करते हुए हर्ष की भाषाशैली पर प्रकाश डालते हुए नाट्यशैली का विश्लेषण किया । यहाँ रत्नावली के नायक उदयन तथा रत्नावली का चरित्र-चित्रण का विधिवत् अनुशीलन भी किया गया है ।

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास,पं. बलदेव उपाध्याय,शारदा प्रकाशन, वाराणसी, 1995.
2. संस्कृत सुकवि समीक्षा,पं. बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1963.
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास,प्रो. शिवबालक द्विवेदी, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर,1988.
4. उत्तररामचरितम्ता,रिणीश झा, रामनारायण बेनीप्रसाद प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006.
5. उत्तररामचरितम्,'इन्दुमती' कपिलदेवगिरि, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी, 1987.
6. उत्तररामचरितम्, ब्रह्मानन्द शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ, 2008.
7. उत्तररामचरित की शास्त्रीय समीक्षा,सत्यनारायण चौधरी, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी,1987.